श्रीश्रीभजनरहस्य

श्रीश्रीमत् सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर
[संकलित]

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रीश्रीभजनरहस्यम्

अष्टकालीयलीलोपेतं संक्षेपार्चन–पद्धति–सहितञ्च

श्रीकृष्णचैतन्याम्नायाष्टमाधस्तनपुरुषवर्य श्रीरूपानुगवर
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमत्
सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर
द्वारा संकलित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत विश्वव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी
ॐ विष्णुपाद १०८ श्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीपादके

अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
द्वारा सम्पादित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

प्रकाशक— पुरन्दर दास ब्रह्मचारी
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
मथुरा (उ॰ प्र॰)

प्रथम संस्करण—
श्रीगौर पूर्णिमा
सम्वत् २०५५ (२० मार्च, २०००)

प्राप्ति–स्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, नदिया (प॰ बं॰)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, चुचुड़ा (हुगली) (प. बं.)
४. श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) ✆ ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ ४५०५१०
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ॰ प्र॰)
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता–४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, बामनपाड़ा, कूचबिहार (प॰ बं॰)
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, जिला–बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, जिला–दार्जिलिङ्ग (प॰ बं॰)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प॰ बं॰)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला–वर्द्धमान (प॰ बं॰)
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो॰ वासुगाँव, जिला–कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गोरा हिल्स (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गाए जिला–कूचबिहार (प॰ बं॰)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, चैतन्य एवेन्यु, पो॰ दुर्गापुर (प॰ बं॰)

रहस्यका प्राग्बन्ध

भजन-रहस्य ग्रन्थ श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर महाशय द्वारा सङ्कलित है। उन्होंने अपने अनुगत भजन करनेवाले निष्कपट साधकोंको दिशानिर्देशके लिए अपनी निजस्व भजन-प्रणालीमेंसे कतिपय रहस्यपूर्ण इङ्गितोंको ग्रन्थके आकारमें गुम्फित किया है। इस अकिञ्चनने कुछ वर्ष पूर्व उनको निरन्तर इसी प्रकार श्लोकोंका उच्चारण तथा तदास्वादनपूर्वक भगवत्प्रेममें अत्यन्त विह्वल होकर भजन करते हुए देखा है।

कनिष्ठाधारगत निष्ठासम्पन्न साधकोंके लिए अर्चनकी व्यवस्था है। अर्चन और भजन, इन दोनों शब्दोंमें जो वैशिष्ट्य विराजमान है, उसे बहुत-से लोग समझ न सकनेके कारण 'अर्चन'-शब्दसे 'भजन'का ही निर्द्देश करते हैं। नवधाभक्तिके द्वारा भजन सम्भव है और अर्चन उसके अन्तर्गत होनेके कारण इसे भी भजनाङ्ग मान लिया गया है। समग्र भजन और भजनाङ्ग एक तात्पर्यपर नहीं है। संभ्रमज्ञान (ऐश्वर्य-ज्ञान युक्त मर्यादाबुद्धि) के साथ अर्च्चा-विग्रहकी उपासनाको अर्चन कहते हैं। नाना प्रकारके उपचारोंके द्वारा प्रपंचागत विचारसे (स्थूलशरीरमें आत्मबुद्धिसे) मर्यादामूलक भगवत्सेवाको अर्चन कहते हैं। विश्रम्भसेवामें गौरवज्ञानकी प्रखर रश्मि क्षीणप्रभ प्रतीत होनेपर भी स्निग्ध कमनीय-चन्द्रिका-पूर्ण प्रकाशके माधुर्य-उत्कर्षको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस ग्रन्थके परिशिष्ट अंशमें संक्षिप्त अर्चन-पद्धति संयुक्त है। ग्रन्थके कलेवरमें भजनके गूढ़ार्थ तात्पर्यकी हृदयग्राही अभिव्यक्ति अंकित है। अर्चनमें स्थूल और सूक्ष्म शरीरगत सम्बन्ध न्यूनाधिक विजड़ित रहते हैं; किन्तु भजनराज्यमें स्थूल-सूक्ष्मके अतीत शरीरी भगवान्के प्रति साक्षात् रूपमें सेवारत होता है। सर्वप्रकारकी मायिक उपाधियोंसे विनिर्मुक्त भजनशील महापुरुषोंकी इन्द्रियोंमें प्रतीत होनेवाले भाव प्रापञ्चिक या मायिक नहीं होते; वे भावनापथके अतीत अद्वयज्ञान परतत्त्वके साक्षात् सान्निध्यहेतु कालातीत अतीन्द्रिय-सेवाके भाव हैं।

परम श्रद्धालुजनोंके ज्ञातव्य गूढ़ गुरूपदिष्ट विषयको ही 'रहस्य' कहते हैं। भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें साधन भक्तिके अङ्गोंकी तालिकामें कृष्णशिक्षाप्राप्त तृतीय भक्ति-अनुष्ठानकारी विश्रब्द्ध सेवकके सेवाफलस्वरूप

साधुपथका अनुगमन करना ही भजनरहस्यका याजन या अनुशीलन करना है। निष्किञ्चन भगवद्भजनपरायण संसारसे मुक्त होकर कृष्णेतर–वासनाबद्ध जनसंगसे सम्पूर्ण मुक्त हो जाते हैं। उसी समय उनके हृदयमें अष्टकालीय या सर्वकालीय सेवा–प्रवृत्तिका उदय होता है। सेवोन्मुख शुद्धभक्त भोगी या त्यागी–बद्ध–अभक्तोंके कुसंगको अभीष्टप्राप्तिमें प्रतिबन्धक जानते हैं। वैसे अन्याभिलाषी, कर्मी या ज्ञानीको भजनरहस्यमें रूचि नहीं होती। इसीलिए अष्टकाल चिदुद्भासित भजनराज्यमें प्रविष्ट होनेकी योग्यताका अभाव रहनेके कारण यह ग्रन्थ उनके अत्यन्त आदरकी वस्तु नहीं होता।

दिन–रातके कालको आठ भागोंमें विभक्त करनेपर इनमेंसे प्रत्येक खण्डकालको 'याम' कहते हैं। रातके समय तीन याम, दिनमें तीन याम, उनके साथ ऊषा और सन्ध्याका योग करनेसे आठ याम होते हैं। सब समय सर्वतोभावसे ऐकान्तिक निष्ठाके साथ कृष्ण–भजन केवल शुद्ध वैष्णवोंके लिए ही संभव है। स्थूल–सूक्ष्म अहंता–ममता रहनेपर सर्वकालिक भजन असंभव है। हरिसम्बन्धित वस्तुओंमें प्राकृत या मायिक भाव आरोप करनेपर जीवोंकी बद्धभावसे मुक्ति नहीं होती। शुद्ध–स्वरूपप्राप्त भजनपर वैष्णवजन निरन्तर कृष्णसेवामें तत्पर रहते हैं। श्रीगौरसुन्दर द्वारा रचित शिक्षाष्टकके आठ श्लोक अष्टयामके अनुकूल भावमय हैं। श्रीरूपगोस्वामी द्वारा रचित एकादश श्लोक और उनके अनुगत सभी महाजनोंकी अष्टकाल विहित भजनलालसामयी कविताएँ भजनमें नैरन्तर्यका विधान करती हैं। जड़ीय देश–काल–पात्रादिसे सर्वथा मुक्त होकर ही गुरुसेवकोंको निरन्तर श्रीभजनरहस्यका अनुशीलन करना चाहिए।

कानपुर श्रीहरिजनकिङ्कर
१३ नवम्बर, १९२७ ई. **दास श्रीसिद्धान्त सरस्वती**

निवेदन

शुद्धभक्ति–भागीरथीके वर्तमान प्रवाहके भगीरथ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर महाशयने स्वरचित 'श्रीहरिनाम–चिन्तामणि' ग्रन्थमें श्रीनाम–माहात्म्य, नाम, नामाभास, नामापराध–मूलक विचार और श्रीनाम–ग्रहणकी प्रणाली आदि विषयोंका विस्तृत रूपसे विवेचन प्रस्तुत कर ग्रन्थके परिशिष्टरूपमें 'भजनरहस्य' ग्रन्थका संकलन किया है। महामन्त्रमें आठ युगल नाम हैं; इन अष्ट युगलोंकी करुणाका वर्णन कर महामंत्र–कीर्तनके सहयोगसे अष्टकालीय–लीलाका अनुशीलन–चिन्तन कैसे करना चाहिए—इस लघु पुस्तिकामें ठाकुर महाशयने अत्यन्त अद्भुत और सुन्दररूपमें इसका दिग्दर्शन कराया है।

कुछ वर्ष पूर्व मथुरा–वृन्दावनके ऐकान्तिक भक्तोंके अनुरोधपर मैंने लगातार कुछ दिनों या माह तक इस ग्रन्थका पाठ किया था। श्रोतागण बड़ी तन्मयतासे श्रवण करते थे। मुझे भी अपार आनन्दकी अनुभूति होती थी। पाठ समाप्तिके पश्चात् श्रद्धालु श्रोताओंने इस ग्रन्थका हिन्दी–संस्करण प्रकाशित करनेके लिए पुनः पुनः अनुरोध किया किन्तु उस समय श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित कुछ ग्रन्थों, विशेषतः उनकी टीका समन्वित श्रीभगवद्गीताके प्रकाशन और विश्वभरमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्धभक्ति प्रचारमें व्यस्त रहनेके कारण इस विषयमें मनोयोग नहीं दे सका।

कुछ दिन पूर्व पाश्चात्य देशोंसे प्रचारकर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें प्रत्यावर्तन करनेपर कार्तिक–व्रतके समय बेटी कुमारी सविताने मुझे 'भजनरहस्य वृत्ति' व्याख्या समन्वित श्रीभजनरहस्य–ग्रन्थकी (हिन्दी) प्रतिलिपि दी। मैं उसे देखकर अतिशय प्रसन्न हुआ। मैंने उससे पूछा—तुमने कैसे इसे प्रस्तुत किया? उसने बड़ी ही विनम्रतासे उत्तर दिया कि आपके प्रवचनके समय मैं सावधानीसे प्रवचनको लिख लेती थी; तथा ब्रह्मचारियोंने उसे कैसटमें भी बन्द कर रखा था। उन दोनोंके सहयोगसे मैंने इसको प्रस्तुत किया है। मैंने उस प्रतिलिपिको अपने पास रख लिया। किन्तु कार्तिक–व्रतके पश्चात् मुझे पुनः पूर्वीय विश्वमें प्रचारके लिए निकलना पड़ा। मैंने उक्त प्रतिलिपिको भी साथमें ले लिया।

हमलोग फिलीपाइन्स देशमें प्रचार करते समय सेबू नामक अद्भुत सुन्दर

टापूमें प्रशान्त महासागरके तटपर उपस्थित हुए। वहाँके अनुकूल वातावरणमें जब भ्रम-संशोधनकी दृष्टिसे अवलोकन करनेके लिए उक्त प्रतिलिपिको देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह व्याख्या मेरे द्वारा की गयी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर महाशयने स्वयं मेरे हृदयमें स्फूर्ति संचरित की है। बेटी सविताने बड़े परिश्रमसे रागानुगीय अनेकानेक प्रामाणिक ग्रन्थोंसे छानबीन कर भजनरहस्यवृत्तिको और भी समृद्ध किया है।

श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायैक संरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्यकेशरी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी मुझ दासको कृपापूर्वक श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर महाशयके ग्रन्थोंके हिन्दी-संस्करण प्रकाश करनेकी प्रेरणा और उत्साह दान करते थे। आज इस ग्रन्थको उनके श्रीकरकमलोंमें समर्पित कर अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। उनकी जय हो, उनकी जय हो।

इस ग्रन्थकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करनेके लिए बेटी सविता कुमारीकी, प्रतिलिपि प्रस्तुत करनेमें सहायताके लिए बेटी श्रीमती जानकी देवीकी, कम्प्युटराइज तथा प्रूफ संशोधन आदि विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीओम प्रकाश व्रजवासी, साहित्यरत्न, श्रीमती वृन्दादेवी, श्रीमती शान्तिदेवी, श्रीमान् पुरन्दर दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज 'भागवत-भूषण', श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज 'विद्यालंकार', श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी आदिकी सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय और उल्लेख योग्य है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीजी इनपर प्रचुर-कृपा आशीर्वाद करें—उनके श्रीचरणकमलोंमें हार्दिक प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्ति-पिपासु, विशेषतः व्रजरस-लुब्ध रागानुगा भक्तिके साधकोंमें इस ग्रन्थका समादर होगा और श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमधनमें प्रवेशाधिकार प्राप्त करेंगे।

अन्तमें भगवत्करुणाके घनविग्रह परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्म मेरे प्रति प्रचुर कृपावारि वर्षण करें, जिससे मैं उनकी मनोऽभीष्ट सेवामें अधिकार प्राप्त कर सकूँ—यही उनके रातुल श्रीचरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

श्रीगौरपूर्णिमा-वासर
५१४ गौराब्द (१९२१ भारतीयाब्द)
२० मार्च २००० ई.

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपालेशप्रार्थी
दीन-हीन अकिञ्चन
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

ब्रह्म–माध्व–गौड़ीय गुरु परम्परा—

श्रीकृष्ण–ब्रह्म–देवर्षि बादरायण–संज्ञकान्।
श्रीमध्व–श्रीपद्मनाभ–श्रीमन्नृहरि–माधवान्।।
अक्षोभ्य–जयतीर्थ–श्रीज्ञानसिन्धु दयानिधीन्।
श्रीविद्यानिधि–राजेन्द्र–जयधर्मान् क्रमाद्वयम्।।
पुरुषोत्तम–ब्रह्मण्य व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः।
ततो लक्ष्मीपतिं–श्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः।।
तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैतनित्यानन्दान् जगद्गुरून्।
देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।
श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्।।
महाप्रभु–स्वरूप–श्रीदामोदरः प्रियंकरः।
रूपसनातनौ द्वौ च गोस्वामिप्रवरो प्रभु।।
श्रीजीवो रघुनाथश्च रूपप्रियो महामतिः।
तत्प्रियः कविराज–श्रीकृष्णदास प्रभुर्मतः।।
तस्य प्रियोत्तमः श्रीलः सेवापरो नरोत्तमः।
तदनुगतभक्तः श्रीविश्वनाथः सदुत्तमः।।
तदासक्तश्च गौड़ीयवेदान्ताचार्यभूषणम्।
विद्याभूषणपादश्रीबलदेवसदाश्रयः ।।
वैष्णवसार्वभौमः श्रीजगन्नाथप्रभुस्तथा।
श्रीमायापुरधाम्नस्तु निर्देष्टा सज्जनप्रियः।।
शुद्धभक्तिप्रचारस्य मूलीभूत इहोत्तमः।
श्रीभक्तिविनोदो देव स्तत् प्रियत्वेन विश्रुतः।।
तदभिन्नसुहृदवर्यो महाभागवतोत्तमः।
श्रीगौरकिशोरः साक्षाद् वैराग्यं विग्रहाश्रितम्।।
मायावादि–कुसिद्धान्त–ध्वान्तराशि–निरासकः।
विशुद्धभक्तिसिद्धान्तैः स्वान्तः पद्मविकाशकः।।

देवोऽसौ परमो हंसो मत्तः श्रीगौरकीर्त्तने।
प्रचाराचारकार्येषु निरन्तरं महोत्सुकः।।
हरिप्रियजनैर्गम्य ॐ विष्णुपादपूर्वकः।
श्रीपादो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महोदयः।।
सर्वे ते गौरवंश्याश्च परमहंसविग्रहाः।
वयञ्च प्रणता दासास्तदुच्छिष्टग्रहाग्रहाः।।६५।।

गुरुपरम्परा

कृष्ण हइते चतुर्मुख, हय कृष्ण सेवोन्मुख,
ब्रह्मा हइते नारदेर मति।
नारद हइते व्यास, मध्व कहे व्यासदास,
पूर्णप्रज्ञ पद्मनाभ गति।।
नृहरि माधव वंशे, अक्षोभ्य-परमहंसे,
शिष्य बलि' अङ्गीकार करे।
अक्षोभ्येर शिष्य जय- तीर्थ नामे परिचय,
ताँर दास्ये ज्ञानसिन्धु तरे।।
ताँहा हइते दयानिधि, ताँर दास विद्यानिधि,
राजेन्द्र हइल ताँहा हइते।
ताँहार किंकर जय- धर्म नामे परिचय,
परम्परा जान भाल मते।।
जयधर्म-दास्ये ख्याति, श्रीपुरुषोत्तम यति,
ताँहा ह'ते ब्रह्मण्यतीर्थ सूरि।
व्यासतीर्थ ताँर दास, लक्ष्मीपति व्यासदास,
ताँहा ह'ते माधवेन्द्र पुरी।।
माधवेन्द्र पुरीवर, शिष्यवर श्रीईश्वर,
नित्यानन्द श्रीअद्वैत विभु।
ईश्वरपुरीके धन्य, करिलेन श्रीचैतन्य,
जगद्गुरु गौरमहाप्रभु।।

महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य,
रूपानुग जनेर जीवन।
विश्वम्भर प्रियंकर, श्रीस्वरूप दामोदर,
श्रीगोस्वामी रूपसनातन।।
रूपप्रिय महाजन, जीव रघुनाथ हन,
ताँर प्रिय कवि कृष्णदास।
कृष्णदास प्रियवर, नरोत्तम सेवापर,
जाँर पद विश्वनाथ आश।।
विश्वनाथ भक्तसाथ, बलदेव जगन्नाथ,
ताँर प्रिय श्रीभकति विनोद।
महाभागवतवर, श्रीगौरकिशोरवर,
हरि भजनेते जाँर मोद।।
श्रीवार्षभानवीवरा, सदा सेव्यसेवापरा,
ताँहार दयितदास नाम।
प्रभुपाद–अन्तरंग, श्रीस्वरूप–रूपानुग,
श्रीकेशव भक्ति प्रज्ञान।।
गौड़ीय–वेदान्तवेत्ता, मायावाद–तमोहन्ता,
गौरवाणी प्रचाराचार–धाम।।
एइ सब हरिजन, गौराङ्गेर निजजन,
ताँदेर उच्छिष्ट मोर काम।।

विषय–सूची

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

श्रीश्रीभजनरहस्य

(श्रीश्रीहरिनाम चिन्तामणिके अंतर्गत)

प्रथमयाम—साधन

निशान्त भजन—श्रद्धा

(रात्रिके शेष छह दण्ड)

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्भजामि कलिपावनम्।।१।।
निजत्वे गौड़ीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरे कृष्णेत्येवं गणनविधिना कीर्त्तयत भोः।
इति प्रायां शिक्षां चरणमधुपेभ्यः परिदिशन्
शचीसूनुः किं मे नयनसरणीं यास्यति पदम्।।२।।

(स्तवावली)

जो 'कृष्ण' इन दो वर्णोंका कीर्तन करते हैं; जो कान्तिसे अकृष्ण हैं अर्थात् गौर हैं—वे अङ्ग (श्रीनित्यानन्द तथा श्रीअद्वैत प्रभु), उपाङ्ग (श्रीवासपंडित आदि शुद्ध भक्तगण) और पार्षदों (श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीराय रामानन्द, श्रीगदाधर पंडित तथा षड् गोस्वामीवर्ग) से परिवेष्टित तथा अविद्या नाशक अस्त्र हरिनामसे युक्त हैं, उन श्रीकृष्ण नाम, रूप, गुण तथा लीला वर्णनकारी कलिपावन श्रीगौराङ्गदेवका मैं श्रीनाम संकीर्त्तन यज्ञके द्वारा भजन करता हूँ।।१।।

इस श्लोकके अनुरूप श्रीमद्भागवतीय (११.५.३२) श्लोक—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः।।

जिन्होंने इस संसारमें गौड़ीय वैष्णवोंको अपने आत्मीय बन्धुके रूपमें

स्वीकार कर अपने भक्तोंको संख्यापूर्वक "हरे कृष्ण" महामंत्र जप करनेकी शिक्षा प्रदान की है, ऐसे शचीनन्दन गौरहरि हमारे नयन पथमें अवतीर्ण हों।।२।।

कलिजीव उद्धारिते परतत्त्व हरि। नवद्वीपे आइला गौररूप आविष्करि।।
युगधर्म कृष्ण नाम-स्मरण कीर्त्तन। साङ्गोपाङ्गे वितरिल दिया प्रेम धन।।
जीवेर सुनित्य धर्म नाम संकीर्त्तन। अन्य सब धर्म नाम-सिद्धिर कारण।।

—कलिहत जीवोंका उद्धार करनेके लिये स्वयं परतत्त्व श्रीहरि ही नवद्वीपमें गौरसुन्दर रूपमें अवतीर्ण हुए तथा अपने साङ्गोपाङ्ग—पार्षदोंके साथ युगधर्म श्रीकृष्णनाम-संकीर्त्तनके माध्यमसे कृष्णप्रेमरूपी धनका वितरण किया। नामसंकीर्त्तन ही जीवका नित्य-धर्म है। अन्य सब धर्म नाम सिद्धिको पूर्ण करनेमें आनुसंगिक उपकरण-मात्र हैं।

भजनरहस्य वृत्ति—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ग्रन्थके प्रारम्भमें महाप्रभुकी वन्दना करते हैं। श्रीराधाभावद्युति-सुवलित विग्रह श्रीगौरसुन्दरका भजन करना ही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है। पंचतत्त्वात्मक श्रीकृष्णचैतन्य जो नवद्वीप लीलाके मूल-तत्त्व हैं, वे तथा अन्य चार रूप—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर, श्रीवासादि पार्षदवृन्द परम वन्दनीय हैं।

श्रीगौरसुन्दरकी पूजा और सेवा नामसंकीर्त्तनके द्वारा ही होती है। नाम-संकीर्त्तन द्वारा भक्तिके समस्त अंगोंका पालन करना हो जाता है। भक्तिके नौ प्रकारके अंगोंमें श्रीनामकीर्त्तन सबसे प्रबल है। कीर्त्तनानन्दके समय दूसरे साधनोंका परिचय व्यक्त न होनेपर भी वही यथेष्ट है। अर्चन, स्मरण आदिकी पुष्टि कीर्त्तनके द्वारा ही होती है। पंचतत्त्वात्मक श्रीगौरसुन्दर द्वारा निर्देशित संकीर्त्तनके द्वारा यथार्थ रूपमें श्रीकृष्णसेवा अनुष्ठित होती है। श्रीमन्महाप्रभुने अपने परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तन द्वारा अपनी ही सेवा तथा पूजाको प्रकाशित किया है।

ग्रन्थकार इस श्लोक द्वारा यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि श्रीगौरसुन्दर स्वयं-कृष्ण हैं। कृष्णवर्णं = 'कृ' और 'ष्ण'—ये दो वर्ण जिसमें हैं अर्थात् जिनके श्रीकृष्णचैतन्य नाममें कृष्णत्व अथवा स्वयं भगवत्ता प्रकाशित हो रही है अथवा 'कृष्णवर्णं'—जो अपनी पूर्व लीलाके परमानन्द केलि-विलासके स्मरणजनित तीव्र उल्लास हेतु भावाविष्ट होकर सदा "कृष्ण" नामका वर्णन अर्थात् कीर्तन करते हैं एवं परम करुणावशतः समस्त जीवोंको अकृष्ण अर्थात् गौरकान्ति धारणकर जीवोंको कृष्णनामका उपदेश दिया है। जिनके

दर्शनसे ही जीवोंके हृदयमें स्वाभाविक रूपमें कृष्ण नामकी स्फूर्ति होती है। अघटन घटन पटीयसी शक्तिमान वे कृष्ण ही, भक्त रूप अंगीकारकर गौरसुन्दरके रूपमें अवतरित हुए हैं, अथवा गौरसुन्दर रूपमें श्रीकृष्ण ही प्रकटित हुए हैं। श्रीचैतन्यदेवके इस अवतार विशेषको समझना साधारण साधकोंके लिए अत्यन्त कठिन है। प्रह्लादजी कहते हैं—'छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्' (श्रीमद्भागवत ७.९.३८) हे पुरुषोत्तम! आप कलियुगमें छिपकर अर्थात् गुप्त रूपसे अवतार ग्रहण करते हैं, इसलिए आपका एक नाम त्रियुग है। क्योंकि छन्नावतार किसी भी शास्त्रमें सहज रूपसे प्रकाशित नहीं हुआ है।'

महापण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य श्रीमन्महाप्रभुके सुद्दीप्त अष्ट–सात्विक विकारोंका दर्शन कर आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगे कि किसी मनुष्यमें इन परम दुर्लभ भावोंको नहीं देखा गया, तथापि भक्त श्रीगोपीनाथ आचार्यके सम्मुख उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुको स्वयं–कृष्ण माननेमें शंका व्यक्त की थी—

"अतएव 'त्रियुग' करि कहि विष्णुनाम।
कलियुगे अवतार नाहि—शास्त्र–ज्ञान।।"

(चै. च. मध्य ६.९५)

श्रीगोपीनाथ आचार्यने कहा—

कलिकाले लीलावतार ना करे भगवान्।
अतएव 'त्रियुग' करि कहि तार नाम।।
प्रतियुगे करेन कृष्ण युग - अवतार।
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार, नाहिक विचार।।

(चै. च. मध्य ६.९९–१००)

श्रीराय रामानन्द, ब्रजलीलाकी विशाखा सखी हैं, उन्होंने स्पष्ट अनुभव एवं दर्शन करके कहा है—

पहिले देखिलुं तोमार संन्यासी–स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुञि श्याम–गोपरूप।।
तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन–पंचालिका।
तार गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका।।

(चै. च. मध्य ८.२६७–२६८)

विविध पुराण वाक्योंके द्वारा प्रमाणित होता है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतारी श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्भागवतमें गर्गाचार्यजीने श्रीकृष्णके नामकरणके

समय कहा था—

आसन वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।।

(१०.८.१३)

महाभारत दानधर्मे विष्णुसहस्रनामस्तोत्र—

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्तिपरायणः।।

(१.२७-७५)

श्रीमद्भगवद्गीता—

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। (४/८)

आगम—

मायापुरे-भविष्यामि शचीसुतः।।

तत्त्व सन्दर्भ (श्रीजीव गोस्वामी)—

अन्तःकृष्णं बहिर्गौरं दर्शितांगादिवैभवम्।
कलौ संकीर्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः।।

(२)

राधिकार भावकान्ति करि अङ्गीकार।
प्रेम रस आस्वादिते करियाछे अवतार।।

(चै. च. मध्य ८.२७८)

श्रीकृष्ण-चैतन्यकी तप्त सुवर्णकी भाँति पीत-कान्तिकी किरणोंसे अज्ञान रूपी अन्धकार समूहका नाश हो जाता है। कलिहतजीवोंके भक्ति विरोधी कर्मरूप अंधकारको नाश करनेके लिए वे अङ्ग, उपाङ्ग, 'हरे कृष्ण' आदि भगवन्नाम संकीर्तन-रूप अस्त्र तथा श्रीवासादि परिकरोंको साथ लेकर पृथ्वीपर विचरण करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतिरिक्त अन्य अवतार सेना एवं शस्त्रोंके द्वारा असुरोंका विनाश करते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभुके अङ्ग, उपाङ्ग ही उनकी सेना हैं। शास्त्र प्रमाणसे अङ्ग शब्दका अर्थ 'अंश' होता है और अङ्गके अङ्गको 'उपाङ्ग' कहा जाता है। श्रीनित्यानन्द तथा श्रीअद्वैताचार्य—ये दोनों श्रीचैतन्यके अङ्ग हैं। इन दोनोंके जो अंश या उपाङ्ग श्रीवासादि भक्तवृन्द सदा प्रभुके साथ विराजमान रहते हैं, वे सब पाखण्डको दलन करनेमें समर्थ तीक्ष्ण अस्त्र 'हरे कृष्ण' भगवन्नाम प्रचारमें लगे रहते हैं।

'संकीर्त्तन प्रायैः' विशेषणके द्वारा हरिनाम संकीर्तन यज्ञको अभिधेय–तत्त्वके रूपमें निरूपित किया है। श्रीमन्महाप्रभुके अवतारमें हरिनाम संकीर्तन ही मुख्य अस्त्र है, जिसके द्वारा वे पाखण्डियों तथा पापियोंके पाखण्ड एवं पापका दलन करते हैं। जो नाम संकीर्त्तन यज्ञके द्वारा श्रीचैतन्यदेवका भजन करते हैं, वे ही बुद्धिमान हैं तथा वे ही समस्त सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे भाग्यहीन, सुकृतिहीन तथा मन्दबुद्धि वाले हैं।

कलिकालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमल ही सर्व अभीष्ट प्रदाता एकमात्र ध्येय वस्तु हैं। श्रीचैतन्यदेवकी कृपाके अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ नित्य, स्थायी न होकर विनश्वर पदार्थ हैं तथा वे अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेमें असमर्थ हैं।।१।।

प्रस्तुत श्लोकमें श्रील जीवगोस्वामीपाद गौड़वासी जनोंके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी स्वाभाविक कृपा स्नेहकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं। गौड़वासियोंके साथ श्रीमन्महाप्रभुका लौकिक सद्‌बन्धुवत् सम्बन्ध है। गौड़वासीजन भी मदीय भावयुक्त स्वाभाविक अभिमान रखते हैं कि गौरसुन्दर हमारे हैं। श्रील सनातन गोस्वामीपाद बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें रागमार्ग भजनके सन्दर्भमें वर्णन करते हैं कि अत्यन्त ममतायुक्त लौकिक सद्‌बन्धुवत् भाव ही प्रगाढ़ भगवद् प्रेमका परिचय है।

रसराज श्रीकृष्णने गौरसुन्दरके रूपमें प्रकट होकर समस्त जगतको 'हरे कृष्ण' महामंत्रके कीर्त्तनकी विधि प्रदान की। किन्तु उन्होंने गौड़वासियोंके प्रति विशेष रूपसे कारुण्य प्रकाश किया है। श्रीनवद्वीपधाममें अपराधभंजन स्थल हैं, जहाँ समस्त प्रकारके अपराधोंका नाश हो जाता है।

संकीर्त्तन प्रवर्त्तक श्रीगौरसुन्दर गौड़ीय भक्तोंके साथ अत्यन्त भाव विभोर होकर अभिनव रूपमें नृत्य तथा कीर्त्तन करते थे। अपने सुहृद गौड़ीय भक्तवृन्दको देखकर श्रीगौरसुन्दरके हृदयमें भावोंकी बाढ़ उच्छलित होती थी। भक्तगण भी श्रीमन्महाप्रभुके चरणकमलोंके मधुप बनकर प्रेमानन्द रूपी मकरन्दका पान कर उन्मत्त हो उठते थे।

श्रीगौरसुन्दर संकीर्त्तनके समय भावावेशमें नृत्य–कीर्तन करते हुए श्रीराधादि व्रजसुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णके रास–नृत्य–माधुरीका आस्वादन करते थे। इस अलौकिक शृंगार रसयुक्त मधुर–मनोहर नृत्यकी विचित्र भावभङ्गिमा द्वारा प्रेम मण्डित होकर अश्रु–पुलकादि अद्भुत अष्ट–सात्विक भाव विभूषणोंके द्वारा सुशोभित होते थे। जगन्नाथ पुरीमें रथ यात्राके अवसरपर उनका भावपूर्ण नृत्य

और कीर्तन अपनी चरम सीमातक पहुँच जाता था। श्रीस्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्द, श्रीमन्महाप्रभुके भावानुरूप (समृद्धिमान सम्भोग रस) से युक्त पदोंका गायन करते थे। "सेई तो पराणनाथ पाइनु, जाहाँ लागी मदन-दहने झुरि गेनु"—यह श्रवणकर श्रीमन्महाप्रभु जगन्नाथजीके मुखारविन्दको देखते एवं आँखोंसे आँख मिलाकर परमानन्द-प्रेमरससे तरंगायित चित्तसे गीतकी भावनाके अनुसार नृत्य करते। उस समय श्रीगौरसुन्दरकी अपूर्व भङ्गिमा होती थी, बंधूक पुष्पके समान अरुणअधरका दंत दंशन, वाम-हस्तका कटि देशमें विन्यास तथा दक्षिण हस्तसे नृत्य संचालनकी अपूर्व भङ्गिमायुक्त गति अति मनोहारी होती थी। स्वयं श्रीजगन्नाथजी अत्यन्त आनन्द एवं विस्मयसे अभिभूत हो, अपूर्व रूपमें मधुर नृत्यके माधुर्यका आस्वादन करते-करते मृदु-मन्द गतिसे सुन्दराचल (वृन्दावन) की ओर अग्रसर होते।

श्रीमन्महाप्रभुके विशाल विग्रहकी स्वर्णोज्ज्वल कान्ति, हेमगिरिकी आभाको भी पराभूत करती थी। श्रीगौरसुन्दर परमानन्दमें उच्च स्वरसे अपनी ही नामावलीका कीर्त्तन करते—'हरे कृष्णोत्युच्चैः स्फुरित-रसने' अपने भक्तोंसे परिवेष्टित प्रभु कीर्त्तन करते-करते चंचल चरणोंसे नृत्य करते, नयनोंसे गंगा-जमुनाकी जलधाराका प्रवाह तथा देहमें कदम्ब-केसरकी भाँति पुलकादि अपूर्व रूपमें प्रकाशित होता। इस अपूर्व प्रेम माधुरीका स्मरणकर श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी कहते हैं, 'शचीनन्दन श्रीगौरहरि कब मेरे नयन पथमें उदित होंगे।' महाप्रभुजीकी महाकरुणाका स्मरण कर, विरहमें विह्वल हो निरन्तर अश्रुपात करते-करते यह स्तव-स्तुति करते; अपने इष्टदेवके दर्शनाभिलाषकी अतीव उत्कण्ठा तथा आशासे प्रतीक्षा करते। श्रीदास गोस्वामीके चित्तमें श्रीगौरसुन्दरकी करुणा, प्रचुर निष्ठा, अलौकिक वैराग्य तथा अतिमर्त्य प्रेमभक्ति उदित होकर उन्हें भाव विह्वल कर देती। वे सुदीर्घ काल तक श्रीमहाप्रभुके सान्निध्यमें रहकर प्रभुका असीम स्नेह और कृपा-आशीष प्राप्त किया। श्रील दास गोस्वामी श्रीगौरसुंदरको 'शचीनन्दन' नामसे सम्बोधित कर रहे हैं, क्योंकि श्रीशचीनन्दनकी करुणा मातृस्नेहवत् है। सर्व प्रकार अयोग्य जीवोंको भी शचीनन्दन श्रीगौरहरिने अपनी कृपा प्रदानकर उन्हें धन्य किया।

विष्णुरहस्यमें कहा गया है—

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि।
फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्द-कीर्त्तनात्॥३॥

—सत्ययुगमें श्रद्धापूर्वक सैकड़ों वर्षोंकी तपस्यादिके द्वारा जो फल लाभ होता है, कलिकालमें श्रीगोविन्दके नाम-कीर्त्तन द्वारा वे समस्त फल पाये जा सकते हैं।।३।।

सत्ययुगे शत शत यज्ञे हर्यर्चन। कलिते गोविन्द नामे से फल अर्जन।।

—सत्ययुगमें भगवानका ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनका अर्चन करनेसे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल श्रीकृष्ण-नामाभाससे प्राप्त हो जाता है।

भजनरहस्यवृत्ति—कलियुग पावनावतारी श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं भक्तभावको अंगीकार एवं भक्तिका आचरण कर समस्त जगतको भक्तिकी शिक्षा दी है। बृहन्नारदीय पुराणमें वर्णन है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस श्लोकमें शुद्ध हरिनामकी तीन बार उक्ति द्वारा दृढ़ता तथा अन्य साधनों—कर्म, ज्ञान, योगादिकी निरर्थकता दिखलायी गई है।

वृहद्विष्णुपुराणमें—नाम करनेवालोंके लिए अन्य किसी भी प्रकारके प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।४।।

—श्रीहरिके नाममें पापहरण करनेकी जितनी शक्ति विद्यमान है, अत्यन्त पापी व्यक्ति भी उतना पाप करनेमें उतनी सामर्थ्य नहीं रखता है।।४।।

कौन प्रायश्चित्त नहे नामेर समान। अतएव कर्म त्याग करे बुद्धिमान।।

—अनेक प्रकारके कुकर्मोंके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था भी शास्त्रोंमें दी गई है। किन्तु श्रीहरिनाम उच्चारणसे समस्त प्रकारके कुकर्मजनित पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं। जिसने नाम ग्रहण किया है उसे किसी भी प्रकारके प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती। नामप्रभु पापहरण करनेमें इतने सामर्थ्यवान हैं कि पापी व्यक्तिमें उतने पाप करनेकी क्षमता नहीं है।

एक कृष्ण नामे जतो पाप हरे। पापीर साध्य नाही ततो पाप करे।।
(चै. च.)

वैष्णव चिन्तामणौ, (हरिभक्तिविलास ११/२३६ संख्याधृत) कीर्त्तनकी श्रेष्ठता—

अघच्छित्-स्मरणं विष्णोर्बह्वायासेन साध्यते।
ओष्ठ-स्पन्दन-मात्रेण कीर्त्तनन्तु ततो वरम्।।५।।

—विष्णुके स्मरणसे बड़े परिश्रमसे पाप विनष्ट होते हैं, परन्तु उनके नाम-कीर्त्तन द्वारा वे पाप अति सहज ही नष्ट हो जाते हैं। भगवन्नाम ओष्ठ-स्पन्दन मात्रसे ही कीर्त्तन हो जाता है, जो स्मरणसे अति श्रेष्ठ है।।५।।

तपस्याय ध्यान योग कष्ट साध्य हय। ओष्ठेर स्पन्दनमात्रे कीर्त्तन आश्रय।।
ओष्ठेर स्पन्दनाभावे नामेर स्मरण। स्मरण कीर्त्तने सर्व सिद्धि-संघटन।।
अर्चन अपेक्षा नामेर स्मरण-कीर्त्तन। अति श्रेष्ठ बलि शास्त्रे करिल स्थापन।।

कलियुगमें तपस्या, ध्यान, योग आदि साधन अति कष्टदायक हैं, किन्तु कीर्त्तन सहज है, जो ओष्ठ स्पन्दन मात्रसे हो जाता है। ओष्ठ स्पन्दन रहित नामको उपांशु जप कहते हैं। इस प्रकार नाम-कीर्त्तन तथा स्मरणसे जीवको सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। अतः शास्त्रोंमें यह सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि नामका कीर्त्तन-स्मरण अर्चनकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

भजनरहस्यवृत्ति—कर्म, ज्ञान एवं योगियोंका साधन बड़ा कठिन और कष्टप्रद है, किन्तु भक्तिका मार्ग सहज और सरल है। श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

(श्रीभगवद्गीता २/४०)

—भक्तियोगमें किया गया प्रयास न तो विफल होता है और न ही इसमें कोई दोष होता है। भक्तियोगका थोड़ासा भी अनुष्ठान संसार रूप महान भयसे मुक्त कर देता है।

ध्यान योगादि अनुष्ठानमें सामान्य त्रुटि होनेपर भी अभीष्ट फल प्राप्त नहीं होता। यथार्थमें भक्तियोग सर्वथा निर्गुण होता है। इसका आरम्भ करनेके बाद किसी कारणसे यह अधूरा रह जाय, तब भी इसमें न त्रुटि होती है, न दोष। भक्तियोगसे भ्रष्ट व्यक्तिका लोक या परलोकमें कहीं विनाश नहीं है एवं उसकी कहीं दुर्गति भी नहीं है। मुख्य भक्तियोग नाम-कीर्त्तनके द्वारा होता है। ओष्ठके स्पंदन मात्रसे ही कीर्त्तन हो जाता है। हरिनाम जड़ जगतकी वस्तु नहीं है। नाम-प्रभु साधकको जिह्वाके ऊपर नृत्य करते हैं तथा जीवोंके प्रारब्ध-कर्म आदि नष्ट करके प्रेम पर्यन्त प्रदान करते हैं।

पूर्व-पूर्व युगोंके साधन योगमें साधक अपने मनको एकाग्र नहीं कर पाते, इस कारण साध्य वस्तु प्राप्त नहीं होती। कलियुगमें नामोच्चारणके द्वारा ही यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है। श्रील सनातन गोस्वामीपाद बृहद्भागवतामृतमें वर्णन करते हैं कि स्मरणकी अपेक्षा कीर्त्तन अधिक प्रबल है तथा इससे मनके साथ जिह्वा भी विशेष सुख प्राप्त करती है।

हरिभक्तिविलासधृत शास्त्रवाक्य ११.२३७—

येन जन्मशतैः पूर्वं वासुदेवः समर्चितः।
तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारतः।।६।।

—हे भरतवंश श्रेष्ठ भारत! जिन्होंने पहले सैकड़ों जन्मोंमें समुचित रूपसे वासुदेवका अर्चन किया है, उनके मुखमें ही श्रीहरिका नाम नित्य विराजमान रहता हैं।

हरेकृष्ण सोलहनाम अष्टयुग हय। अष्टयुग अर्थे अष्टश्लोक प्रभु कय।।
आदि हरेकृष्ण अर्थे अविद्यादमन। श्रद्धार सहित कृष्णनाम संकीर्तन।।
आर हरेकृष्ण नाम कृष्ण सर्वशक्ति। साधुसङ्गे नामाश्रये भजनानुरक्ति।।
सेइत भजनक्रमे सर्वानर्थनाश। अनर्थापगमे नामे निष्ठार विकाश।।
तृतीये विशुद्धभक्त चरित्रेर सह। कृष्ण कृष्णनामे निष्ठा करे अहरह।।
चतुर्थे अहैतुकी भक्ति उद्दीपन। रुचि सह हरे हरे नाम संकीर्तन।।
पञ्चमेते शुद्ध दास्य रुचिर सहित। हरेराम संकीर्तन स्मरण विहित।।
षष्ठे भावाङ्कुरे हरे रामेति कीर्तन। संसारे अरुचि कृष्णे रुचि समर्पण।।
सप्तमे मधुरासक्ति राधापदाश्रय। विप्रलम्भे रामराम नामेर उदय।।
अष्टमे व्रजेते अष्टकाल गोपीभाव। राधाकृष्ण प्रेमसेवा प्रयोजन लाभ।।

भजनरहस्यवृत्ति—'समर्चित' अर्थात् सम्यक् रूपमें अर्चित—स्वयं भगवान अर्जुनसे कहते हैं—हे अर्जुन! अनेक जन्ममें विधि नियमका पालन कर जो भगवान् वासुदेवका अर्चन करते हैं, उनका चित्त काम आदिसे विमुख हो जाता है। ऐसे व्यक्तिके हृदयमें मुकुन्दकी स्फूर्ति होती है। कनिष्ठाधिकारी व्यक्तिको शुद्ध सदाचार एवं भगवद् भक्तिमें लानेके लिए, शास्त्रोंमें उनके लिए अर्चनकी व्यवस्था की गई है। इस प्रकार उनका चित्त धीरे-धीरे निर्मल होकर शोक, अमर्ष, भय आदिसे निर्मुक्त हो जाता है। श्रीभक्तिरसामृतसिंधुमें श्रील रूप गोस्वामीपाद कहते हैं—

शोकामर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसं।

कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्ति सम्भावना भवेत्।।

(पूर्व विभाग द्वितीय लहरी—११३)

शास्त्रमें स्मरणको अर्चनका अङ्ग माना है। अर्चन करते समय ध्येय वस्तुका स्मरण होता है। अर्चन स्मरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, किन्तु शास्त्रकार यह सिद्धान्त देते हैं कि अर्चनके यथार्थ फलकी प्राप्ति तभी होती है जब अर्चन कीर्त्तनके साथ किया जाय, यही कलियुगमें अर्चन करनेकी विधि है।

सोलह नाम बत्तीस अक्षरयुक्त श्रीहरिनाम ही महामंत्र है। इसमें अष्ट-युगल नाम हैं। श्रीमन्महाप्रभुने अष्टयुगलको शिक्षाष्टकके रूपमें जगतमें प्रकट किया है। प्रथम श्लोकसे अष्टम श्लोकतक, श्रद्धासे प्रेमावस्था तक पहुँचनेके सोपान हैं।

श्रद्धापूर्वक कृष्णनाम संकीर्तन करनेपर अविद्या नष्ट होती है तथा चित्तरूपी दर्पणका सम्मार्जन होता है, यही प्रथम युगल 'हरे-कृष्ण' का मर्म है।

दूसरे युगल 'हरे-कृष्ण' के द्वारा यह सूचित होता है कि इसमें कृपादि सारी शक्तियाँ हैं, जो नाम-कीर्तन करनेवाले साधकके हृदयस्थित अविद्याको नष्ट कर साधुसंगमें हरिनाम-संकीर्तनरूप भजनमें अनुरक्ति पैदा करती है। ऐसे भजनके द्वारा क्रमशः सब प्रकारके अनर्थ दूर होनेपर भजनमें निष्ठाका विकास होता है।

जातरति साधक प्रथम और द्वितीय 'हरे-कृष्ण' करते समय श्रीराधाकृष्णकी मिलन लीलाका स्मरण करते हैं तथा श्रीरूपमञ्जरी आदि व्रजदेवियोंके आनुगत्यमें अपनी अंतश्चिन्तित गोपी-देहमें श्रीराधागोविन्दकी मानसी सेवा परिचर्या करते हैं।

श्रीराधाकृष्णके नित्य स्वरूप, लीला, गुण आदिका स्मरण करते समय उनके लीला-विलास आदि सेवाकी स्फूर्ति होती है। यही सर्वाभीष्ट केलि कल्पतरु है। वे ललितादि सखियोंको सदासर्वदा स्मरण करते हैं अर्थात् सिद्ध देहमें ललितादि सखियोंके आनुगत्यमें सेवा परिचर्याका अनुसरण करते हैं।

अजातरति साधकके निरन्तर 'हरे कृष्ण' नाम करनेसे उसके अनर्थ दूर होकर उसमें निष्ठाका विकास होता है, निश्चला बुद्धि उदित होती है एवं कृष्ण नाममें निष्ठा होती है। ये साधक श्रील रूप गोस्वामी, श्रील

रधुनाथ दास गोस्वामी आदि शुद्ध भक्तोंकी सेवा, आदर्श तथा चरित्रका अनुशीलन करते हैं।

तृतीय युगल 'कृष्ण–कृष्ण' कीर्तन करते समय शुद्धभक्तोंके आदर्श–चरित्र, संख्यापूर्वक नामगान–नति, विषय–वैराग्य, स्तव–स्तुतिका अनुसरण करते हुए दिन–रात निष्ठापूर्वक नाम करता है। किन्तु जातरति साधक श्रीकृष्णके गोचारण गमनके पश्चात् श्रीराधा तथा अन्य गोपियोंकी विरह–विच्छेदकालीन लीलाका स्मरण करते हैं तथा गोपियोंमें विरहजनित भावोंका स्मरण करते हैं।

चतुर्थ युगल 'हरे हरे'में अजातरति साधकके हृदयमें रुचिके साथ नाम संकीर्त्तन करनेसे अहैतुकी भक्तिकी उद्दीपना होती है। जातरति साधकमें अत्यन्त प्रीति पूर्वक नाम करते–करते श्रीराधाकृष्णकी मिलनजनित लीलाकी उद्दीपना होती है।

पंचम युगल 'हरे राम' नाम करते समय अजातरति साधक अपने हृदयमें दास्य भाव प्रकट होनेकी प्रार्थना करता है। उस समय उसमें नाम–भजनकी आसक्ति उदित होती है तथा नामसंकीर्तनके साथ लीलाओंका स्मरण भी होने लगता है। कृष्ण दास होनेकी चिन्ता आसक्ति पूर्वक करते हैं। जातरति साधक गोचारणसे प्रत्यागमनके पश्चात् श्रीराधाकृष्णकी मिलनजनित लीला स्मरण करते हैं। श्रीराधा तथा अन्य गोपियाँ श्रीकृष्णको स्नान, वस्त्र धारण तथा भोजनादि कराती हैं। नन्दालयमें रोहिणीजीके साथ विविध पक्वान्न तैयार कराती हैं।

इसी प्रकार नाम ग्रहण करते–करते अजातरति साधक नामप्रभुकी स्वाभाविक कृपा लाभ करते हैं, उनका हृदय द्रवीभूत होने लगता है, हृदयमें शुद्धसत्त्व उदित होता है एवं नाम ग्रहणमें प्रगाढ़ रुचि होती है। साधकके हृदयमें आसक्तिके भाव अंकुरित होते हैं। भावके नौ प्रकारके लक्षण—'क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं' लक्षित होने लगते हैं।

इस अवस्थामें साधक षष्ठ युगल 'हरे राम' कीर्त्तनका आस्वादन करता है। कृष्णसे इतर विषयोंके प्रति स्वाभाविक अरुचि हो जाती है। श्रीकृष्णमें पूर्णरूपसे समर्पित होकर नाम ग्रहणके समय चित्त अत्यन्त कोमलीकृत एवं द्रवित होता है। धूमायित अवस्थामें अश्रु, पुलकादि अष्टसात्त्विक भाव दीख पड़ते हैं।

जातरति साधक इस युगलमें श्रीराधाकृष्णकी मिलन लीलाका स्मरण

करते हैं। श्रीराधा धनिष्ठाके द्वारा श्रीकृष्णका उच्छिष्ट प्रसाद प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं।

सप्तम युगल 'राम राम' कीर्त्तन करते-करते मधुररसाश्रित नाम-साधक श्रीराधाकृष्ण युगलकी ऐकान्तिकी सेवाभावसे श्रीराधाका एकान्तिक पदाश्रय, अर्थात् अभिन्नहृदया पाल्य दासीका भाव प्राप्त करते हैं। इसी समय एकादश भाव तथा पंच सम्पत्तिदशा भी प्राप्त होती है। साधक विप्रलम्भरसमें विभावित होकर अपनेको भक्ति शून्य समझकर नाम-संकीर्तन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें ऐसी स्फूर्ति होती है कि श्रीकृष्ण मिलनके लिए राधा अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही हैं तथा वृन्दादेवीके उपदेशानुसार यमुना उपकूलस्थ संकेत कुञ्जमें अभिसार करती हैं। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण तन्मय होकर एक दूसरेका अन्वेषण करते हैं।

अष्टम युगल 'हरे-हरे' का कीर्तन करते-करते वे प्रकट व्रजधाममें राधाकृष्णकी अष्टकालीन माधुर्यमयी प्रेम-सेवामें नियुक्त होते हैं अर्थात् नित्य स्वरूपमें गोपी भावमयी सेवा प्राप्त करते हैं। इस युगल नाम-भजनके समय वे श्रीराधा-कृष्णकी मिलन लीलाका स्मरण करते हैं। श्रीराधाजीकी अत्यन्त अनन्य हृदय मञ्जरियाँ ताम्बुल अर्पण, पादमर्दन आदिके द्वारा युगलकी सेवा कर रही हैं—साधक इन्हीं सब सेवाओंका स्मरण करते हैं।

श्रीभजनरहस्य सचमुचमें रहस्योंका एक सम्पुट है। इसके प्रथमयाम साधनके अन्तर्गत निशान्त-भजन अर्थात् भजनमें प्रवेशाधिकारका रहस्य छिपा है। यह रहस्य है—श्रद्धा। साधुसंगके पश्चात् गुरुपदाश्रय और सम्बन्धज्ञानके साथ नाम-संकीर्तन रूप साधन-भजन करनेसे अनर्थकी निवृत्ति होती है। श्रीशिक्षाष्टकका प्रथम श्लोक 'चेतोदर्पण मार्जनं' ही इस अवस्थाके अनुकूल भजन प्रणाली है।

द्वितीय यामके प्रातःकालीन भजनके अन्तर्गत साधुसंगमें अनर्थ-निवृत्तिका रहस्य छिपा है। नाम और नामी अभिन्न तत्त्व हैं; भगवन्नाम नाम-स्वरूपकी कृपादि सारी शक्तियाँ अन्तर्निहित होती हैं। ऐसे भजनसे 'चेतोदर्पणमार्जनं' सम्भव होता है। शिक्षाष्टकका द्वितीय श्लोक 'नाम्नामकारी' जैसे भावके साथ नाम भजनका रहस्य इस द्वितीय याममें विवेचित हुआ है।

तृतीय याम पूर्वाह्नकालीन भजनमें भजननिष्ठाका विवेचन किया गया

है। ऐसी निष्ठाके साथ नाम भजनके द्वारा भव महादावाग्नि निर्वापित होती है, इसमें शिक्षाष्टकके तृतीय श्लोक 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना', अमानि एवं मानद होकर भजनका विषय वर्णन हुआ है।

चतुर्थ याम मध्याह्नकालीय भजनमें रुचिका रहस्य छिपा है, उसमें साधकमें श्रीकृष्ण सेवाके अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं रहती। इस अवस्थामें शिक्षाष्टकके 'श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं' का भाव तथा शिक्षाष्टकके चतुर्थ श्लोक 'न धनं न जनं' जैसी प्रार्थनाके अनुरूप भजनका विवरण इसमें दिया गया है।

पञ्चम याम अपराह्न कालीय भजनमें नाम साधकके स्वरूप अर्थात् कृष्णके नित्य दास्यत्वकी प्रार्थना होती है, विशेषतः भजन एवं भजनीय दोनोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, ऐसे भजनसे नाम ही विद्यावधूके जीवनस्वरूप है ऐसी अनुभूति होती है, इसी अवस्थामें शिक्षाष्टकके पञ्चम श्लोक 'अयि नन्दतनुज किङ्करं' जैसे भावकी प्रार्थना साधकके हृदयमें उदित होती है।

षष्ठ याम सायंकालीन भजनमें भावके सहित नामभजनका रहस्य अन्तर्निहित है। इसमें सिद्धिके बाह्य लक्षण दिखाई देते हैं। भावके साथ नाम-संकीर्तनके द्वारा आनन्दाम्बुधि वर्द्धनं—आनन्दसमुद्रकी वृद्धि होने लगती है तथा शिक्षाष्टकके षष्ठ श्लोक 'नयनं गलदश्रुधारया' जैसी प्रार्थना उदित होती है, इस सबका विवेचन इस याममें है।

सप्तम याम प्रदोषकालीन भजनमें सिद्धिके अन्तर्लक्षणका विवेचन प्रस्तुत किया गया है, ऐसी अवस्थामें विरहानुभूतिके साथ नाम भजनमें पग-पगपर पूर्णामृतका आस्वादन सम्भव है, इस याममें शिक्षाष्टकके सप्तम श्लोक 'युगायितं निमेषेण' जैसे विप्रलम्भ प्रेमकी प्राप्ति हेतु प्रार्थनाएँ होने लगती हैं, इन सबका विवेचन सप्तम याममें वर्णित है।

अष्टम याममें रात्रि लीलाके अन्तर्गत प्रेम भजनका रहस्य छिपा हुआ है इसमें सिद्धि अर्थात् साध्यभक्तिकी निष्ठाका वर्णन है, साथ ही ऐकान्तिक निष्ठा अर्थात् ऐकान्तिक कृष्ण परतन्त्रताका वर्णन किया गया है, ऐसी अवस्थामें 'सर्वात्मस्नपनं' की दशा सम्भव है, इसमें शिक्षाष्टकके अष्टम श्लोक 'आश्लिष्य पादरतां' भावप्राप्तिकी आकांक्षा होती है, इसमें इन सबका वर्णन है।

यथा, भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग चतुर्थ लहरी—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः।।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ।।७।।

इस श्लोकके द्वारा साधकके भक्ति क्रमका वर्णन किया जा रहा है—भक्तिमूलक सुकृतिके द्वारा पारमार्थिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। शास्त्र वचनोंमें विश्वास और हरिकथा श्रवणकी अभिलाषा होना—श्रद्धाका लक्षण है। श्रद्धा उदयके पश्चात् साधुसंग, फिर भजन-क्रिया आरम्भ होती है। साथ ही साथ अनर्थ निवृत्ति भी होनी प्रारम्भ हो जाती है। तत्पश्चात् भजनमें निष्ठा होती है, फिर रुचि तत्पश्चात् भजन तथा भजनीय वस्तुमें आसक्ति उत्पन्न होती है, जो परिपक्व होनेपर भाव दशामें परिवर्तित हो जाती है। तदनन्तर प्रेमोदय होता है। साधकोंके चित्तमें प्रेमके आविर्भावका यही क्रम है।।७।।

भक्ति मूला सुकृति हइते श्रद्धोदय। श्रद्धा हैले साधुसङ्ग अनायासे हय।।
साधुसङ्ग फले हय भजनेर शिक्षा। भजनशिक्षार सङ्गे नाम मन्त्र दीक्षा।।
भजिते-भजिते हय अनर्थेर क्षय। अनर्थ खर्वित हइले निष्ठार उदय।।
निष्ठानामे यत हय अनर्थ विनाश। नामे तत रुचि क्रमे हइवे प्रकाश।
रुचि युक्त नामेते अनर्थ यत याय। ततइ आसक्ति नामे भक्तजन पाय।।
नामासक्ति क्रमे सर्वानर्थ दूर हय। तवे भावोदय हय एइ त निश्चय।।
इति मध्ये असत्सङ्गे प्रतिष्ठा जन्मिया। कुटीनाटी द्वारे देय निम्ने फेलाइया।।
अति सावधाने भाई असत्सङ्ग त्यज। निरन्तर परानंदे हरिनाम भज।।

यथा कात्यायनसंहितामें (भ. र. सि. पूर्वविभाग २.१११ श्लोकधृत)—

वरं हुतवहज्वाला पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ताविमुखजनसंवास वैशसम्।।८।।

अर्थात् चाहे आगमें जल मरूँ अथवा चाहे पिंजड़ेमें सदाके लिए बंद पड़ा रहूँ, तो भी मैं कदापि कृष्ण चिन्ता-विमुख जनोंका संग नहीं चाहता।।८।।

यथा विष्णुरहस्यमें (भ. र. सि. १/२/११२)—

आलिङ्गनं वरं मन्ये व्यालव्याघ्रजलौकसाम्।
न सङ्गः शल्ययुक्तानां नानादेवैकसेविनाम्।।९।।

—विभिन्न देवी-देवताओंके उपासक जिनके हृदय नाना प्रकारकी कामनाओंसे युक्त हैं, इनकी अपेक्षा सर्प, व्याघ्र या मगरके साथ रहना अथवा उनका आलिङ्गन करना श्रेष्ठ है।।९।।

अग्निते पुड़ि वा पञ्जरेते बद्ध हइ। तबु कृष्ण बहिर्मुख संग नाहि लइ।।
वरं सर्पव्याघ्रकुम्भीरेर आलिङ्गन। अन्यसेवि सङ्ग नाहि करि कदाचन।।

भजनरहस्यवृत्ति—उक्त दोनों श्लोकोंमें साधकको स्वजातीय, अनुकूल कृष्ण भक्तोंका संग करनेका उपदेश दिया गया है।

आचार्यपादोंका आदेश है कि साधकको भक्तिके अनुकूल विषयोंको ग्रहण कर प्रतिकूलका वर्जन करना चाहिए। असत्‌संग अर्थात स्त्री संगी एवं मुक्तिवादियोंके सङ्गका पूर्ण रूपसे परित्याग करें। साधक ऐकान्तिक रूपसे श्रीराधाकृष्ण युगलकी लीला-कथाका श्रवण कीर्तन करें। इसमें स्वजातीय भक्तका संग लाभकारी है। अन्य देवी-देवताओंके उपासक, कृष्ण-विमुख-जन तथा विषयीजनोंके संगसे दूर रहें। ये लोग साधकके हृदयको कलुषित कर देते हैं। इस विषयमें श्रीगौरकिशोर दास बाबाजीका उदाहरण अत्यन्त सुन्दर है। वे कभी-कभी शौचगृहमें बैठकर भजन करते थे, जिससे विषयी लोग उनके पास न आ सकें। उनका कहना था कि विष्ठाकी दुर्गन्ध विषयी लोगोंकी गन्धसे कहीं अच्छी है। श्रीसम्प्रदायके अनुयायीजन कदापि शिव मंदिरमें नहीं जाते और न ही शिवका अर्चन इत्यादि करते हैं। शुद्ध कृष्ण-भक्तिका आचरण करनेवाले साधकको संग-दोषसे बचना चाहिए। संग-दोष जीवके हृदयमें नाना प्रकारकी कामना-वासनाएँ उदित कराकर उसे पतित करा देता है।

नामाभाससे सर्वपाप क्षय तथा संसार क्षय होता है, यथा (भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग १.१०३)—

तं निर्व्याजं भज गुणनिधिं पावनं पावनानां
श्रद्धा रज्यन्मतिरतितरामुत्तमःश्लोक मौलिम्।
प्रोद्यन्नन्तःकरणकुहरे हन्त यन्नामभानो
राभासोऽपि क्षपयति महापातकध्वान्तराशिम्।।१०।।

—हे गुणनिधे! तुम पावनोंमें भी परमपावन एवं उत्तम श्लोकमौलि श्रीकृष्णका श्रद्धाके साथ अर्थात् निष्कपटरूपसे अति शीघ्र भजन करो। क्योंकि उनके नामसूर्यका आभास, जब अंतःकरणरूप गह्वरमें सर्वाङ्ग रूपसे

उदित होता है, तब हृदयमें विद्यमान महापातक रूप अन्धकार राशि नष्ट हो जाती है।।१०।।

परम पावन कृष्ण ताँहार-चरण। निष्कपट श्रद्धा-सह करह भजन।।
यार नाम सूर्याभास अन्तरे प्रवेशि। ध्वंस करे महापाप अंधकार राशि।।
एई शिक्षाष्टके कहे कृष्णलीला-क्रम। इहाते भजनक्रमे लीलार उदगम्।।
प्रथमे प्रथम श्लोक भज किछु दिन। द्वितीय श्लोकेते तबे हओत प्रवीण।।
चारि श्लोक क्रमशः भजन पक्व कर। पंच श्लोकेते निजसिद्धदेह बर।।
ऐ श्लोक सिद्धदेहे राधापदाश्रय। आरम्भ करिया क्रमे उन्नति उदय।।
छय श्लोक भजिते अनर्थ दूरे गेल। तबे जान सिद्धदेहे अधिकार हैल।।
अधिकार ना लभिया सिद्धदेह भावे। विपर्यय बुद्धि जन्मे शक्तिर अभावे।।
सावधाने क्रम धर यदि सिद्धि चाओ। साधुर चरित देखि' शुद्धबुद्धि पाओ।।
सिद्धदेह पेये क्रमे भजन करिले। अष्टकाल सेवासुख अनायासे मिले।।
शिक्षाष्टक चिन्त, कर स्मरण कीर्तन। क्रमे अष्टकाल-सेवा हबे उद्दीपन।।
सकल अनर्थ जाबे पाबे प्रेमधन। चतुर्वर्ग फल्गुप्राय हबे अदर्शन।।

भजनरहस्यवृत्ति—अन्याभिलाषसे रहित और ज्ञान-कर्म आदिके द्वारा अनावृत सम्बन्धयुक्त अनुकूल भावके साथ नाम ग्रहण करनेसे शुद्ध नाम होता है। शुद्ध नाम यदि न हो तब वह नामाभास कहा जाता है। जब अज्ञानवश अर्थात् भ्रम-प्रमादवश अशुद्ध नाम होता है, तब उसे नामाभास कहते हैं और जब मायावाद आदिके कारण भोग और मोक्षके लिए अशुद्ध नाम होता है, तब उसे नामापराध कहते हैं।

(कृष्णेतर विषयोंमें आवेशके साथ जो नाम किया जाता है, उसे भी नामाभास कहा जाता है।)

श्रीकृष्ण नामका आभास ही इतना शक्तिशाली है कि वह महापातक अन्धकार राशिको समाप्त करनेमें समर्थ है। नामाभास स्मरण जीवके कर्ण कुहरमें प्रवेशकर, अंतःकरणरूपी गुहामें उदित होकर, जीवका उद्धार करता है। यदि नामाभासी असत्संग त्यागकर शुद्ध भक्तोंका निरन्तर संग करे, तो वह अति शीघ्र शुद्ध भक्ति प्राप्तकर, कृष्ण प्रेम रूप परम पुरुषार्थको प्राप्त कर लेता है।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही भगवत्ताकी चरम सीमा हैं। वे सर्वशक्तिमान एवं परम कृपालु हैं। उनके नामका आभास भी भीषण महापापोंको भस्मकर

हृदयको निर्मल एवं स्निग्ध बता देता है। अतः निष्कपट श्रद्धापूर्वक उनका भजन करना उचित है। श्रीशिक्षाष्टकमें कृष्णभजनके क्रमका उल्लेख किया गया है। जिसका अनुसरण करनेसे साधकके हृदयमें क्रमशः कृष्ण–लीलाओंकी स्फूर्ति होती है। पहले प्रथम श्लोकमें उल्लिखित भजनकी रीतिके अनुसार भजन करना चाहिए। इसके पश्चात् द्वितीय श्लोकके अनुरूप, फिर तृतीय एवं चतुर्थ श्लोकके अनुसार श्रद्धापूर्वक भजन करनेसे क्रमशः भजन परिपक्व होता है। इसके पश्चात् पञ्चम श्लोकमें निहित भावके अनुसार भजन करते हुए अपनी सिद्ध देहका चिन्तन करना चाहिए। इस पञ्चम श्लोकमें अपनी सिद्ध देहसे श्रीमती राधाजीका ऐकान्तिक पदाश्रय ग्रहण करनेसे आरम्भकर उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है। इस प्रकार भजन करते–करते सब प्रकारके अनर्थोंके दूर होनेपर सिद्ध देहमें अधिकार होता है। अनर्थोंके रहते सिद्ध देहका अधिकार कदापि प्राप्त नहीं होता, जो लोग ऐसे अधिकारको प्राप्त किये बिना ही अपनी सिद्ध देहकी भावना या चिन्ता करते हैं, शक्तिके अभावमें उनकी बुद्धि बिगड़ जाती है तथा सारा भजन चौपट हो जाता है, इसे ही सहजिया भाव कहते हैं। यह सहजिया भाव, शुद्ध भजनके सर्वथा विपरीत है। यदि सिद्धिकी सरल अभिलाषा है, तो सावधानीपूर्वक उपरोक्त भजनक्रमका अवलम्बन करो। श्रीरूप–रघुनाथ आदि भजन पारदर्शी महाजनोंका पथ अनुसरण करो।

सिद्ध देहकी प्राप्ति होनेपर क्रमानुसार भजन करनेसे अनायास ही अष्टकालीय सेवासुखकी प्राप्ति होती है। इसलिए शिक्षाष्टकके भावोंका चिन्तन करते हुए स्मरण और कीर्तन होनेपर क्रमानुसार अष्टकालीय सेवाकी उद्दीपना होगी। इस प्रकार सारे अनर्थ दूर हो जायेंगे तथा सहज ही प्रेमधर्मकी प्राप्ति हो सकेगी। उस समय धर्मार्थकाममोक्ष ये चारों पुरुषार्थ व्यर्थ जैसे प्रतीत होंगे।

अथ भजनक्रम—शिक्षाष्टक १ श्लोक—(१) नामके द्वारा चित्तरूपी–दर्पणका मार्जन—

चेतो दर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि–निर्वापणम्
श्रेयः कैरव चन्द्रिका वितरणं विद्यावधू–जीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम्।।११।।

—चित्तरूपी दर्पणको शोधित करने वाले, संसाररूप महादावानलको सम्पूर्ण रूपसे बुझा देनेवाले, जीवोंकी कल्याणरूपिणी कुमुदिनीको विकसित करनेके लिए भावरूपी चन्द्रिकाका वितरण करनेवाले, विद्या रूपी वधूके जीवन-स्वरूप, आनन्दरूपी समुद्रको निरन्तर वर्द्धित करनेवाले, पग-पगपर पूर्ण अमृतका रसास्वादन करानेवाले, बाहर-भीतरसे देह, हृदय, आत्मा और स्वभाव सबको सर्वतोभावेन निर्मल और सुशीतल करनेवाले श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन ही विशेषरूपसे सर्वोपरि जययुक्त हों।।११।।

संकीर्त्तन हैते पाप-संसार नाशन। चित्तशुद्धि सर्वभक्ति-साधन उदगम्।।
कृष्ण प्रेमोद्‌गम प्रेमामृत आस्वादन। कृष्ण प्राप्ति-सेवामृत समुद्रे मज्जन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षामें सर्वप्रथम शुद्ध संकीर्त्तनकी ही महिमा कही गई है।

श्रीकृष्ण-कीर्तन सर्व मंगल स्वरूप होनेके कारण मूल श्लोकके चौथे चरणमें जो 'परं' शब्द उल्लिखित है, उसके द्वारा सर्वप्रथम श्रद्धा, तत्पश्चात् सत्संग और उसके पश्चात् भजन-क्रियाके अन्तर्गत शुद्ध श्रीकृष्ण संकीर्त्तनको ही लक्ष्य किया गया है। करुणावरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभु जीवोंको सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वोंका बोध करानेके लिए स्वयं एक साधक भक्तकी भाँति श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनकी महिमाका गान कर रहे हैं। अप्राकृत, अचिन्त्य, अद्वय-तत्त्व भगवद् नाम रूपमें स्वयं श्रीभगवान जीव कल्याणके लिए प्रपञ्चमें प्रकट होते हैं।

हमारे तत्त्वाचार्य श्रीमद् जीव गोस्वामीजी कहते हैं कि एक ही परमतत्त्व अपनी स्वाभाविकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे स्वरूप, तद्रूप वैभव, जीव और प्रधान (प्रकृति)—इन चारों रूपोंमें सदासर्वदा विद्यमान रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य मण्डलस्थित तेज, मण्डल, मण्डलसे बहिर्गत रश्मि-परमाणु औरसूर्यकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—इन चारों रूपोंमें एक ही सूर्य अवस्थित है। भगवानकी पराशक्ति ही अन्तरङ्गा, तटस्था और बहिरङ्गा—इन तीन रूपोंमें प्रकाशित है। अन्तरङ्गा स्वरूप शक्तिके द्वारा वे परम तत्त्व अपने पूर्णस्वरूपमें-सर्वदोष विवर्जित परम मङ्गलमय निखिल अप्राकृत गुणोंके आधार भगवानके रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं। साथ ही अपनी लीला सम्पादनके लिए अपनी उसी स्वरूप-शक्तिके द्वारा तद्रूप-वैभव अर्थात् वैकुण्ठ आदि धाम, परिकर एवं नारायण आदि भगवत् स्वरूपोंमें नित्य अवस्थित हैं।

पुनः वही परमतत्त्व केवलमात्र तटस्था शक्तिसे युक्त अपने

विभिन्नांश-स्वरूप असंख्य चिद् परमाणुओं—जीवोंके रूपमें विद्यमान हैं। यद्यपि अणुचिद् जीवोंका भगवानसे पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है, किन्तु वे भगवान नहीं कहे जा सकते और न हो सकते हैं। पुनः परमतत्त्व भगवान तदीय बहिरंगा मायाशक्तिके द्वारा तदीय बहिरंग वैभव रूप इस सम्पूर्ण जड़ जगतको प्रकट किये हुए हैं। यह जड़-जगत्—मायाशक्ति अर्थात् प्रधानकी ही परिणति है। इस प्रकार जीव, जड़-जगत् और वैकुण्ठजगत् तद्रूप वैभवका भगवत् स्वरूपसे भेद और अभेद—अचिन्त्य भेदाभेद दोनों ही सिद्ध हैं। 'चेतोदर्पणमार्जनं' के द्वारा जीवके स्वरूप-तत्त्वका बोध कराया गया है। इस विषयमें श्रीजीव गोस्वामीका सिद्धान्त यह है कि जीव नामक समष्टि शक्तिसे युक्त परम तत्त्वका एक क्षुद्र अंश ही जीव कहलाता है। ईश्वर विभु चैतन्य हैं और जीव अणु चैतन्य है। जीव असंख्य हैं, वे बद्ध और मुक्त हैं। परमेश्वरसे विमुख होनेपर जीव बद्ध हो जाते हैं। पुनः परमेश्वरके प्रति उन्मुख होनेपर जीवोंके शुद्ध स्वरूप और गुणोंको आवृत करने वाली मायाका आवरण हट जानेपर जीव मुक्त हो जाते हैं—जैसे धूलि द्वारा आच्छादित मलिन दर्पणमें अपना मुख नहीं दिखाई देता है, उसी प्रकार अविद्यारूपी मल द्वारा मलिन हुए चित्तमें स्वस्वरूपका यथार्थ रूपमें दर्शन नहीं होता। ह्लादिनी-सार वृत्ति-स्वरूप भक्तिका साधन जब प्रारम्भ होता है, तब श्रवणके अनन्तर श्रीकृष्ण संकीर्त्तन स्वयं प्रादुर्भूत होकर अविद्यारूपी मलको सम्पूर्ण रूपसे धो देते हैं। चित्त दर्पणके निर्मल होनेपर यथार्थतः स्वस्वरूप दर्शन होता है। भगवत्-दास्य—भगवत् सेवा ही जीवका स्वधर्म है। भव महादावाग्निनिर्वापणं—जीवका इस संसारमें पुनः-पुनः जन्म लेना ही 'भव' शब्दका तात्पर्य है। यह भवमहादावाग्नि श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनके अतिरिक्त और किसी भी उपायसे बुझ नहीं सकती। पूर्वपक्षी प्रश्न करते हैं—क्या स्वधर्म-ज्ञानकी उपलब्धि होनेपर श्रीकृष्ण संकीर्त्तन समाप्त हो जाता है? नहीं, ऐसा कदापि नहीं होता। हरि संकीर्त्तन जीवका नित्य धर्म है, यह साधन तथा साध्य दोनों ही हैं। 'श्रेयःकैरवचन्द्रिका-वितरणं'—मायाग्रस्त जीवोंके लिये माया भोग ही प्रेयः (प्रार्थनीय) होता है और उसीसे उनका अनिवार्य त्रिताप भोग उपस्थित होता है। इसके विपरीत श्रीकृष्ण सेवामें सदासर्वदा तत्पर रहना ही श्रेयः है। यह श्रेयः ही कुमुदिनी है। श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन अपनी भाव रूपिणी चन्द्रिकाका वितरणकर जीवोंकी कल्याणरूपी कुमुदिनीको विकसित करते हैं। 'विद्यावधूजीवनम्'—श्रीकृष्ण संकीर्त्तनके प्रभावसे जीवका

अविद्यारूपी अज्ञान दूर हो जाता है तथा श्रीकृष्ण सम्बन्ध उदय होता है। अतः श्रीकृष्ण संकीर्त्तन विद्यारूपिणी वधूके जीवन स्वरूप हैं। इसके द्वारा जीवका स्वरूपगत शुद्ध चिन्मय शरीर, यहाँ तक कि अधिकार भेदसे मधुररस आस्वादन योग्य शुद्ध गोपी देह भी प्रकट हो जाता है। श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति ही वधू है।

आनन्दाम्बुधिवर्धनम्—पूर्वपक्षी प्रश्न उठाते हैं कि जीवका स्वरूप अणु होनेसे उसका स्वरूपगत सुख भी क्षुद्र ही होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। श्रीकृष्ण संकीर्त्तनसे ह्लादिनीकी सारवृत्ति द्वारा जीवके स्वाभाविक आनन्दको अनन्त अपरिसीम रूपमें सम्वर्धित करते हैं अर्थात् शुद्ध स्वरूप-प्राप्त जीव अपरिसीम आनन्द लाभ करते हैं।

प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं—शुद्ध स्वरूपको प्राप्त जीव चिद् रसमें स्थित होकर प्रतिक्षण नवनवायमान रूपमें भगवानकी रूपमाधुरी और लीलामाधुरीका आस्वादन करता है अर्थात् मुरलीधर द्विभुज रूप गोपवेशधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्णके सेवामृतका आस्वादन करता है।

सर्वात्मस्नपनं—इस अवस्थामें हृदय सम्पूर्ण निर्मल होनेके कारण स्वसुख आदि कामनाओंसे रहित जीव स्वाभाविक रूपमें ह्लादिनी सार महाभावमयी श्रीमती राधिकाकी परिचारिकाके रूपमें युगल विलास सम्बन्धी आनन्दका उपभोग करते हैं। यहाँ 'सर्वात्मस्नपनम्' इन दो पदोंके प्रयोगसे सायुज्य मुक्तिके अन्तर्गत ब्रह्ममें लय होनेके दोषों तथा स्वसुख-भोग दोषोंसे रहित परम निर्मलताका बोध होता है।

श्रीरूपगोस्वामीकृत नामाष्टक ७ श्लोक—नामके आनन्दचिद्घन स्वरूपका वर्णन—

सूदिताश्रितजनार्त्तिराशये, रम्यचिद्घन-सुखस्वरूपिणे।
नाम गोकुलमहोत्सवाय ते कृष्ण पूर्णवपुषे नमो नमः॥१२॥

हे आश्रित जनोंके पीड़ासमूहको नष्ट करनेवाले! रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले! गोकुलके महोत्सव स्वरूप एवं व्यापक स्वरूपवाले हे कृष्णनाम! पूर्वोक्त गुण विशिष्ट आपके प्रति मेरा बारम्बार नमस्कार है॥१२॥

आश्रित जनेर सव आर्तिनाश करि। अतिरम्य चिद्घन स्वरूपे विहरि॥
गोकुलेर महोत्सव कृष्ण पूर्णरूप। हेन नामे नमि प्रेम पाई अपरूप॥
नाम कीर्त्तने हय सर्वानर्थ नाश। सर्व शुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास॥

भजनरहस्यवृत्ति—कृष्णनाम—आश्रित जनोंकी सब प्रकारकी आर्ति और दुःखोंको, विशेषतः व्रजवासियोंके अतिशय विरार्त्तिको दूरकर परम रमणीय, घनीभूत आनन्दके मूर्तिमान विग्रह नन्दनन्दन श्रीकृष्णस्वरूपमें विहार करनेवाले, नन्द-गोकुलके महोत्सव और पूर्ण कृष्ण-स्वरूप है। ऐसे श्रीकृष्णनामके प्रति मुझे (श्रीचैतन्य महाप्रभु) अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो। अहा! नाम-संकीर्तनके द्वारा सभी प्रकारके अनर्थोंका पूर्णरूपेण नाश हो जाता है तथा सब प्रकारके शुभ—कृष्णके प्रति अतिशय उल्लासपूर्ण प्रेमका उदय भी हो जाता है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि बत्तीस प्रकारके सेवापराध तो नामके द्वारा नष्ट हो सकते हैं, पर साधुनिन्दा आदि दस प्रकारके नामापराध, कैसे नष्ट होंगे? इसका उत्तर है कि वे भी नामके द्वारा ही नष्ट होंगे, इस भावसे कहते हैं।

अष्टाङ्गयोगादि पथ सर्वदा भयकारी है—यथा श्रीमद्भागवत (१.६.३६)—

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाद्धात्मा न शाम्यति।।१३।।

काम क्रोध लोभादि रिपुओंके वशीभूत अशान्त मन जिस प्रकार मुकुन्द सेवासे वशीभूत होता है, उतना यम नियमादि अष्टाङ्ग योग मार्गके द्वारा निग्रह या शान्त नहीं होता।।१३।।

योगे शुद्ध करि' चित्ते एकाग्रह करे। बहुस्थले ए कथार व्यतिक्रम धरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—

ज्ञानी जीवन्मुक्त दशा पाइनु करि माने।
वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्णभक्ति बिने।।

(चै. च. म. २२.२९)

इन्द्रिय वृत्तिके संयमके लिए योगी अष्टाङ्ग योगकी क्रियाएँ यम नियमादिका पालन करते हैं, अस्थिर चित्तको स्थिर करनेके लिए प्राणायाम आदि करते हैं, भोग्य वस्तुको दूर करनेके लिए प्रत्याहार करते हैं, ध्येय वस्तुका ध्यान, पुनः पुनः चिन्तनमें धारणा एवं समाधि द्वारा चिद्‌विलासरहित ब्रह्ममें नियुक्त होते हैं। फिर भी इतने कष्ट तथा संयमसे यदि वे च्युत हो जायें तो अधोगतिको प्राप्त होते हैं। योगादिसे जीवका अन्तःकरण मूलरूपसे शुद्ध नहीं होता, इन्द्रिय-लोलुप रूप-रस आदिके विषयोंको देखते ही पुनः

उन्हें पानेके लिए व्याकुलित हो जाता है और यही उनके पतनका कारण बन जाता है। महर्षि विश्वामित्र, सौभरी मुनि आदि इसके उदाहरण हैं।

यम नियमादि योग साधनके फल भक्ति मार्गके अनुष्ठानसे, भक्तमें स्वतः ही स्फुरित होते हैं, वे भक्तके पास भक्तिके प्रभावसे आनुषंगिक रूपमें आ जाते हैं। भक्ति योगमें भक्तगण अभय, अशोक तथा निःस्पृह होकर मुकुन्द-सेवा करते हैं—श्रीमुकुन्द भी अपने भक्तोंकी अहैतुकी भक्ति द्वारा प्रसन्न हो उनकी सर्वप्रकारसे रक्षा तथा पोषण करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें (१.५.१२) ज्ञान कर्मकी निन्दा की गई है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।।१४।।

—निर्मल ज्ञान भी जो मोक्ष प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवानकी भक्तिसे रहित हो तो उसकी शोभा नहीं होती। फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमंगल स्वरूप है, वह काम्य-कर्म और जो भगवानको अर्पण नहीं किया है, ऐसा निष्काम-कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है?।।१४।।

निरञ्जन कर्मातीत, कभु ज्ञान सुशोभित, शुद्ध भक्ति बिना नाहि हय।।
स्वभाव अभद्रकर्म, हलेओ निष्कामधर्म, कृष्णार्पित नैले शुभ नय।।

भजनरहस्यवृत्ति—निष्कर्मका भाव ही नैष्कर्म्य है। उसमें कर्मकाण्डकी विचित्रता तो नहीं है, फिर भी भगवत्भजनसे रहित होनेके कारण वह भक्तोंको स्वीकार नहीं है। निरञ्जन अर्थात् अविद्यारहित ज्ञान भी यदि भगवानमें समर्पित नहीं है, ऐसे ज्ञानसे भी भक्तोंका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जिस वैराग्यसे भगवत् चरणोंमें आसक्ति नहीं होती है, वह वैराग्य-चेष्टा भी व्यर्थ है। आचार्यपाद निरूपण करते हैं कि जो जीव नित्य हरिसेवा छोड़कर अभद्र-स्वरूप कर्म अथवा घृणित मोक्षके प्रति धावित होता है, वह जीव अपने चरम मंगलसे सदाके लिए वंचित हो जाता है।

अभक्तिमार्ग निन्दित है; यथा श्रीमद्भागवत (१०.१४.४)—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।१५।।

—भगवन्! आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूल स्रोत है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम उठाते और दुःख

भोगते हैं, उनको बस क्लेश ही क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं—जैसे थोथी भूसी कूटने वालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं।।१५।।

भक्ति पथ छाड़ि करे ज्ञानेर प्रयास। मिछे कष्ट पाय तार हय सर्वनाश।।
अति कष्टे तुष कुटि तन्डूल ना पाय। भक्तिशून्य ज्ञाने तथा वृथा दिन जाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे प्रभु! जो निखिल मंगल स्वरूप भक्ति पथका अनादर कर निर्विशेष ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके लिए कठोर परिश्रम करते हैं, उनका परिश्रम अन्तमें क्लेशदायी होता है। भक्ति पथ अत्यन्त सहज, सरल एवं अनायास सुलभ है। भावपूर्ण हृदयसे केवल पत्र, पुष्प अर्पित करनेसे ही भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु भगवत्-सेवा त्याग कर जो ब्रह्मलीन होनेकी चेष्टा करते हैं वे दुःख ही प्राप्त करते हैं।

(२) नाम-संकीर्त्तनसे संसार-दावानलका उपशमन होता है; यथा श्रीमद्भागवत (६.२.४६)—

नातः परं कर्म–निबन्ध–कृन्तनं, मुमुक्षतां तीर्थ–पदानुकीर्त्तनात्।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा।।१६।।

—जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बना देनेवाले भगवानके नाम-संकीर्त्तनसे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है, जिससे पापोंका समूल ध्वंस हो सके। क्योंकि भगवानका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर कर्मके पचड़ोंमें नहीं पड़ता। भगवन्नामके अतिरिक्त किसी भी दूसरे प्रायश्चित्तका आश्रय करनेसे मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा उससे पापोंका मूलरूपसे नाश नहीं होता।।१६।।

कर्मबन्ध सुखण्डन, मोक्ष प्राप्ति संघटन, कृष्णनाम-कीर्त्तने साधय।
कर्मचक्र रजस्तमः, पूर्णरूपे विनिर्गम, नाम बिना नाहि अन्योपाय।।

जैसा पद्मपुराण उत्तरखण्डके अध्याय ४६ में कहते हैं—

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।१७।।

—'हरि' ये दो अक्षर जिसके मुखसे एकबार भी बिना किसी प्रयासके उच्चरित हो जाते हैं, उसकी मुक्ति अनायास ही हो जाती है।।१७।।

यार मुखे एकबार नाम नृत्य करे। मोक्षसुख अनायासे पाय सेइ नरे।।

(३) नाम समस्त श्रेयरूप कुमुदिनीको विकसित करानेवाली चन्द्रज्योत्सनाके समान है; यथा प्रभासखण्डमें—

मधुर मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां, सकल निगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा, भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।।१८।।

—हरिनाम सब प्रकारके मंगलोंमें श्रेष्ठ मंगलस्वरूप एवं मधुरसे भी सुमधुर है। वह निखिल श्रुति-लताओंका चिन्मय सुपक्व फल है। हे भार्गव श्रेष्ठ! श्रद्धासे हो अथवा अवहेलनासे, मनुष्य यदि स्पष्टरूपसे एकबार भी निरपराध होकर 'कृष्ण' नामका उच्चारण करे, तो वह नाम उसी समय मनुष्यको तार देता है।।१८।।

सकल मङ्गल हैते परम मङ्गल। चित्स्वरूप सनातन वेदवल्ली-फल।।
कृष्णनाम एकबार श्रद्धाय हेलाय। जाँहार वदने सेइ मुक्त सुनिश्चय।।

(४) नाम ही विद्यारूपी वधूके जीवन-स्वरूप हैं; यथा गरुड़पुराण—

यदिच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाद् यत् परमं पदम्।
तदादरेण राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्त्तनम्।।१९।।

—हे राजन! यदि परम ज्ञान एवं ज्ञानसे परमपद अर्थात् प्रेमाभक्ति चाहते हो तो आदरसहित गोविन्दनामका कीर्त्तन करो।।१९।।

परम ज्ञान हैते ये परम पद पाय। गोविन्द कीर्त्तन सेइ करह श्रद्धाय।।

यथा, देवताओंके वचन; श्रीमद्भागवत (३.५.४०)—

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणाभिहता न शर्म।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम।।२०।।

—हे विधाता! हे ईश! हे परमात्मन्! इस संसारमें तापत्रयसे व्याकुल जीवोंको तनिक भी शान्ति नहीं है। इसलिए हे भगवन्! विद्याके सहित विद्यमान आपके पादपद्मोंकी छायाका हम आश्रय लेते हैं।।२०।।

ए संसारे तापत्रय, अभिहत जीवचय, ओहे कृष्ण ना लभे मङ्गल।
तव पदछाया विद्या, शुभ दाता अनवद्या तदाश्रये सर्वशुभ फल।।

भजनरहस्यवृत्ति—देवतागण भगवानके चरणकमलोंमें प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! अपने जन्म-जन्मान्तरके कर्मानुसार जीव शुभ-अशुभादि फल भोग करता है। मायासे संचालित हो भवाटवीमें भ्रमण करता हुआ संसार तापके आश्रयसे आक्रान्त होता है। उस त्रितापसे त्राण पानेके लिए जीव अनेक यत्न करता है। कभी ज्ञान-वैराग्यके द्वारा, कभी ब्रह्म-विद्याके द्वारा, किन्तु

उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती। मोक्ष प्राप्त करके वह जड़वत् हो जाता है, किसी प्रकारकी उसे अनुभूति नहीं होती। ठीक उसी प्रकार जैसे जलमग्न पत्थरको जलकी सुखानुभूति नहीं होती। शान्तिका एकमात्र उपाय आपके श्रीचरणोंका आश्रय ही है। श्रीहरिके चरणोंमें पराशान्ति प्राप्त होती है। भक्तिका अवलम्बन कर वह पराशान्ति एवं आनन्दके समुद्रमें निमज्जित होता है। अतः आपके चरण कमलोंका अवलम्बन ही पराशान्ति प्राप्त करनेका एकमात्र साधन है।

यथा तत्रैव, (श्रीमद्भा. ४.२९.४९)—

"सा विद्या तन्मतिर्यया" ।।२१।।

—विद्या वही है, जिससे भगवानमें मति लगे।।२१।।

ये शक्तिते कृष्णे मति करे उद्भावन। विद्या नामे सेइ करे अविद्या खण्डन।।
कृष्णनाम सेइ विद्यावधूर जीवन। कृष्ण पादपद्मे ये करये स्थिर मन।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवानकी एक ही शक्ति है, उसकी दो वृत्तियाँ हैं—विद्या और अविद्या। योगमाया स्वरूपशक्ति ही विद्या है और जड़जगत् सृष्टिकारिणी जीवके स्वरूप एवं स्वरूप सम्बन्धी गुणोंकी आवरणकारिणी महामाया ही अविद्या है।

विद्या शब्दका अर्थ है 'विद् धातु' जानना अर्थात् जिसके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवा जानी जाती है, वही विद्या है। श्रवण-कीर्त्तन करते-करते जिस समय साधक जीवके हृदयमें शुद्ध भक्तिका उदय होता है, उस समय भगवत् सेवाके अतिरिक्त अन्यान्य कामना-वासनाओंको दूर करने वाली भक्तिदेवी उक्त अविद्याको दूर हटाकर विद्यावृत्तिके द्वारा जीवके स्थूल और लिङ्गमय देहों (आवरणोंको) विनष्ट कर देती है। साथ-ही-साथ जीवके स्वरूपगत शुद्ध चिन्मय शरीरको भी प्रकट कर देती है। इस विद्यावधूका जीवन कृष्णनाम है, यह विद्या श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें मनको स्थिर करती है। राय रामानन्दजी भी कहते हैं—

प्रभु कहे—'कौन विद्या विद्या मध्ये सार।
राय कहे—'कृष्ण भक्ति बिना विद्या नाहि आर।।'

(५) नामसे आनन्दसमुद्रकी वृद्धि होती है; यथा तत्रैव (श्रीमद्भा. ८.३.२०)—

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः।।२२।।

—एकान्त रूपमें भगवानके शरणागत भक्तगण समस्त कृष्णेतर वासनाओंसे शून्य होकर श्रीकृष्णके अद्भुत सुमङ्गल चरित्रका सुखपूर्वक संकीर्त्तन करते हुए आनन्द समुद्रमें निमग्न रहते हैं।।२२।।

अकिञ्चन हये करे एकान्त संकीर्त्तन। आनन्द समुद्रे मग्न हय सेइ जन।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोक ग्राह द्वारा आक्रान्त गजेन्द्रकी भगवत् प्रार्थनाका अंश है। साधक जीव भी भगवद् नाम करते-करते अपने हृदयमें भगवद् अनुभूति करते हैं। श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन ह्लादिनी-सारवृत्तिके द्वारा जीवके स्वाभाविक आनन्दको अनन्त-अपरिसीम रूपमें सम्वर्द्धित करते हैं। शुद्धस्वरूप प्राप्त जीव इस दशामें अपरिसीम आनन्द प्राप्त करते हैं। इस दशामें जीव चिन्मय एकरस होकर अर्थात् दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इनमेंसे किसी एक रसमें नित्य स्थित होकर नव-नवायमान अनुरागके द्वारा पग-पगपर पूर्णामृत रसास्वादन करता है।

नाम-संकीर्तनके द्वारा पग-पगपर पूर्णामृतका आस्वादन होता है; यथा पद्मपुराण—

तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधिजीर्णपङ्क संमग्नमोक्षणविचक्षण पादुकेभ्यः।
कृष्णेति वर्णयुगलं श्रवणेन येषां आनन्दथुर्भवति नर्तितरोमवृन्दः।।२३।।

—'कृष्ण' ये दो वर्ण कानोंमें जाते ही जिनको रोमाञ्च एवं आनन्द उदित हो, ऐसे भक्तवृन्द संसारमें लिप्त जीवोंका उद्धार करते हैं। विचक्षण अर्थात् विशेषरूपसे चतुर, जो अपना नित्य कल्याण चाहते हैं, वे लोग ही रसिक भक्तोंके चरणोंमें शरणागत होते हैं।।२३।।

कृष्णनाम सुनि रोमवृन्द नृत्य करे। आनन्द कम्पन हय याहार शरीरे।।
भवसिन्धुपङ्क मग्न जीवेर उद्धार। विचक्षण तिहो नमि चरणे ताँहार।।

भजनरहस्यवृत्ति—'कृष्ण' नामका श्रवणकर जिनको रोमाञ्च हो उठता है, आनन्दवश शरीरमें पुलकोद्गम और नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं, ऐसे महाभाग भक्तजन भवसिन्धुके भीषणपङ्कमें निमग्न जीवोंके उद्धार करनेमें सिद्धहस्त हैं, उनके श्रीचरणकमलोंमें पुनः पुनः नमस्कार है।

(७) नामसे सर्वात्मस्नपन होता है; यथा श्रीमद्भागवत (१२.१२.४७)—

संकीर्त्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः।।२४।।

—भगवान श्रीहरिके नाम, रूप, लीला, गुणादिका संकीर्त्तन तथा माहात्म्य

श्रवण करनेवाले भक्तके हृदयमें वे स्वयं ही आकर विराजमान हो जाते हैं और उसके हृदयकी अन्धकार–पापराशिको ध्वंस कर देते हैं। जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको तितर–बितर कर देती है, ठीक उसी प्रकार भगवान जीवके हृदयमें आते ही उसके अपराध, अनर्थ, कुटिनाटी एवं कृष्णेतर वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, जिससे कृष्णनामाश्रितजनोंका चित्तरूपी दर्पण स्वच्छ हो जाता है तथा वह अति शीघ्र अपने शुद्ध स्वरूपकी उपलब्धि करने लगता है।।२४।।

श्रुत अनुभूत जत अनर्थ–संयोग। श्रीकृष्ण संकीर्त्तने सव हय त वियोग।।
येरूप वायुते मेघ सूर्य तमः नाशे। चित्ते प्रवेशिया दोष अशेष विनाशे।।
कृष्णनामाश्रये चित्तदर्पणमार्जन। अतिशीघ्र लभे जीव कृष्ण–प्रेमधन।।

भजनरहस्यवृत्ति—आलोच्य श्लोकमें नामसंकीर्त्तनकी महिमा वर्णित हुई है। नामसंकीर्त्तन करने वाले जीवके हृदयमें नामप्रभु प्रवेश कर समस्त अनर्थोंका नाशकर स्निग्ध बना देते हैं। यही नहीं, यहाँ तक कि भगवन्नामके संकीर्त्तनसे सुने और देखे जानेवाले सभी प्रकारके अनर्थ वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यके द्वारा अन्धकार और वायुके द्वारा बादल दूर हो जाते हैं। शास्त्रोंका तात्पर्य है कि साधुसंगमें नामकीर्त्तनके प्रभावसे जीवोंकी अशेष भोगकी वृत्ति नष्ट हो जाती है। श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतका समापन भी नामसंकीर्त्तन महिमा–द्योतक श्लोकसे ही किया है–

नामसंकीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

(१२.१३.२३)

—अर्थात् जिन भगवानके नामोंका संकीर्त्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है, जिन भगवानके चरणोंमें आत्म समर्पण तथा प्रणति सर्वदाके लिए सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्व स्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

नाम कृष्णचैतन्यरसमय माधुर्य विग्रह हैं; यथा नामाष्टक अष्टमश्लोक—

नारदवीणोज्जीवन! सुधोर्मिनिर्यास–माधुरीपूर।
त्वं कृष्णनाम! कामं स्फुर मे रसने रसेन सदा।।२५।।

—हे नारदकी वीणाके जीवन! हे अप्राकृत सुधासागरकी तरङ्गोंके सारनिर्यास! हे अखिल माधुरियोंके घनविग्रह! हे कृष्णनाम! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर, सदैव स्फूर्ति पाते रहें।।२५।।

मुनिवीणा-उज्जीवन-सुधोर्मि-निर्यास। माधुरीते परिपूर्ण कृष्णनामोच्छवास।।
सेई नाम अनर्गल आमार रसने। नाचुन रसेर सह एइ वाञ्छा मने।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे नारदमुनिकी वीणाके जीवन! हे अप्राकृत सुधा-सागरकी तरंगोंके सार-निर्यास! हे निखिल माधुरियोंके घनविग्रह! हे कृष्णनाम! आप मेरी रसनाके ऊपर स्वेच्छापूर्वक सरस होकर नित्य-निरन्तर नृत्य करें—आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी यही प्रार्थना है।

तत्रैव द्वितीय श्लोक—

जय नामधेय! मुनिवृन्दगेय! जनरञ्जनाय परमक्षराकृते!।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं, निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि।।२६।।

—हे मुनिगणोंके द्वारा गायन करने योग्य एवं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिए ही अक्षरोंकी आकृति धारण करने वाले हरिनाम! आपकी जय हो, अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे अथवा अपने उत्कर्षको प्रकट करें। प्रभो! वह उत्कर्ष यह है कि, आप तो अनादरपूर्वक अर्थात् सांकेत्य परिहासादिके रूपसे, किंचित् उच्चारित होनेपर भी लिङ्गदेहपर्यन्त समस्त भयङ्कर पापसमूहको समूल नष्ट कर देते हैं। अतः मुझे भी अपनी शरणागति अवश्य प्रदान करेंगे तथा अपने प्रभावका स्मरण करके, मुझको भी पवित्र कर दीजिये; क्योंकि मैं, आपके यशका प्रचारक हूँ, यह भावार्थ है।।२६।।

जीव शिव लागि परमाक्षर आकार। मुनिवृन्द गाय श्रद्धा करि अनिवार।।
जय जय हरिनाम अखिलोग्रताप। नाश करो हेला गाने ए बड़ प्रताप।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! जीवोंके कल्याणके लिए ही आपने परम अक्षरका (शब्दब्रह्म) आकार धारण किया है। सिद्ध मुनि-महर्षिवृन्द श्रद्धापूर्वक नित्य-निरन्तर आपकी इस महिमाका गान करते हैं। अवहेलापूर्वक श्रीनामका गान-कीर्तन करनेपर निखिल उग्र तापोंका नाश करनेवाले हरिनाम आपकी जय हो, जय हो।

वेदवाक्योंमें नाम तत्त्व (ऋग्वेद प्रथम मण्डल १५६ सूत्र तृतीय ऋक्)—

ॐ इत्येतद् ब्रह्मणो नेदिष्टं नाम यस्मादूच्चार्यमान।
एव संसारभयात्तारयति तस्मादुच्यते तार इति।।२७।।

—जो ब्रह्मके अति निकटवर्ती अर्थात् निर्देशक नाम 'ॐ' का उच्चारण करते हैं, वह (श्रीनाम) संसार भयसे उद्धार कर देता है, इसलिए यह तारक ब्रह्मके नामसे विख्यात है।।२७।।

ॐ आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन् महस्ते
ि व ष ण ा ा ` ।
सुमतिं भजामहे ॐ तत्सत्।।२८।।

—हे विष्णो! तुम्हारे चैतन्यविग्रह, सर्वप्रकाशक नामसे समस्त वेदोंका आविर्भाव हुआ है अथवा परमानन्द एवं ब्रह्मस्वरूप, सुलभ परविद्यारूप–नामका विचारपूर्वक कीर्त्तन करते–करते भजन करता हूँ।।२८।।

ततोऽभुत्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट्।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः।।२९।।

—श्रीभगवान् अव्यक्त प्रभव तथा समष्टि, व्यष्टि रूप हैं। प्रणव ॐकार उनका ही प्रकाश है तथा वे ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान रूपमें प्रकाशित हैं। ॐकारके तीन वर्णोंसे हरि, कृष्ण तथा राम नामोंकी अभिव्यक्ति होती है। हरिका नाम हरिसे अभिन्न है।।२९।।

अव्यक्त हइते कृष्ण स्वराट स्वतन्त्र। ब्रह्म, आत्मा, भगवान् लिङ्गत्रय तन्त्र।।
अकार उकार आर मकार निर्देश। ॐ हरि कृष्ण राम नामेर विशेष।।
हरि हइते अभिन्न सकल हरिनाम। वाच्यवाचक भेदे पूर्ण करे काम।।

भजनरहस्यवृत्ति—अव्यक्त ब्रह्मसे भी व्यक्त ब्रह्म श्रीकृष्ण परम महान, स्वराट् और स्वतन्त्र हैं। परमब्रह्म श्रीकृष्ण ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान—इन स्वरूपोंमें सदैव प्रकाशित हैं। 'ॐ' कार के तीन अक्षर 'अ', 'उ' और 'म' क्रमशः हरि, कृष्ण और राम नामोंको सूचित करते हैं। श्रीहरिसे सभी हरिनाम अभिन्न हैं। वाच्यवाचक भेदसे वे श्रीहरि ही सभी साधकोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं। (एक अन्य अर्थके अनुसार ॐकारमें अकारसे कृष्ण, उकारसे श्रीराधा और मकारसे गोपियाँ तथा चन्द्रबिन्दुसे जीव सूचित होते हैं।)

अतएव श्रीचैतन्यभागवत (मध्य २३.७६–७८) में कहा गया है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।३०।।

प्रभु कहे कहिलाम एइ महामन्त्र। इहा गिया जप सबे करिया निर्बन्ध।।
इहा हइते सर्वसिद्धि हइवे सवार। सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं कि महामन्त्र जप करनेसे समस्त बन्धन दूर हो जाते हैं। इसी महामन्त्रसे जीवको सर्वसिद्धि अर्थात् कृष्णप्रेमधन प्राप्त होता है, अतएव सर्वक्षण महामन्त्र करना चाहिए। इसके जपनेकी

कोई विशेष विधि या नियम नहीं है।।३०।।

यथा (भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग साधनभक्ति लहरी)—

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः।
अचिरादेव सर्वार्थः सिद्धत्येषामभीप्सितः।।३१।।

—हरिनाम ही सर्वार्थ सिद्धि प्रदाता हैं, ऐसी दृढ़ मतिसे निरन्तर श्रद्धा सहित हरिनाम करनेपर अति शीघ्र प्रेम फल प्राप्त होता है।।३१।।

निर्वन्धिनी-मति-सह कृष्णनाम करे। अतिशीघ्र प्रेमफल सेइ नाम धरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—जिसके हृदयमें सद्धर्म जाननेकी दृढ़ अभिलाषा है वे अतिशीघ्र अपना मनोऽभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। भक्त जनोंकी सर्वसिद्धि तथा मनोऽभीष्ट गोविन्द चरण-सेवा प्राप्तिसे है। यह सेवा प्रीतिपूर्वक निर्धारित नामसंख्या पूर्ण करनेपर ही प्राप्त होती है।

साधकको दृढ़तापूर्वक निर्धारित नाम-संख्याका जप करना चाहिए, इसीसे नामप्रभुकी कृपासे हृदयमें प्रेम संचार होता है। नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर दिन-रात दृढ़तासे तीन लाख हरिनाम करते थे तथा उनकी प्रतिज्ञा थी—
खण्ड-खण्ड हय यदि याय देह प्राण। तथापि वदने ना छाड़िवो हरिनाम।।

श्रीहरिभक्तिविलासमें निर्बन्धके विषयमें कहा है-

तुलसी काष्ठघटितैर्मणिभिर्जपमालिका।
सर्वकर्माणि सर्वेषामीप्सितार्थफल प्रदा।।
गोपुच्छसदृशी कार्या यद्वा सर्पाकृतिः शुभा।
तर्जन्या न स्पृशेत् सूत्रं कम्पयेन्न विधूनयेत्।।
अङ्गुष्ठपर्वमध्यस्थं परिवर्त्तं समाचरेत्।
न स्पृशेत् वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत्।
भुक्तौ मुक्तौ तथाकृष्टौ मध्यमायां जपेत् सुधीः।।३२।।

—तुलसी काष्ठ अथवा मणिद्वारा निर्मित जपमाला सभी कर्मोंमें सभी प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण करती है। गोपुच्छ अथवा सर्पाकृति जपमाला शुभकारी होती है। जपमालामें तर्जनी अंगुलिका स्पर्श नहीं होना चाहिए। जप करते समय मालाको बार-बार हिलाना या झकझोरना नहीं चाहिए। मालाको अंगुष्ठ एवं मध्यम अंगुलीकी सहायतासे जप और पुनरावृत्ति करें। बाँयें हाथसे मालाको स्पर्श न करें। दूसरा हाथ लगाकर मालाको भ्रष्ट मत करें। भुक्ति तथा मुक्ति चाहने वाले मध्यम अंगुलिसे जप करते हैं।।३२।।

तत्र नियमाः—

मनः संहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः।।३३।।

—जपके समय एकाग्रमन, कृष्ण-इतर बातोंका परित्याग कर शुद्धचित्तसे नामोंके अर्थका चिन्तन करते हुए धैर्य पूर्वक नामका स्मरण, चिन्तन एवं कीर्त्तन करना चाहिए।।३३।।

जप काले मनके एकाग्रभावे लह। चित्ते शुद्ध थाक वृथा कथा नाहि कह।।
नामार्थ चिन्तह सदा धैर्याश्रय कर। नामेते आदर करि, कृष्णनाम स्मर।।

भजनरहस्यवृत्ति—आलोच्य श्लोकमें मन्त्र सिद्धिके उपायोंका वर्णन है—

मनःसंयोग—अपने अभीष्ट नाममें मनको लगाकर लीला चिन्तन करते-करते नाम करना। बद्ध जीवका चित्त अन्यान्य विषयोंकी ओर भटकता है, अतएव साधु संगमें रहकर वैराग्य एवं अभ्यास द्वारा चित्तको संयमित करना चाहिए।

शौच—साधकके लिए स्नानादि द्वारा बाह्य पवित्रता रखना तथा कामादि षड्रिपुओंको वशीभूत करके आन्तरिक पवित्रता द्वारा चित्तको शुद्ध रखना आवश्यक है। चित्तमें इस प्रकार कृष्ण बर्हिमुखताकी तरंगें नहीं आतीं।

मौन—कृष्ण-इतर कथाका वर्जन तथा भगवद् कथाका कीर्त्तन करना ही मौन है। मंत्र जपके समय कोई विषय वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

अव्यग्रता—अस्थिर मनकी चंचलता ही व्यग्रता है। अव्यग्र अर्थात् धैर्य पूर्वक जप करना चाहिए।

अनिर्वेद—अभीष्ट प्राप्तिमें विलम्ब होनेसे निरुत्साहित न हों। धैर्य धारण कर मंत्रजप करना चाहिए।

नामार्थ चिन्तन—साधक मंत्रजपके समय नामसे जुड़ी मिलन और विप्रलम्भ लीलाका स्मरण करें। मंत्र जपके समय निम्न बातोंका अनुसरण करें—

मन्त्रका पञ्चांगके साथ जप करनेसे शीघ्र ही मन्त्रकी सिद्धि होती है। पञ्चांग यह है—

(१) मन्त्रका अर्थ जानकर मन्त्र देवताका स्वरूप तथा उनके साथ सम्बन्ध विशेष प्रतिपादक अर्थोंका चिन्तन करना चाहिए।

(२) मन्त्राधिपति देवता ही मेरे रक्षक हैं—यह न्यास अथवा मन्त्रका एकबार उच्चारण करनेसे कृतकृतार्थता होती है। यह सत्य है फिर भी मन्त्रदेवताकी प्रीतिके लिए १० या १०८ बार उच्चारण न्यास कहलाता

है।

(३) प्रपत्ति—मन्त्र देवताके श्रीचरणोंका ही मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ—यह प्रपत्ति है।

(४) शरणागति—मैं अत्यन्त दुःखपीड़ित जीव हूँ, मैं उनका शरणापन्न हूँ, ऐसा स्थिर करना ही—शरणागति है।

(५) आत्मनिवेदन—मेरा जो कुछ है सभी उनका है, मेरा नहीं, यहाँतक कि मैं भी मेरा नहीं, उनकी वस्तु वे ही भोग करें—यही आत्मनिवेदन है।

इस प्रकार पञ्चांग व्यापारके साथ मन्त्र जप करनेसे शीघ्र ही मन्त्र सिद्धि होती है।

नामार्थ; यथा श्रीगोपालगुरुधृत स्वरूप सिद्धान्त वाक्यम्—

विज्ञाप्य भगवत्तत्वं चिद्घनानन्दविग्रहम्।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः।।
हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
अतो हरेत्यनेनैव श्रीराधा परिकीर्तिता।।
आनन्दैकसुखस्वामी श्यामः कमललोचनः।
गोकुलानन्दनो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते।।
वैदग्धी—सारसर्वस्वं मूर्तिलीलाधिदैवतम्।
राधिकां रमयन्नित्यं राम इत्यभिधीयते।।३४।।

—भगवत्-तत्त्व चिद्घन आनन्दस्वरूप नामरूपमें अवतीर्ण होते हैं। अतएव नाम तथा नामी दोनों अभिन्न हैं, भगवन्नाम स्मरण करते समय यही बुद्धि रहनी चाहिए। साधककी प्रथम अवस्थामें नाम अविद्या हरण करते हैं, इसीलिए वे हरि हैं। रसिकाचार्यवर्ग हरिनामका आस्वादन इस प्रकार करते हैं—वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा अपनी सेवा द्वारा श्रीहरिके चित्तको कुञ्जोंमें हरण करती हैं। अतएव हरेकृष्ण नाम ग्रहण करनेवाला प्रेमभक्ति प्राप्त करता है। कृष्ण ह्लादिनी रूपिणी श्रीराधा कृष्णके मनको हरण करती हैं इसलिए उनका नाम हरा है हराके सम्बोधनमें 'हरे' है। अतः 'हरे कृष्ण' से राधाकृष्ण युगलसे तात्पर्य है। राधाकृष्ण नाम सच्चिदानन्द रूप है। हरेकृष्ण नाममें राधाकृष्ण स्वरूप विद्यमान है। आनन्दस्वरूपिणी श्रीराधाके नित्य स्वामी कमललोचन श्याम श्रीराधिकाके आनन्दके अभिलाषी हैं। समस्त गोकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्ण राधाके साथ सुखास्वादनके लिए

सदैव सतृष्ण रहते हैं। कृष्ण वैदग्ध धीर–ललित नायक लीलेश्वर हैं इसलिए उनका नाम राधारमण है। हरे कृष्ण महामंत्र श्रीयुगल नाम है। यही जप करते हुए युगलकी लीलाओंका स्मरण करो।।३४।।

चिद्घन आनन्दरूप श्रीभगवान्। नामरूपे अवतार एइ त प्रमाण।।
अविद्याहरण कार्य हैते नाम हरि। अतएव हरे कृष्ण नामे याय तरि।।
कृष्णाह्लादस्वरूपिणी श्रीराधा आमार। कृष्ण मन हरे ताई हरा नाम तार।।
राधाकृष्ण शब्दे श्रीसच्चिदानन्द रूप। हरे कृष्ण शब्दे राधाकृष्णेर स्वरूप।।
आनन्द–स्वरूप–राधा तार नित्य स्वामी। कमललोचन श्याम राधानन्दकामी।।
गोकुल–आनन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्ण। राधासङ्गे सुखास्वादे सर्वदा सतृष्ण।।
वैदग्ध्य–सार–सर्वस्व मूर्त लीलेश्वर। श्रीराधारमण राम नाम अतःपर।।
हरेकृष्ण महामन्त्र श्रीयुगल नाम। युगल लीलार चिन्ता कर अविराम।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दघनके मूर्तिमान विग्रह हैं। वे करुणा वरुणालय हैं। इस विषयका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे जीवोंके कल्याणके लिए इस धराधामपर नामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अविद्याहरणका कार्य नाम–स्वरूप हरिसे ही होता है। इसीलिए जो लोग प्रीतिपूर्वक हरिनाम करते हैं, वे अविद्या रचित मायिक संसारसे तर जाते हैं। ह्लादिनी शक्तिकी सारस्वरूप श्रीराधाजी स्वयं–भगवान श्रीकृष्णको सदासर्वदा परमाह्लादित करती हैं, वे अपने मधुर रूप–गुणसे, अपनी प्रेममयी सेवाओंसे परमपुरुष श्रीकृष्णका भी मन हरण कर लेती हैं; इसलिए उनका एक नाम 'हरा' है। इस महामन्त्रमें इसी 'हरा' से सम्बोधन हेतु 'हरे' नामका प्रयोग श्रीराधाजीके लिए ही हुआ है। अतः 'हरेकृष्ण' से ऐकान्तिक भक्त 'राधा कृष्ण' का ही तात्पर्य ग्रहण करते हैं। श्रीराधाजी आनन्दस्वरूपिनी हैं। कमललोचन श्यामसुन्दर उनके नित्य प्रियतम—प्राणवल्लभ हैं; वे सदासर्वदा श्रीराधाजीको प्रसन्न करनेमें ही तत्पर रहते हैं; फिर भी उनके ऋणी बने रहते हैं। गोकुलके आनन्द महोत्सवरूप नन्दनन्दन परमाकर्षक आकर्षक हैं। अतः वे 'कृष्ण' हैं। फिर भी श्रीमती राधाजीके संगमें ही सुखास्वादन करनेके लिए सदा सतृष्ण रहते हैं। वैदग्ध्य–सार–सर्वस्व मूर्तिमान लीलेश्वर होनेपर भी नित्य–निरन्तर श्रीराधाके साथ, उनके हृदयमें बाहर–भीतर सब प्रकारसे रमण करनेके हेतु वे 'राधारमण' के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये राधारमण श्रीकृष्ण ही इस महामन्त्रमें 'राम' शब्दसे अभिहित किये गये

हैं। इस महामन्त्रमें 'हरे कृष्ण' से राधाकृष्ण श्रीयुगल नामको समझना चाहिए। इसलिए इस महामन्त्रका जप या कीर्तन करते समय श्रीराधाकृष्ण युगलकी लीलाओंका निरन्तर स्मरण करना चाहिए।

वृहन्नारदीय पुराणमें—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।३५।।

—कलियुगमें नामके सिवा जीवकी कोई दूसरी गति नहीं है, दूसरी गति नहीं है, दूसरी गति नहीं है।।३५।।

अन्य कर्म धर्म छाड़ि हरिनाम सार। कलियुगे ताहा बिना गति नाहि आर।।

भजनरहस्यवृत्ति—कलियुगमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही नामरूपमें अवतरित हुए हैं। हरिनामके द्वारा ही सारे जगत्का उद्धार सम्भव है। जड़-बुद्धिवाले लोगोंकी हरिनाममें दृढ़ताके लिए 'हरेर्नाम' पदका तीन-बार प्रयोग किया गया है। पुनः ज्ञान, योग, तप आदि कर्मोंके परित्यागको निश्चित करनेके लिए 'केवल' शब्द कहा गया है। जो व्यक्ति शास्त्रके इस आदेशकी अवज्ञा करता है, उसका उद्धार कदापि सम्भव नहीं है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए अन्तमें 'नास्त्येव' पदका भी तीन बार प्रयोग किया गया है।

यथा श्रीमद्भागवतमें (धृतनामकौमुदी)—

नक्तं दिवा च गतभीर्जितनिद्र एको, निर्विण्ण ईक्षितपथो मितभुक् प्रशान्तः।
यद्यच्युते भगवति स्वमनो न सज्जेन्नामानि तद्रतिकराणि पठेद्विलज्जः।।३६।।

—यदिश्रीभगवान् अच्युतके नाममें मन निविष्ट नहीं होता, तब भगवानके रतियुक्त मुख्य कृष्ण नाम (यथा राधारमण, ब्रजवल्लभ, गोपीजनवल्लभ) का लज्जा परित्यागकर दिवानिशि कीर्त्तन करें। निद्राका परित्यागकर, निर्वेद भावसे, प्रशान्त चित्तसे तथा अल्पाहार करते हुए परमार्थके प्रदर्शित पथपर अग्रसर होवें।।३६।।

रात्र दिन उन्निद्र निर्विघ्न निर्भय। मितभुक् प्रशान्त निर्जने चिन्तामय।।
लज्जा त्यजि कृष्णरति उद्दीपक नाम। उच्चारण करे भक्त कृष्णासक्ति काम।।

यथा श्रीमद्भागवतम् (६.३.२२)—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः।।३७।।

—नाम संकीर्त्तनके द्वारा भगवान श्रीवासुदेवकी आराधना ही भक्तियोग

कहलाती है। यही जीवोंके लिए परम धर्म है।।३७।।

भक्तियोग कृष्णनाम ग्रहणादि रूप। पर धर्म नामे तार निर्णीत स्वरूप।।

भजनरहस्यवृत्ति—नाम संकीर्त्तन ही साक्षात् भक्ति-योग है तथा कलियुगमें श्रीब्रजराजनन्दनको वशीभूत करनेका एकमात्र उपाय। पूर्वपक्षसे प्रश्न उठता है कि यदि नामकीर्त्तनके द्वारा भुक्ति आदि सुलभ होती है, तब विद्वान् व्यक्ति कर्मयोगका उपदेश क्यों देते हैं? उत्तर है कि याज्ञवल्क्य, जैमिनी, द्वादश महाजन एवं धर्म-शास्त्रोंके अन्यान्य प्रणेताओंकी मति प्रायः मायादेवीसे विमोहित रहती है। उनका चित्त ऋग्, यजु एवं साम वेदत्रयीके अर्थवादके आपात् मनोहर वाक्योंसे आकृष्ट रहता है तथा वे नानाप्रकारके कर्मानुष्ठान द्वारा अति कष्टसाध्य तुच्छ अनित्य स्वर्गफलकी प्राप्तिमें लिप्त रहते हैं। अत्यन्त सरल-सहज नामकीर्त्तन ही परमधर्म है, वे इसे समझ नहीं पाते हैं।

हरिनाम करते समय कृष्ण लीलाका चिन्तन—

निशान्ते कीर्त्तने कुञ्जभंग करे ध्यान। क्रमे क्रमे चित्त लग्ने रसेर विधान।।

—निशान्त या कुञ्जभंग लीलाका कीर्त्तन एवं ध्यान करनेसे चित्त क्रमशः रसकी ओर अग्रसर होता है—

रात्र्यन्ते त्रस्त-वृन्देरितबहुविरवैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदितरतिललितौ कक्खटीगीः सशंकौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निज-निज धाम्न्याप्त तल्पौ स्मरामि।।३८।।

—रात्रिका अवसान, अब दिन निकलनेवाला है इससे शंकायुक्त होकर वृन्दादेवी श्रीराधाकृष्णको जगानेके लिए शुक-सारिकादि पक्षियों द्वारा कलरव कराती हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही है। मयूर-मयूरी, शुक-सारी, पपीहा कुहु-कुहू पिउ-पिउ आदि कल-ध्वनियोंमें श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका गुणानुवाद करते हुए मानो कह रहे हैं—हे ब्रजराजनन्दन! तथा हे निकुञ्जेश्वरी! हमें आपके दर्शन कब होंगे? पक्षियोंका कलरव सुनकर युगल सरकार जाग्रत हो जानेपर भी परस्पर बिछुड़नेके भयसे सुरत रंगमें अलसाये हुए पुनः एक दूसरेसे लिपट कर सो जाते हैं। वृन्दाजी उन्हें उठानेकी जितनी चेष्टा करती हैं, वे उतना ही अलसाये हुए गाढ़ निद्राको प्रदर्शित करते हैं, एक दूसरेको छोड़ना नहीं चाहते। उसी समय कक्खटी

नामक बन्दरी 'जटिला'-'जटिला' कहकर चीत्कार करती है। यह सुनकर शंकित हो दोनों जग जाते हैं। (यहाँ जटिलाका तात्पर्य है—प्रातःकाल हो गया, सूर्यकी किरणरूपी जटा निकलने वाली है, साथ ही सार जटिला आ रही है—इसका भी बोध होता है।) नित्य तथा प्राण सखी कुञ्जमें प्रवेश करती हैं। मंजरी सखियाँ दोनोंके रतिचिह्न, वस्त्र-भूषण, अलंकारोंको यथावस्थित सुसज्जितकर प्रिय एवं प्रियनर्म सखियोंको बुलाती हैं। किशोर-किशोरीजी आपसमें हास-परिहास करते हैं। श्रीललिताजी दोनोंकी आरती करती हैं। तत्पश्चात् दोनों अपने-अपने भवनोंमें पधारते हैं।।३८।।

देखिया अरुणोदय, वृन्दादेवी व्यस्त हय, कुञ्जे नाना रव कराइल।
शुक सारी पद्य सुनि, उठे राधानीलमणि, सखीगण देखि हृष्ट हैला।।
कालोचित सुललित, कक्खटीर रवे भीत, राधाकृष्ण सतृष्ण हइया।
निज-निज गृहे गेला, निभृते शयन कैला, दूँहे भजि से लीला स्मरिया।।
एई लीला स्मर आर गाओ कृष्णनाम। कृष्णलीला प्रेमधन पावे कृष्ण धाम।।

भजनरहस्यवृत्ति—इसे कुञ्ज-भंग लीला कहते हैं। जो प्रेमी साधक इस निशान्त लीलाका स्मरण-कीर्त्तन करता है, वह अतिशीघ्र कृष्ण-प्रेमधनका अधिकारी हो जाता है।

इति श्रीभजनरहस्ये निशान्त भजनं वा प्रथमयाम भजनप्रकार वर्णनम्।।

।।इति श्रीभजनरहस्य प्रथमयाम साधनम्।।

द्वितीययाम–साधन

प्रातःकालीन भजन
साधुसंगमें अनर्थ–निवृत्ति

(प्रातः प्रथम छय दण्ड)

नाम ग्रहण करनेमें कालाकालका विचार नहीं होता तथा नाममें सर्वशक्ति समन्वित रहती है (शिक्षाष्टक–२)—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।१।।

—हे भगवन्! आपके नाम ही जीवोंके लिए सर्वमङ्गलप्रद हैं, अतः जीवोंके कल्याण हेतु आप अपने राम, नारायण, कृष्ण, मुकुन्द, माधव, गोविन्द, दामोदर आदि अनेक नामोंके रूपमें नित्य प्रकाशित हैं। आपने उन नामोंमें उन–उन स्वरूपोंकी सर्व–शक्तियोंको स्थापित किया है। अहैतुकी कृपा हेतु आपने नामोंके स्मरणमें संध्या–वन्दनादिकी भाँति किसी निर्दिष्ट काल आदिका विचार भी नहीं रखा है अर्थात् दिन–रात किसी भी समय भगवन्नामका स्मरण–कीर्त्तन किया जा सकता है—ऐसा विधान भी बना दिया है। हे प्रभो! आपकी तो जीवोंपर ऐसी अहैतुकी कृपा है, तथापि मेरा तो नामापराधरूप ऐसा दुर्दैव है कि आपके ऐसे सर्वफलप्रद सुलभ नाममें भी अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।।१।।

अनेक लोकेर वाञ्छा अनेक प्रकार। कृपाते करिल अनेक नामेर प्रचार।।
खाइते सुइते यथा तथा नाम लय। देश–काल–नियम नाहि सर्वसिद्धि हय।।
सर्वशक्ति नामे दिल करिया विभाग। आमार दुर्दैव नामे नाहि अनुराग।।

भजनरहस्यवृत्ति—संसारमें बहुतसे लोग हैं। उन अनेक लोगोंकी अलग–अलग अनेकानेक कामनाएँ होती हैं। उधर भगवान भी परम करुणाशील हैं। वे नाना लोगोंकी नाना प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए इस धराधाममें नाना नामोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। चलते–फिरते, खाते–पीते–सोते

समय भी जैसे हरिनाम ग्रहण करनेसे सर्वसिद्धि हो जाती है; इसमें देश, काल या नियम आदिका विचार भी नहीं रखा है। उन नामोंमें अपनी सारी शक्तियोंको स्थापित कर रखा है। हरिनाम दो प्रकारके हैं—गौणनाम और मुख्यनाम। जगत् सम्बन्धीय ब्रह्म, परमात्मा, जगदीश आदि गौण नाम हैं। मुख्य नाम भी दो प्रकारके हैं—हरि, नारायण, वासुदेव आदि ऐश्वर्यपर नाम तथा कृष्ण, मदनमोहन, गोविन्द, गोपीनाथ, राधारमण आदि माधुर्यपर नाम। जगत्-सम्बन्धीय भगवन्नामोंसे भोग या मोक्ष, ऐश्वर्यपर नामोंसे वैकुण्ठगत ऐश्वर्यप्रेम तथा माधुर्यपर नामोंसे व्रजप्रेमकी प्राप्ति होती है। हरिनामका साधक अपने अपने भावोंके अनुसार उन नामोंमेंसे किसी एक नामका आश्रय ग्रहण करता है। इसीसे उसकी मनोकामना सिद्ध होती है।

नाममें रति प्रार्थना (नामाष्टक-५)—

अघदमन यशोदानन्दनौ नन्दसूनो
कमलनयन–गोपीचन्द्र–वृन्दावनेन्द्राः।
प्रणतकरुण–कृष्णावित्यनेकस्वरूपे
त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय।।२।।

—हे नाम भगवन्! पूर्वोक्त रूपसे अतर्क्य महिमावाले; आपमें मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे। हे अघदमन! हे यशोदानन्दन! हे नन्दसूनो! हे कमलनयन! हे गोपीचन्द्र! हे वृन्दावनेन्द्र! हे प्रणतकरुण! हे कृष्ण! इत्यादि आपके अनेक स्वरूप हैं, इन स्वरूपोंमें मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ती रहे।।२।।

भजनरहस्यवृत्ति—शुद्ध भक्तोंके आनुगत्यमें नाम ग्रहण करते-करते रागानुगा साधक अत्यन्त आर्त्तिके साथ नामप्रभुके निकट प्रार्थना करते हैं—'हे नाम प्रभु! आप कृष्ण लीला-सम्बन्धी नाम सहित मेरे हृदयमें स्फुरित हों।' हे अघदमन! अर्थात् जिन्होंने अघासुरका विनाश कर अपने सखाओंकी रक्षा की थी। 'अघ' शब्दका अर्थ है पाप तथा दमनका अर्थ है नाश करना। साधकके चित्तमें स्थित पापोंका ध्वंसकर चित्तको निर्मल कर वे स्वयं निवास करते हैं।

अघदमन नामका मधुर पक्षमें अर्थ है—व्रजसुन्दरियोंको दर्शन दे उनके विरहका (विरहरूप अघका) नाशकर उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं। दिनके समय श्रीकृष्णचन्द्र व्रजसुन्दरियोंको विरह तापमें झुलसाकर वनमें गमन करते हैं तथा रात्रिमें व्रजदेवियोंके निकट उपस्थित हो उनके समस्त विरह तापको

दूरकर स्निग्ध सुशीतल चन्द्रमाके समान प्रकाशित होते हैं। उनके साथ नाना प्रकारकी रासक्रीड़ा आदिके द्वारा प्रेम रस माधुर्यका आस्वादन करते हैं।

यशोदानन्दन—वात्सल्य स्नेहमयी माँ यशोदाकी गुणावली कृष्णमें भी है, इसलिए उनका एक नाम यशोदानन्दन है। यशो ददाति इति यशोदा अर्थात् माँ यशोदा अपने वात्सल्य भावके लिए विख्यात हैं। वह मातृ गुणान्वित करुणामय यशोदानन्दन मेरे हृदयमें प्रकट हों, यह भाव है।

नन्द सूनो—श्रीमद्भागवत (१०.८.४६) में वर्णन है—

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः।।

राजा परीक्षितने पूछा—महाभाग नन्द बाबाने ऐसा कौनसा बहुत बड़ा मंगलमय साधन किया था और परम भाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौनसी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवानने अपने श्रीमुखसे उनका स्तन-पान किया।

ऐसे परम उदार महाभाग नन्द महाराजके पुत्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मुझपर कृपा वर्षण करें। कमलनयन—निकुञ्ज कुञ्जोंमें प्रेयसी व्रजदेवियोंके साथ रात्रि विलासके कारण आरक्तिम कमलकी भाँति अर्द्ध निमीलित कमलनयन श्रीकृष्ण साधकके हृदयमें स्फुरित हों।

गोपीचन्द्र—उगते हए पूर्ण चन्द्रका दर्शन कर श्रीकृष्णके हृदयमें व्रजदेवियोंके मुखचन्द्रकी स्मृति जग उठती है। वृन्दावनेन्द्र—जो अपने प्रेम माधुर्यके द्वारा वृन्दावनके वासियोंको आनन्दित करते हैं। प्रणत करुण—श्रीकृष्ण प्रणत जनोंपर करुणा प्रकाशकर स्वचरणामृतका आस्वादन कराते हैं। कालिय नागके मस्तकपर चरण स्थापन करनेकी कृपाको गोपियाँ स्मरण कर कहती हैं—'प्रणतदेहिनां पापकर्षणम्' कृष्ण—कृष् धातु—आकर्षण अर्थात् अपने प्रेम माधुर्य द्वारा आकर्षण कर प्रेमानन्द प्रदान करते हैं, भक्तजन अपने भावोंके अनुसार प्रार्थना करते हैं तथा भगवान भी भक्तोंकी प्रार्थनानुसार प्रकट हो उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं। साधक नाम-प्रभुके प्रति अनुराग सम्वर्धनके लिए विशेष नामके द्वारा ही प्रार्थना करते हैं।

नाममें कृष्णने सर्वशक्ति प्रदान की है; यथा स्कन्द पुराण—

दानव्रत तपस्तीर्थ यात्रादीनाञ्च याः स्थिताः।
शक्त्यो देवमहतां सर्वपापहराः शुभाः।।
राजसूयाश्वमेधानां ज्ञानस्याध्यात्मवस्तुनः।

आकृष्य हरिणा सर्वाः स्थापिताः स्वेषु नामसु।।३।।

—दान, व्रत, तपस्या, तीर्थ यात्रा, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ तथा अध्यात्म वस्तुओंके ज्ञानादिमें सर्वपापहरण और कल्याण करनेकी जितनी शक्ति है, श्रीकृष्णने इन सब शक्तियोंको एकत्रित करके अपने नामोंमें (मुख्य नामोंमें) स्थापित कर दिया है।।३।।

धर्म यज्ञ योग ज्ञाने यत शक्ति छिल। सब हरिनामे कृष्ण स्वयं समर्पिल।।

भजनरहस्यवृत्ति—आलोच्य श्लोकमें नाम-महिमाका वर्णन है। भुक्ति, मुक्ति तो नाम प्रभु अनायास ही प्रदान कर देते हैं। दान, व्रत, तप, होम, अश्वमेध यज्ञादिके द्वारा नाश होने वाली पाप राशि, नाम प्रभुके आभास मात्रसे ही दूर हो जाती है। बुभुक्षु एवं मुमुक्षुओंको जो फल प्राप्त होता है, वह नाम संकीर्त्तनका गौण फल है। नाम प्रभुका मुख्य फल है—शुद्ध प्रेमाभक्तिके द्वारा भगवत् माधुर्य या प्रेमामृतका आस्वादन कराना। शुद्धभक्त गौण फल प्राप्तिकी प्रार्थना नहीं करते, यदि अनायास ये फल प्राप्त हों तो उसे ग्रहण नहीं करते, दूरसे ही प्रणाम करके छोड़ देते हैं। इस विषयमें श्रील रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामीका जीवन आदर्श है।

नामभजनमें शौचाशौच, कालाकाल किसी भी नियमका विचार नहीं; यथा वैश्वानर संहिता—

न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः।
परं सङ्कीर्त्तनादेव राम रामेति मुच्यते।।४।।

—श्रीनाम ग्रहण करते समय कोई देश, काल या शौचाशौचका नियम नहीं है। राम राम अर्थात् हरे कृष्ण नाम संकीर्त्तनसे श्रेष्ठ मुक्ति अर्थात् प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।।४।।

देशकाल शौचाशौच-विधि नामे नाइ। हरे कृष्ण राम नामे सद्य तरे याइ।।

भजनरहस्यवृत्ति—नित्यसिद्ध शुद्ध चिन्मय नाम ग्रहण करनेमें किसी देश काल नियमादिका विधान नहीं है। तप, होमादि अनुष्ठानमें वेदविहित विधान हैं। किन्तु नाम पवित्र या अपवित्र किसी भी अवस्थामें भी ग्रहण किया जा सकता है। नाम प्रभु अपने प्रभावके द्वारा साधकके हृदयको शुद्ध कर देते हैं। इस संदर्भमें गोपालगुरुकी कथा द्रष्टव्य है। श्रीमन्महाप्रभुके साथ गोपाल नामक एक छोटा बालक रहता था। वह महाप्रभुकी सेवा करता था। एक समय महाप्रभुजी शौच क्रियाके लिए गये, उस समय उन्होंने अपनी जिह्वाको पकड़ लिया। गोपालने कारण पूछा तो महाप्रभुने कहा—'मेरी जिह्वा

हरिनामको नहीं छोड़ती, इसलिए अपवित्र अवस्थामें मुझे पकड़ना पड़ता है। बालक गोपालने प्रश्न किया—यदि इसी समय किसीका मृत्यु-काल उपस्थित हो जाये तब क्या होगा? महाप्रभुने बालककी सराहना करते हुए कहा—तुम ठीक कहते हो। अमित प्रभावशाली हरिनाममें शौचाशौच आदिका विचार नहीं होना चाहिए। यह कहते हुए जीभको छोड़कर हरिनाम करने लगे और बोले—आजसे तुम्हारा नाम गोपाल गुरु हुआ।

दुर्दैव लक्षण; यथा श्रीमद्भागवत (३.९.७)—

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्
सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना
लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत्।।५।।

—जो लोग सब प्रकारके अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाले आपके श्रवण-कीर्त्तनादि प्रसङ्गोंसे इन्द्रियोंको हटाकर लेशमात्र विषयसुखके लिए दीनतावश लालायित चित्त होकर निरन्तर दुष्कर्मोंमें लगे रहते हैं, उन बेचारोंकी बुद्धि दैवने हर ली है।।५।।

तोमार प्रसङ्ग सर्व, अशुभ करये खर्व, दुर्दैव प्रभावे मोर मन।
कामसुख-लेश आशे, लोभ अकुशलायासे, से प्रसङ्गे ना कैल यतन।।

भजनरहस्यवृत्ति—ब्रह्माजी भगवानकी स्तुति करते हुए कहते हैं—जो व्यक्ति भगवत् कथा या भक्तिसे विमुख होकर तुच्छ इन्द्रिय-काम-सुखमें लिप्त होकर निरन्तर अमंगलजनक कर्म करते हैं, वे हतबुद्धि और दुर्भागे हैं। प्रह्लाद महाराज भी कहते हैं—असंयमित इन्द्रियोंके द्वारा गृहमें आसक्त जीव घोर नरकमें प्रवेश करते हैं। जो संसारमें चर्वित सुख-दुःखको बारम्बार चर्वित करते हैं, उनकी बुद्धि कभी शुद्ध नहीं होती। वेद-विहित मधुपुष्पित वाक्यों द्वारा जो कर्म काण्डमें लिप्त रहते हैं वे वेद-दीर्घ रज्जु द्वारा आबद्ध रहते हैं। कामुक जीवोंके उद्धारका एकमात्र उपाय है निष्किञ्चन परमहंस महावैष्णवकी चरणरजमें अभिषिक्त होना।

श्रीमद्भागवत (१.७.४-६)—

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत्पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्।।
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।

परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतञ्चाभिपद्यते।।
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्।।६।।

—श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने निर्मल चित्तसे, भक्तियोगके द्वारा समाधिस्थ होकर पूर्णपुरुष श्रीकृष्णके दर्शन किये। श्रीकृष्णसे दूरस्थित एवं आश्रित मायातत्त्वको भी देखा। मायामोहके चक्रमें बद्ध हो जीव कृष्णसेवाको विस्मरण कर देता है तथा अनर्थ ग्रस्त होने लगता है। यह जीव मायासे मोहित होकर तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है तथा स्थूल देहमें मैं और देह सम्बन्धी वस्तुओंमें मेरेपनका अभिमान करता है। कृष्णभक्तियोगसे ही चित्कण जीवका उद्धार होता है। किन्तु संसारके लोग इस बातसे अनभिज्ञ हैं। यह समझकर श्रीव्यासजीने भक्तियोगसे भागवतको प्रकाश किया।।६।।

कृष्ण, कृष्णमाया, जीव एइ तिन तत्त्व। मायामोहे मायाबद्ध जीवेर अनर्थ।।
चित्कण जीवेर कृष्णभक्ति योगबले। अनर्थ विनष्ट हय कृष्ण प्रेमफले।।
एइ तत्त्व नाम-समाधिते पाइल व्यास। भागवते भक्ति योग करिल प्रकाश।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने समस्त वेद, उपनिषद् पुराणादिकी रचना की। परब्रह्म और शब्द-ब्रह्मकी पूर्ण अनुभूति प्राप्त कर लेनेपर भी वे असन्तुष्ट रहे तथा अपने अन्दर कुछ कमीकी अनुभूति करने लगे। इस विषयमें श्रीनारदजीसे जिज्ञासा करनेपर उन्होंने बताया कि आपने श्रीकृष्णकी उन माधुर्यमयी लीलाओं तथा निर्मल-यशका गान नहीं किया, आप भगवानकी लीलाओंका कीर्त्तन कीजिए, उसीसे आपका चित्त प्रसन्न होगा। श्रीनारदजीकी कृपासे व्यासजीने भक्तियोग द्वारा निर्मल चित्तसे समाधिस्थ होकर भगवानकी समस्त लीलाओंका दर्शन किया तथा निगम-कल्पतरुके सुपक्व फलसदृश भागवत संहिताको प्रकट किया।

इस प्रसंगका सार यह है कि भक्तिके द्वारा जीवकी मति निर्मल होनेपर संविद् और ह्लादिनी शक्तिकी कृपासे कृष्ण, कृष्णमाया तथा अपने स्वरूपका अनुभव होता है। भक्तियोगके द्वारा भजनीय वस्तु नित्य स्वाभाविक रूपसे हृदयमें प्रकाशित होती है। कर्म तथा ज्ञान द्वारा परिचालित मुमुक्षुजन पूर्ण, नित्य-चेतन वस्तुकी अनुभूतिसे वंचित रहते हैं।

श्लोकस्थ पूर्णपुरुषसे सर्वशक्तिमान स्वयं भगवान ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर

तथा ब्रजगोपियों सहित ब्रजवासी जनसे तात्पर्य है।

श्रील व्यासदेवजीने भक्तियोग द्वारा श्रीभगवानकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियोंके दर्शन किये, भगवानकी त्रिविध शक्ति—स्वरूपशक्ति, मायाशक्ति तथा जीवशक्तिके भी दर्शन किये। स्वरूपशक्तिके द्वारा भगवान नित्य लीला-विलास करते हैं। मायाशक्ति हरिविमुख जीवको अपनी आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्ति द्वारा परिचालित करती है। ऐसे जीव अनात्म धर्मोंके वशीभूत होकर इन्द्रियतर्पणमें रत हो जाते हैं। मायादेवी क्रीड़ा-पुतलीकी भाँति जीवको नचाती है। पूर्वपक्ष प्रश्न करते हैं कि व्यासदेवजी द्वारा भगवानके रूप, गुण, लीलादिके दर्शन करनेके साथ-ही-साथ उनके माया-दर्शनका क्या प्रयोजन है? आचार्यपाद लिखते हैं कि, माया-सम्मोहित जीव त्रिगुणोंमें लिप्त होकर भवमहारोगसे ग्रस्त हो जाते हैं तथा वे भगवानके माधुर्यका आस्वादन नहीं कर सकते। माया विमोहित जीवका उद्धार उसकी मायाका आवरण दूर करके ही सम्भव है। एक निपुण चिकित्सक भी रोगीके निदानके लिए उसको औषधि तथा पथ्यकी व्यवस्था करते हैं। (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरकी टीका) श्रील व्यासजीने इनका दर्शनकर भवमहारोग ग्रस्त अज्ञजनोंके कल्याणके लिए शाश्वत संहिता, सर्व तत्त्वयुक्त श्रीमद्भागवतको प्रकाश किया, जिसके श्रवणसे जीवके अनर्थ, अविद्या नष्ट होकर कृष्ण प्रेमफल प्राप्त होता है। श्रीकृष्णकी व्रजदेवियोंके साथ अप्राकृत प्रेम-लीला-विलास वर्णन श्रीमद्भागवतमें हुआ है। इन कथाओंको श्रद्धासे श्रवणकर जीव पुनः नित्यधर्ममें प्रतिष्ठित हो सकता है।

या श्रुत्वा तत्परोभवेत्।। समस्त तत्त्वोंकी सारकथा—भक्तियोगके द्वारा अनर्थोंका उपशमन करके राधाकृष्णकी माधुर्यपूर्ण प्रेम-रसमयी सेवामें प्रतिष्ठित होना ही जीवनका उद्देश्य है।

दुर्दैव या आरोपित अनर्थ चार प्रकारके होते हैं; यथा आम्नाय सूत्र व्याख्या—

मायामुग्धस्य जीवस्य ज्ञेयोऽनर्थश्चतुर्विधः।
हृद्दौर्बल्यञ्चापराधोऽसत्तृष्णा तत्त्वविभ्रमः।।७।।

—मायामुग्ध जीवोंके अनर्थ चार प्रकारके होते हैं। असत्तृष्णा, हृदयदौर्बल्य, स्वरूप-विभ्रम और अपराध। इससे जीव संसारके बन्धन एवं विपत्तियोंमें फँस जाता है।।७।।

मायामुग्ध जीवेर अनर्थ चतुष्टय। असत्तृष्णा, हृदयदौर्बल्य विषमय।।
अपराध स्वरूपविभ्रम एइ चारि। याहाते संसार बन्ध विपत्ति विस्तारि।।

भजनरहस्यवृत्ति—माया कवलित जीव अपने शुद्ध धर्मसे विचलित होकर मिथ्या भोक्ताका अभिमान करते हैं तथा संसारमें भ्रमण करते हैं। इन जीवोंमें चार प्रकारके अनर्थ परिलक्षित होते हैं—स्वरूपभ्रम, असत्तृष्णा, हृदयदौर्बल्य तथा अपराध। प्रयोजनहीन वस्तुका संग्रह ही अनर्थ है। जीवका प्रयोजन तो एकमात्र कृष्ण-सेवा है, किन्तु वह संसारमें मायाकी सेवामें व्यस्त रहता है—यही अनर्थ है।

स्वरूपभ्रम—शुद्ध जीव चिद्अणु और स्वरूपतः कृष्णका नित्यदास है। जिस प्रकार प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादिको ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार शुद्ध जीव चिन्मय इन्द्रियोंके द्वारा अप्राकृत रसादिको ग्रहण करते हैं। 'मैं शुद्ध चित्कण कृष्ण-दास हूँ' यह भूलकर बद्ध स्वरूपसे जीव संसारमें भ्रमण करता है। स्वस्वरूपकी अप्राप्ति ही जीवका प्रथम अनर्थ है।

असत् तृष्णा—स्थूल देह और देह सम्बन्धी नश्वर वस्तुओंमें अहं ममता बुद्धि रखकर असत् विषयोंके सुखकी वासनाको असत्तृष्णा कहते हैं।

अपराध—'अपगत राध यस्मात् इति अपराध'। राध अर्थात् प्रीति, जिस कार्यके करनेसे प्रीति दूर होती है वही अपराध है। भगवत्-चरणोंमें तथा भगवद्भक्त-चरणोंमें अपराध होनेसे प्रीति कम हो जाती है। दस नामापराध, बत्तीस सेवापराध और बहुतसे धामापराध हैं; इनसे बचना चाहिए।

हृदय-दौर्बल्य—अनित्य वस्तुकी प्राप्ति या अप्राप्तिमें शोक मोह होता है, इसी चित्त विकारका नाम हृदय-दौर्बल्य है। इस अनर्थका उदय जीवमें अविद्याके कारण नैसर्गिक रूपसे होता है तथा शुद्ध साधु संगमें कृष्णानुशीलनसे तिरोहित हो जाता है।

(१) स्वरूप भ्रम अथवा तत्त्व भ्रम चार प्रकारके होते हैं; यथा तत्रैव—

स्वतत्त्वे परतत्त्वे च साध्य-साधनतत्त्वयोः।
विरोधि विषये चैव तत्त्वभ्रमश्चतुर्विधः।। (८)

—बद्ध जीवको चार प्रकारके भ्रम होते हैं—स्वरूप भ्रम, परतत्त्व भ्रम, साध्य-साधन तत्त्व भ्रम और भजन-विरोधी विषयमें भ्रम।।८।।

तत्त्वभ्रम चतुष्टय बड़इ विषम। स्वीयतत्त्वे भ्रम आर कृष्णतत्त्वे भ्रम।।
साध्य-साधनेते भ्रम, विरोधी विषये। चारिविध तत्त्वभ्रम बद्ध जीवचये।।

भजनरहस्यवृत्ति—स्वरूप भ्रम—अपने चिद् स्वरूपके अज्ञानके कारण

जीवको अपने स्वरूपका अनुभव नहीं होता। अपने भोक्ताभिमान वशतः वह भूल जाता है कि वह कृष्ण दास है और यही उसका वास्तविक स्वरूप है।

परतत्त्व भ्रम—परतत्त्व कौन हैं? इस विषयका ज्ञान न होनेसे जीव भ्रमित हो जाता है। कभी वह शिवको, कभी ब्रह्माको और कभी नाना देवदेवियोंकी आराधना करता है। अतः वास्तविक परतत्त्वका निर्णय न कर पाना ही परतत्त्व भ्रम है।

साध्य–साधन भ्रम—शास्त्रोंके अनुसार कृष्णप्रेम ही साध्य और भक्ति ही एकमात्र साधन है। किन्तु बद्धजीव भोग मोक्ष और कृष्णप्रेममेंसे हमारा क्या साध्य है तथा कर्म, ज्ञान और भक्तिमें क्या साधन है इसका निर्णय नहीं कर पाता; यही साध्य–साधनका भ्रम है। साध्य निर्णय नहीं होनेसे साधनका भी निर्णय सम्भव नहीं तथा साधन बिना साध्यकी प्राप्ति भी नहीं होती। वैष्णव कृपासे ही भक्तिको श्रेयके रूपमें जाननेका सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रेम भी दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्यपर तथा माधुर्यपर। व्रजदेवियोंके आनुगत्यमें राधाकृष्णकी प्रेममयी मधुर सेवा ही सर्वोत्तम साध्य वस्तु है, ऐसा आचार्यगण निर्णय करते हैं।

भजन–विरोधी विषयमें भ्रम—कृष्ण भजनके अतिरिक्त अन्य मतवाद विरोधी भ्रम हैं। विशेषतः मायावादके द्वारा चित्त मलिन होनेसे जीव विवेकशून्य हो जाता है।

(२) असत् तृष्णा चार प्रकारकी होती है यथा—

ऐहिकेष्वैषणा पारत्रिकेषु चैषणाऽशुभा।
भूतिवाञ्छा मुमुक्षा च ह्यसत्तृष्णाश्चर्तुविधाः।।९।।

—असत्तृष्णा चार प्रकारकी होती है—भौतिक जगतकी वस्तुओंकी वाञ्छा, स्वर्गादिक सुखोंकी वासना, योग विभूति तथा मोक्षकी कामना।।९।।

पारत्रिक ऐहिक एषणा भूति–काम। मुक्तिकाम एइ चारि असत्तृष्णा नाम।।

भजनरहस्यवृत्ति—कृष्णेतर वस्तुओंकी प्राप्तिकी वासना ही असत् तृष्णा है। यह चार प्रकारकी होती है। (क) ऐहिक अर्थात् भौतिक वस्तुओंकी कामना तथा इसकी प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ। बद्ध जीव इन्द्रिय–सुख प्राप्तिकी चेष्टा करता है, किन्तु दुःखमय फल प्राप्त करता है। 'कर्माण्यारभमाणानाम् दुःखहत्यै सुखाय च'। (ख) स्वर्गादिके सुख प्राप्तिके

लिए कामना तथा नानाविध देवी-देवताओंकी पूजाका अनुष्ठान। (ग) योग-विभूतिकी वाञ्छा—जड़ीय चमत्कारके द्वारा लोगोंको मोहित करना तथा लाभ, पूजा, प्रतिष्ठादि प्राप्त करना। अष्टांग योग, अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ जीवको आकर्षित करती हैं। (घ) मोक्षकी कामना—ये सब भजन विरोधी विषय हैं, भगवानके भक्त इन्हें कभी स्वीकार नहीं करते।

(३) अपराध चार प्रकारके होते हैं; यथा तत्रैव—

कृष्णनामस्वरूपेषु तदीय चित्कणेषु च।
ज्ञेया बुधगणैर्नित्यमपराधाश्चर्तुविधाः।।१०।।

—अपराध चार प्रकारके होते हैं—कृष्णनाममें अपराध अर्थात् नामापराध, कृष्ण स्वरूपमें अपराध अर्थात् सेवापराध, तदीय अर्थात् भक्तोंके चरणोंमें, गंगा, यमुना गिरिराज तथा धामके प्रति अपराध, चित्कण जीवके प्रति अपराध।।१०।।

कृष्णनामे, स्वरूपेओ, भक्ते, अन्य-नरे। भ्रम हैते अपराध चतुष्टय स्मरे।।

(४) हृदय दौर्बल्य चार प्रकारका होता है; यथा तत्रैव—

तुच्छासक्तिः कुटीनाटी मात्सर्यं स्वप्रतिष्ठता।
हृदयदौर्बल्यं बुधैः शश्वज् ज्ञेयं किल चतुर्विधं।।११।।

—पण्डितोंने हृदय दौर्बल्यको चार प्रकारका माना है—तुच्छ अर्थात् कृष्णसे इतर विषय वासनामें आसक्ति, कुटिनाटी अर्थात् कपटता, मात्सर्य या दूसरोंकी उन्नति देखकर जलन (ईर्ष्या) तथा प्रतिष्ठाकी आशा।।११।।

कृष्णेतर विषये आसक्ति, कुटिनाटी। परद्रोह, प्रतिष्ठाशा एइत चारिटि।।
हृदयदौर्बल्य बलि शास्त्रे निर्धारिल। छय रिपु, छय ऊर्मि इहाते जन्मिल।।
यत दिन ए सब अनर्थ नाहि छाड़े। तत दिन भक्तिलता कभु नाहि बाढ़े।।

भजनरहस्यवृत्ति—हृदय दौर्बल्यसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य छह रिपुओंकी तरंगें जन्म लेती हैं तथा शोक, मोह, क्षुधा, पिपासा, जरा तथा मृत्यु भी प्राप्त होते हैं। जब तक ये अनर्थ हम नहीं छोड़ेंगे तब तक भक्ति-लताकी वृद्धि नहीं होती।

नाम संकीर्त्तनसे समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१.१.१४)—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्।।१२।।

—यदि संसार चक्रमें पड़ा जीव मङ्गलमय कृष्णनामको एक बार भी ग्रहण करे, तो तत्क्षणात् उसका संसारसे उद्धार हो जाता है। भगवानके नामसे भय भी काँपता है।।१२।।

ए घोर संसारे पड़ि कृष्णनाम लय। सद्य मुक्त हय आर भय पाय भय।

भजनरहस्यवृत्ति—घोर कलियुगके जीवोंके विपदका विचार कर दूरदर्शी ऋषिगण सूतगोस्वामी पादसे कहने लगे—हे सौम्य! संसारमें आसक्त बद्धजीव किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं? सूतजीने उत्तर दिया—इसका उपाय है भगवद् भक्तोंका संग। गंगाजलमें स्नान करनेसे पाप नष्ट तो होते हैं, किन्तु नाम-परायण भक्तके दर्शन मात्रसे समस्त पापादि दूर हो जाते हैं। भगवद् भक्तोंके संग तथा सेवाके फलस्वरूप साक्षात् रूपमें प्रेम फल प्राप्त होता है। कोई जीव मरणासन्न अवस्थामें भी यदि नाम करे तो नाम-प्रभु अपना प्रेम प्रदान करते हैं।

यथा श्रीमद्भागवत (११.२.३७)—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवातात्मा।।१३।।

—भगवद्विमुख जीवको उनकी मायावशतः अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृतिसे ही देहाभिमान होता है अर्थात् मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इस प्रकारका भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुओंमें अभिनिवेश (तन्मयता) होनेके कारण ही बुढ़ापा, रोग आदि उनके भय होते हैं। इसलिए तत्त्वज्ञ व्यक्ति अपने गुरुको ही ईश्वर अर्थात् भगवानसे अभिन्न प्रभु एवं परमप्रेष्ठ मानकर अनन्य भक्तिके द्वारा उस ईश्वरका (गुरुका) ऐकान्तिक भजन करें।।१३।।

कृष्ण छाड़ि जीव कैल अन्याभिनिवेश। ताई तार विपर्यय स्मृति आर क्लेश।।
सद्गुरु आश्रय करि कृष्णकृपा आशे। अनन्य भजन करे याय कृष्ण पाशे।।

भजनरहस्यवृत्ति—जीवोंका भगवानसे विमुख होकर महामायामें अभिनिवेश ही उसकी जड़बद्धताका कारण है। मायादेवी अपनी आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्तिके द्वारा जीवको संसार रूपी कारागारमें भ्रमण कराती है। संसारमें जीव सुख-दुःख भोक्ताका अभिमान करता है तथा संसारकी यंत्रणा भोगता है। धीर व्यक्ति सद्गुरुका चरणाश्रय कर इससे निस्तार पाते हैं। भगवद् अनुभव सम्पन्न गुरुका आनुगत्य स्वीकारकर उनकी विश्रम्भ सेवामें

संलग्न होनेसे भगवद् कृपा प्राप्त होती है तथा जड़ाभिमान दूर होने लगता है। गुरुदेवको आत्मवत् जानकर, उनकी सेवा करते हुए स्वयंके स्वरूप, भगवद्-स्वरूप तथा माया-स्वरूपकी उपलब्धि होती है तथा गुरु-कृपासे जीव भगवद्-धाममें नित्य सेवामें नियुक्त हो जाता है।

भक्तियोग लक्षण; यथा श्रीमद्भागवत (१.२.१२ और १.२.७)—

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्तया श्रुतगृहीतया।।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम्।।१४।।

—श्रद्धालुजन भागवत-श्रवण प्राप्त ज्ञान-वैराग्य युक्त भक्तिसे अपने हृदयमें सम्बन्ध-ज्ञान युक्त भगवद् स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं तथा उनकी सेवा प्राप्त करते हैं।

—भगवानका जीवसे और जीवका भगवानसे सम्बन्ध जुड़ते ही भगवान वासुदेवका भक्तियोग उदित होता है।

भजनरहस्यवृत्ति—अद्वयज्ञान परतत्त्वका साधन तीन प्रकारसे होता है—ज्ञान, योग एवं भक्ति द्वारा। ज्ञानी ज्ञानके प्रभावसे भगवानको ब्रह्म स्वरूपमें अनुभव करते हैं, वे आत्मामें तत्पदार्थ भगवानका, ईश्वरमें आत्मा एवं तं पदार्थ जीवका दर्शन करते हैं। योगीजन अद्वय वस्तुको परमात्म रूपमें अनुभव करते हैं। जो जीव शुष्क ज्ञान द्वारा वैराग्य अवलम्बन करते हैं उनका सारा प्रयास व्यर्थ है। वैराग्य भक्तिका आनुषंगिक फल है। वह भक्तियोग द्वारा अनायास ही प्राप्त होता है। साधक, भक्तिके प्रभावसे अद्वय वस्तुके साक्षात् माधुर्यका आस्वादन करते हैं। इसका विधान है श्रीगुरुजीके मुखारविन्दसे कृष्ण-कथा श्रवण। श्रवण-कीर्त्तनरूप भक्ति अनुष्ठानके द्वारा कृष्णसे सम्बन्ध युक्त ज्ञानका उदय होता है। सेवावृत्ति धर्म ही श्रौत-पथ है ऐसा आचार्य पाद निरूपण करते हैं। अद्वैतवादी जन श्रौत-पथ अर्थात् अवरोह पथका अवलम्बन न कर आरोहवादका अपने प्रयासका आश्रय लेते हैं। उनका प्रयास ऐसा है मानो वर्षाकी गिरती बूँदोंको पकड़कर आकाशमें जानेकी चेष्टा।

भजनीय वस्तुकी सेवामें संलग्न होनेपर जीव अन्य किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं करता, इस अवस्थामें शुद्धा-भक्ति एवं युक्त-वैराग्य उदित होता है।

चतु:श्लोकी भागवतमें चतुर्थ श्लोक (२.९.३५)—

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।१५।।

—जो आत्मतत्त्व जिज्ञासु हैं, वे अन्वय व्यतिरेक भावके द्वारा विचार करते हुए जो वस्तु सदासर्वदा नित्य है, उसीका अनुसन्धान करते हैं।।१५।।

अनर्थनाशेर यत्न दुइत प्रकार। अन्वयमुखेते व्यतिरेकमुखे आर।।
अन्वयमुखेते विधि भजनविषये। व्यतिरेकमुखेते निषेध नानाश्रये।।

भजनरहस्यवृत्ति—ब्रह्माजीने जन्म लेनेके पश्चात् श्रीभगवान्से चार प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर भगवानने चतु:श्लोकीके द्वारा दिया। यही चतु:श्लोकी भागवतके नामसे प्रसिद्ध है; क्योंकि यह श्रीमद्भागवतका बीजस्वरूप है, इन चार श्लोकोंमें वेद-वेदान्तादिका मर्म निहित है। प्रथम श्लोकमें भगवत् तत्त्व, भगवत् स्वरूप व उनके गुण, लीला आदि सूत्ररूपमें वर्णित हैं। द्वितीय श्लोकमें भगवत् स्वरूपसे पृथक् मायातत्त्व तथा जड़ जगतका विचार हुआ है, इन दो श्लोकोंमें सम्बन्धज्ञानको जानना चाहिए। तृतीय श्लोकमें जीव और जड़से भगवानका अचिन्त्य-भेदाभेद सम्बन्ध रहनेपर भी उनके नित्य स्वरूपका अवस्थान तथा जीवोंको उनका चरणाश्रय कर महाप्रेम सम्पत्ति लाभ करनेके विषयमें कहा गया है। प्रस्तुत चतुर्थ श्लोकमें उक्त परम प्रयोजन प्राप्तिके उपाय स्वरूप साधन भक्तिका वर्णन हुआ है। साधन भक्तिके अन्तर्गत विधियोंको आनुकूल्य भावसे ग्रहण करना अन्वय कहा जाता है। उसकी प्राप्तिके बाधक प्रातिकूल्य जनक क्रियाओंको निषेध रूपमें परिगणित करके व्यतिरेक शब्दका व्यवहार हुआ है। साधनतत्त्वको अभिधेय कहा जाता है अर्थात् शास्त्रकी अभिधा वृत्तिसे जो उपदेश प्राप्त होता है उसे अभिधेय जाना जाता है, यही इस चतुर्थ श्लोकमें वर्णित है। अभिधेय रूप साधन-भक्तिमें देश, काल, पात्र तथा अवस्थाका विचार नहीं है। सभी स्थानोंपर, सभी कालमें तथा सभी अवस्थाओंमें साधन भक्ति करना जीव मात्रका कर्तव्य है। साधन भक्तिके विषयमें साधकको श्रीगुरुदेवसे जिज्ञासा करनी चाहिए तथा उनके उपदेश श्रवण करने चाहिए।

प्रस्तुत श्लोकमें अन्वय व्यतिरेकके गूढ़ार्थमें परम प्रेयसी व्रजसुन्दरियोंके साथ व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके संयोग-विप्रलम्भ तथा शृंगारजनित लीलाएँ सूचित हो रही हैं। बहिरंग जीवोंकी वंचना करनेके लिए ये समस्त अमूल्य

रत्न एक मंजूषामें सुरक्षित रखे गये हैं, जिनका उद्घाटन करनेमें ज्ञानी व ऐश्वर्य भक्त असमर्थ हैं। इनका प्रकाश ब्रजरसरसिक श्रीगुरुदेव अपने योग्य अधिकारी शिष्योंके निकट ही करते हैं।

भक्तिके प्रतिकूल त्याज्य छह वेग तथा हृदय दौर्बल्य, असत्तृष्णा, अपराध रूप अनर्थोंका विवरण; यथा उपदेशामृत प्रथम श्लोक—

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगमुदरोपस्थ वेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्।।१६।।

—जो धीर पुरुष अपनी वाणीके वेगको, मनके वेगको, क्रोधके वेगको, जिह्वाके वेगको, उदरके वेगको एवं जननेन्द्रियके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्तिके सभीजन शिष्य हो जाते हैं।।१६।।

वाक्यवेग मनोवेग क्रोध जिह्वा वेग। उदर उपस्थवेग भजन उद्वेग।।
बहुयत्ने नित्य सब करिबे दमन। निर्जने करिबे राधाकृष्णेर भजन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रील रूप गोस्वामीपाद विरचित प्रस्तुत श्लोकमें भक्ति विरोधी प्रतिकूल वर्जन करनेका उपदेश है। आनुकूल्यका संकल्प तथा प्रातिकूल्यका वर्जन—ये शुद्धा भक्तिके साक्षात् अंग नहीं हैं, बल्कि ये दोनों भक्तिमें अधिकार प्रदान करने वाली शरणागति-लक्षण श्रद्धाके अंग हैं। वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोधका वेग, जिह्वाका वेग, उदरका वेग और उपस्थका वेग—इन छह वेगोंको जो व्यक्ति सहनेमें समर्थ होता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है। इस श्लोकका तात्पर्य यह है—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता इत्यादि उत्पात मनमें सर्वदा उदित होकर प्राणियोंको उद्वेग प्रदान करते हैं। ये षड्रिपु जीवमें हृदय दौर्बल्यके कारण उदित होते हैं। जड़ीय विषय भोगोंमें आसक्त संसारी जीवोंमें तीन प्रकारके वेग दिखलायी पड़ते हैं—वाणीका वेग, मनका वेग तथा शरीरका वेग। इन तीनों वेगोंके प्रबल स्रोतमें पड़नेपर उनका उद्धार होना बड़ा ही कठिन है।

वाक्य वेगका तात्पर्य भक्ति विरोधी जल्पनाओं तथा भूतोद्वेगकारी वाक्य-प्रयोगसे है। भगवत् सेवोपयोगी वचनोंको वाक्वेग नहीं समझना चाहिए। बल्कि उन्हें वाक्वेग सहनेका फल समझना चाहिए। मनका वेग नाना प्रकारके मनोरथोंसे जन्म लेता है, जिनकी पूर्ति न होनेपर क्रोधका वेग उपस्थित होता है। कृष्णकी लीलाओंका चिन्तन करनेसे तीनों प्रकारके मानस वेग शान्त हो जाते हैं।

शरीरके वेग भी तीन प्रकारके होते हैं—जिह्वा वेग, उदर वेग और उपस्थ वेग। षड्‌रसके अन्तर्गत किसी भी रसका आस्वादन करनेकी लालसासे उत्तेजित होकर विविध अखाद्य पदार्थोंका भक्षण और मादक द्रव्योंका सेवन जिह्वावेगके अन्तर्गत आता है। भक्ति साधक इनका सेवन कभी नहीं करेंगे। भगवान और भक्तोंके उच्छिष्ट रूप महाप्रसादका सेवन कर जिह्वा वेगसे सावधानी पूर्वक बचना चाहिए। यथोचित रूपमें भगवत् प्रसाद सेवन करनेसे नियमानुसार एकादशी पालन करनेसे तथा कृष्ण सेवासे उदर वेग भी शान्त हो जाता है। जिह्वा-लालसाकी तृप्तिके लिए नाना प्रकारके बुरे आचरणों और कुसंगमें फँसनेकी सम्भावना रहती है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—"जिह्वार लालसे येइ इति उति धाय। शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय।" "भाल न परिबे आर भाल न खाइबे।" अत्यधिक भोजन करनेसे नाना प्रकारकी असुविधाएँ उपस्थित होती हैं। अधिक आहार करनेवाले व्यक्ति अधिकतर उपस्थ वेगके दास अर्थात् चरित्रहीन हो पड़ते हैं। उपस्थ वेग अर्थात् स्त्री-पुरुषकी मिलनकी लालसा मनको असत् विषयोंकी ओर खींचती है। इसलिए शुद्ध भक्तिका अनुशीलन नहीं हो पाता। भजन-प्रयासी व्यक्तिके चित्तको भक्ति-प्रवण करनेके लिए श्रीमद् रूपगोस्वामीजीने इस श्लोकको अवतारणा की है। उक्त षड्‌वर्गकी निवृत्ति चेष्टा ही भक्ति साधन है—ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह भक्ति मन्दिरमें प्रवेश पानेके लिए योग्यता उपलब्धिका सोपान स्वरूप मात्र है। भक्ति तो भगवान्‌की स्वरूप शक्तिकी स्वप्रकाश वृत्ति होनेके कारण उसका प्रादुर्भाव होनेपर ये वेग समूह स्वतः ही शान्त हो जाते हैं।

भक्तिमें बाधक छह दोष; यथा उपदेशामृत द्वितीय श्लोक—

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति।।१७।।

—अधिक आहार या संचय, भक्ति प्रतिकूल चेष्टा, व्यर्थ आलाप, नियमाग्रह, असत्संग एवं लौल्य अर्थात् बुरे मतोंको ग्रहण करनेकी चित्तकी चंचलता—इन छह प्रकारके दोषोंसे भक्ति विनष्ट हो जाती है।।१७।।

अत्याहार प्रयास प्रजल्प जनसङ्ग। नियम-आग्रह लौल्ये हय भक्ति भङ्ग।।

भजनरहस्यवृत्ति—अत्याहार, प्रयास, प्रजल्प, नियमाग्रह, जनसंग और लौल्य—ये छह भक्ति विरोधी दोष हैं। अत्याहार—अर्थात् अधिक आहार।

किसी भी विषयका अधिक सेवन अथवा आवश्यकतासे अधिक संग्रहकी चेष्टा—यह सब अत्याहार है। गृहत्यागी भक्तोंके लिए संचय करना निषिद्ध है। गृही वैष्णवोंके लिए निर्वाहोपयोगी संग्रहकी आवश्यकता है; परन्तु आवश्यकतासे अधिक संग्रह अत्याहार है। भजन पिपासु लोगोंके लिए विषयी लोगोंकी भाँति संग्रह करना उचित नहीं है। भक्ति विरोधी चेष्टा अथवा विषयोंको भोगनेकी चेष्टा ही प्रयासका तात्पर्य है। प्रजल्प—समयको अनर्थक ग्राम्य बातोंमें व्यतीत करना ही प्रजल्प कहलाता है। भगवत् सेवारूप उच्चतम अधिकारकी प्राप्तिके लिए चेष्टा न कर निम्नतम स्वर्गादिकी प्राप्तिके नियमोंमें आग्रह और भक्ति-पोषक नियमोंके प्रति उदासीन रहना ही नियमाग्रह है। विशुद्ध भक्तोंके सङ्गको छोड़कर, अन्य जनोंका संग विशेष रूपसे विषयासक्तका संग करना जनसंग कहलाता है। लौल्य—नाना प्रकारके असत् मतोंसे मनकी अस्थिरता तथा तुच्छ विषयोंमें चित्तकी चंचलता ही लौल्य है। कुलटा स्त्रियोंकी भाँति कभी कर्म मार्गमें, कभी योग मार्गमें, कभी ज्ञान मार्गमें और भक्ति मार्गमें भटकते रहनेपर भक्ति वृत्तिका विनाश हो जाता है। प्रजल्प द्वारा साधु निन्दा होती है एवं लौल्य द्वारा दूसरे-दूसरे अस्थिर सिद्धान्तोंकी ओर रुचि उत्पन्न होती है, जिससे नामापराध होता है। इसलिए सावधानी पूर्वक इनका त्याग करना चाहिए।

भक्ति पोषक छह सत्सङ्ग; यथा उपदेशामृत चतुर्थ श्लोक—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।।१८।।

—विशुद्ध भक्तोंको उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु देना, विशुद्ध भक्तोंके द्वारा दी हुई प्रसाद स्वरूप वस्तुको लेना, भजन सम्बन्धी अपनी गुप्त बातें भक्तोंके निकट कहना, वैसी ही रहस्यमयी गुप्त बातोंको उनसे पूछना, भक्तोंके द्वारा दिये गये प्रसादको प्रीतिपूर्वक भोजन करना और उन्हें प्रीतिपूर्वक भोजन कराना—ये छह प्रकारके सत्संग प्रीतिके लक्षण हैं।।१८।।

आदान प्रदान प्रीते, गूढ़ आलापन। आहार भोजन छय सङ्गेर लक्षण।।
साधुर सहित सङ्गे भक्तिवृद्धि हय। अभक्त असत्सङ्गे भक्ति हय क्षय।।

भजनरहस्यवृत्ति—इस श्लोकमें भक्ति पोषक सत्प्रीति अर्थात् विशुद्ध भक्तसे प्रीति रखना—इस तटस्थ लक्षणको बतला रहे हैं। भगवद्भक्तोंके संगसे भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। किन्तु सतर्कतापूर्वक केवल विशुद्ध भक्तोंका संग ही करना चाहिए। विषयी, मोक्षकामी तथा अन्याभिलाषी व्यक्तियोंका संग तथा

परस्पर आदान–प्रदान कभी न करें। उनके सङ्ग दोषसे भक्तिकी हानि होती है। भक्ति सम्बन्धी गोपनीय विषय भी उनके निकट श्रवण नहीं करना चाहिए। उनका स्पर्श किया हुआ अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिए 'विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन। मलिन मन हइले नहे कृष्णेर स्मरण'।।—श्रीचैतन्य चरितामृत। स्वजातीय स्निग्धाशय भक्तोंके साथ परस्पर प्रीति द्वारा भक्तिकी वृद्धि होती है।

विषयी दर्शन एवं स्त्री दर्शनका निषेध; श्रीमन्महाप्रभु वाक्य चैतन्यचन्द्रोदय नाटक ८.२४—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।।१९।।

—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु बड़े खेदके साथ कहते हैं—निष्किञ्चन भगवद्‌भजनमें तत्पर, भवसागरसे पार जानेके इच्छुक मनुष्यके लिए विषयी–लोगों और स्त्रियोंको देखना विष खानेसे भी अधिक बुरा है।।१९।।

निष्किञ्चन भजन उन्मुख येइ जन। भवसिन्धु उत्तीर्ण हइते यार मन।।
विषयी–मिलन आर योषित सम्मिलन। विषपानापेक्षा तार विरुद्धघटन।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवद्भजनमें उन्मुख निष्किञ्चन व्यक्तियों तथा भवसागरको तर जानेके इच्छुक मनुष्योंको विषयोंमें आसक्त लोगों और स्त्रीके संगसे बचना चाहिए। इन दोनोंका संग विष पानकी अपेक्षा भी भयंकर होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके इंगितको समझकर श्रीरघुनाथ दासने अपने पिता द्वारा भेजे गये अर्थको भी ग्रहण करनेसे अस्वीकार कर भिक्षान्न ग्रहण करना ही श्रेयस्कर माना। श्रीमहाप्रभुजीने छोटे हरिदासको योषित संगदोषके कारण जीवन भरके लिए उन्हें त्याग दिया। इसलिए महाजनोंने कहा है—

यदि प्रणय राखिते चाह गौरांगेर सने।
छोट हरिदासेर कथा थाके येन मने।।

प्राकृत दृष्टिसे अप्राकृत वैष्णव दर्शन निषिद्ध है; यथा उपदेशामृत षष्ठ श्लोक—

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषै न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्‌बुदफेन पङ्कैर्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः।।२०।।

—इस जगतमें अवस्थित भक्तजनोंमें नीचवर्ण, कठोरता और आलस्य आदि दिखाई पड़नेवाले स्वाभाविक दोषोंके द्वारा अथवा कुरूपता और ज्वर आदि पीड़ाओंसे विकृत दिखाई पड़ने वाले शारीरिक दोषोंके द्वारा भक्तजनोंका प्राकृतपन नहीं देखना चाहिए अर्थात् उन्हें प्राकृत जीव नहीं समझना चाहिए; जैसे बुद्बुद, फेन और कीचड़ आदिके सम्बन्धसे गङ्गाजल जलधर्मको अङ्गीकार करके भी अपना द्रवीभूत-ब्रह्म होनेका धर्म त्याग नहीं करता अर्थात् अप्राकृत धर्म नहीं छोड़ता; वैसे ही आत्मस्वरूप प्राप्त वैष्णवोंमें प्राकृत दोषोंका आरोप नहीं करना चाहिए।।२०।।

स्वभाव जनित आर वपुदोषे क्षणे। अनादर नाहि कर शुद्धभक्तजने।।
पङ्कादि जलीय दोषे कभु गङ्गाजले। चिन्मयत्व लोप नहे सर्वशास्त्रे बले।।
अप्राकृत भक्तजन पाप नाहि करे। अवशिष्ट पाप याय किछु दिन परे।।

भजनरहस्यवृत्ति—शुद्ध भक्तोंमें प्राकृत दोषोंको देखकर उन्हें प्राकृत समझना उचित नहीं है, इस श्लोकमें यही उपदेश है। शुद्ध भक्तोंमें कुसंग और नामापराध होना असम्भव है। उनमें शरीरगत और स्वभावगत दोष हो सकते हैं। परन्तु जिस प्रकार जलके धर्मके कारण गङ्गाजलमें बुद्बुद फेन और कीचड़ आदि होनेपर भी वह अपवित्र नहीं समझा जाता, वह अपना ब्रह्म-द्रवत्त्व परित्याग नहीं करता, उसी प्रकार आत्मस्वरूप प्राप्त वैष्णवगण भी जड़देहके जन्म और विकार धर्म द्वारा दूषित नहीं होते। इसीलिए भजन प्रयासी व्यक्ति शुद्ध वैष्णवोंमें इन दोषोंको देखकर भी उनकी अवज्ञा नहीं करेंगे। शुद्ध वैष्णवोंके अवशिष्ट दोष भी शीघ्र ही दूर जाते हैं। फिर भी दोष देखनेपर अपराधी बनेंगे।

प्रतिष्ठाशा और कपट कुटीनाटी-दौरात्मवर्जन—यथा मनःशिक्षा सप्तम श्लोक—

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधु प्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयित सामन्तमतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः।।२१।।

—सभी विषयोंका परित्याग करनेपर भी कपटता क्यों नहीं दूर होती? इस संशयका निवारण करते हुए इस श्लोककी अवतारणा करते हैं—हे मन! जब तक मेरे हृदयमें (तुम मन ही मेरे हृदय हो) प्रतिष्ठारूपिणी निर्लज्ज चाण्डालिनी उद्दण्ड होकर नृत्य कर रही है, तो तुम्हीं कहो, वहाँ

निर्मल साधुप्रेम कैसे उदित हो सकता है? अतः तुम (अधिक विलम्ब न कर) भगवान्‌के अतिशय प्रियपात्र भक्तरूप अमित बलशाली सेनापतियोंका स्मरण और सेवन करो, वे शीघ्र ही उस चाण्डालिनीको दूर भगाकर निर्मल व्रज-प्रेमका तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करा देंगे।।२१।।

भजनरहस्यवृत्ति—अपनी प्रतिष्ठाकी आशाको 'प्रतिष्ठाशा' कहते हैं। अन्यान्य सभी अनर्थोंके दूर होनेपर भी प्रतिष्ठाकी आशा सहज ही दूर नहीं होती। उसीसे सब प्रकारकी कपटता और कुटिलता उत्पन्न होती है और क्रमशः पुष्ट होती है। यह प्रतिष्ठाशा सभी अनर्थोंकी जड़ है। स्वनिष्ठ साधक धार्मिक, दाता, निष्पापी, निर्लिप्त भगवद्‌भक्त, पण्डित, विद्वान आदि परिचयोंसे अपनी मान-प्रतिष्ठा चाहते हैं। अतः जब तक प्रतिष्ठाकी आशा दूर नहीं होती, तबतक कपटता भी दूर नहीं हो सकती। निष्कपट हुए बिना निर्मल साधुप्रेम अर्थात् श्रीकृष्ण-विषयमें अतिशय ममतायुक्त सम्यक्‌रूपमें द्रवीभूत हृदयका प्रेम प्राप्त नहीं होता।

साधक-हृदयकी दुष्टता, कपटता और कुटिलता आदि दूर करनेका एकमात्र उपाय है—शुद्ध वैष्णवोंकी सेवा। शुद्ध वैष्णवोंके हृदयमें ह्लादिनी शक्तिकी किरणें प्रतिफलित होती हैं। यही किरणें श्रद्धालु साधकोंके हृदयमें संचारित होकर उस साधक हृदयकी दुष्टता, कपटता और कुटिलता आदि अनर्थोंको दूरकर वहाँ व्रजप्रेमका प्रकाश करती हैं। श्रीनन्दनन्दनके प्रिय कृष्णदासरूप अतुलनीय कृपालु एवं बलशाली सेनापतियोंकी सर्वदा सेवा करो। शुद्ध वैष्णवोंका आलिङ्गन, उनकी चरणरज, अधरामृत (उच्छिष्ट प्रसाद), पदधौत जल और उपदेश आदि सब कुछ ह्लादिनीशक्तिका संचार करनेमें समर्थ हैं—

भक्तपद धूलि आर भक्तपद जल। भक्त भुक्त अवशेष-तीन साधनेर बल।।
एइ तीन सेवा हइते कृष्ण प्रेमा हय। पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय।।

(चै. च. अ. १६/६०-६१)

तत्रैव षष्ठ श्लोक—

अरे चेतः प्रोद्यत्कपटकुटिनाटी भरखर-
क्षरन्मूत्रे स्नात्वा दहसि कथमात्मानमपि माम्।
सदा त्वं गान्धर्वागिरिधरपदप्रेमविलसत्-
सुधाम्भोधौ स्नात्वा स्वमपि नितरां माञ्च सुखय।।२२।।

—काम-क्रोधादि रिपुओंका दमन होनेपर भी कपटतारूप महाशत्रुको जय करनेके लिए उपदेश दे रहे हैं—अरे दुष्ट मन! तुम साधन-पथका अवलम्बन करके भी स्पष्टरूपसे प्रतीत होनेवाली प्रचुर कपटता एवं कुटिलता रूप गधेके बहते हुए मूत्रमें स्नान करके अपनेको पवित्र मान रहे हो? किन्तु उसके द्वारा स्वयं तो जल ही रहे हो, साथ ही मुझ क्षुद्र जीवको भी जला रहे हो। देख, ऐसा न कर; अब तो केवल श्रीराधाकृष्ण युगलके श्रीचरणकमल विषयक प्रेमरूप सुधा-समुद्रमें अवगाहन (स्नान) कर अपनेको और साथ ही मुझको भी निरन्तर सुखी करो।।२२।।

प्रतिष्ठाशा कुटीनाटी यत्ने कर दूर। ताहा हैले नामे रति पाइबे प्रचुर।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधन पथका अवलम्बन करके भी साधक पुरुषोंमें स्पष्टतः प्रतीत होनेवाली जो प्रचुर कपटता और कुटिलता है, वह गधेके मूत्रके तुल्य है तथा कपटी-कुटिल होते हुए भी अपनेको भजनशील समझना गधेके अपवित्र एवं दाहक मूत्रमें स्नानकर अपनेको पवित्र समझनेके तुल्य है। साधकको सावधानीपूर्वक इनका परित्याग करना कर्त्तव्य है।

भक्ति साधक तीन प्रकारके होते हैं—स्वनिष्ठ, परिनिष्ठित तथा निरपेक्ष। इनमें निम्न प्रकारकी कपटता हो सकती है—

स्वनिष्ठ साधक गृहस्थ भक्त हैं, जो वर्णाश्रम विहित विधि-विधानोंका पालन और निषेधोंका परित्यागकर श्रीहरिकी सेवा करते हैं। भक्ति साधनकी आड़में इन्द्रियसुख भोग करना, निष्कपट भक्तोंकी सेवाके बदले धनवान और प्रभावशाली विषयी लोगोंकी सेवा करना, आवश्यकतासे अधिक संग्रह करना, निरर्थक अनित्य धंधोंमें आग्रह रखना, कुतर्क करना, निरपेक्ष विरक्त साधकोंका वेश धारणकर जड़प्रतिष्ठा संग्रहके लिए प्रयत्नशील रहना ऐसे साधकोंकी कपट पूर्णक्रियाएँ हैं।

जो गृहस्थ भक्त भगवानकी सेवा-परिचर्या विधि-निषेधोंके अनुसार करते हैं वे परिनिष्ठित साधक कहलाते हैं। बाहरसे परिनिष्ठित होनेका ढोंग करना; किन्तु अन्दर ही अन्दर कृष्णेतर विषयोंमें आसक्त रहना, अनन्य प्रेमी भक्तोंके संगकी अपेक्षा सत्कर्मी, ज्ञानी, योगी, विषयी आदिके संगमें अधिक आग्रह रखना आदि ऐसे साधकोंकी कपटताएँ हैं।

निरपेक्ष अर्थात् गृहत्यागी साधकोंकी कपटता—अपनेको श्रेष्ठ वैष्णव समझनेका दंभ रखना तथा वैराग्य-वेश धारण कर अहंकारवश अन्य

साधकोंको तुच्छ समझना, अर्थादि संग्रहका प्रयत्न, योषित संग, विषयी लोगोंका संग, भजनके नामपर अर्थसंग्रह, वैराग्य–वेश तथा विधि पालनके प्रति अधिक आग्रह द्वारा कृष्णरतिको क्षीण करना आदि। इस सब विषयोंको छोड़कर केवल श्रीयुगलकिशोरके चरणकमल विषयक प्रेमजनित विशुद्ध चिद्विलासरूप सुधा–समुद्रमें अवगाहन करना चाहिए। श्रील रूपगोस्वामीपाद तथा अन्य गुरुवर्गकी प्रार्थना–पद्धति इस दिशामें साधकका उचित मार्ग–निर्देश करती हैं। उन्हींका अवलम्बन कर युगलकी अष्टकालीन लीलाओंका हृदयसे स्मरण करते हुए साधन करना चाहिए।

दस प्रकारके नामापराधका अवश्य त्याग करना चाहिए, यथा पद्म पुराण (स्वर्ग खण्ड अ ४८)—

सतां निन्दा नाम्नः परमपराधं वितनुते।
यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम्।।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि–सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरि–नामाहितकरः।।
गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनम् तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम्।
नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।।
धर्म–व्रत–त्याग–हुतादि–सर्व–शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः।
अश्रद्दधाने विमुखेऽप्य श्रृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः।।
श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः।
अहमेतत् परमः नाम्नि सोऽप्यपराधकृत्।।२३।।

(१) सन्तोंकी निन्दा श्रीनामके निकट भीषण अपराधका विस्तार करती है, जिन नाम–परायण सन्त–महात्माओंके द्वारा श्रीकृष्ण नामकी महिमाका संसारमें प्रचार होता है, उनकी निन्दाको श्रीनाम प्रभु कैसे सह सकते हैं? अतः साधु–सन्तोंकी निन्दा करना पहला अपराध है।

(२) इस संसारमें जो मनुष्य बुद्धि द्वारा परम मङ्गलमय श्रीविष्णुके नाम, रूप, गुण और लीला आदिमें भेद दर्शन करते हैं, अर्थात् भौतिक पदार्थोंकी तरह श्रीविष्णुके नाम, रूप, गुण और लीलाको नामी–विष्णुसे स्वतन्त्र अथवा विष्णुसे पृथक् मानते हैं अथवा शिव आदि देवताओंको विष्णुसे स्वतन्त्र अथवा विष्णुके समान मानते हैं, उनका वह हरिनाम (नामापराध) निश्चय ही अहितकर है।

(३) नामतत्त्वविद् गुरुको मरणशील और पञ्चभौतिक शरीरयुक्त साधारण मनुष्य मानकर उनकी अवज्ञा करना।

(४) वेद और सात्त्वत पुराण आदि शास्त्रोंकी निन्दा करना। सभी वेदों और उपनिषदोंमें नामकी महिमा पायी जाती है। जिन मन्त्रोंमें नामकी महिमा प्रकाशित है, उनकी निन्दा करनेसे नामापराध होता है। कुछ लोग दुर्भाग्यवश श्रुतिके दूसरे उपदेशोंका सम्मान अधिक करते हैं तथा नाम-महिमा सूचक श्रुति-मन्त्रोंकी उपेक्षा करते हैं। ऐसा करना भी नामापराध है।

(५) हरिनामकी महिमाको अतिस्तुति समझना। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि भगवन्नाममें भगवानकी सारी शक्तियाँ निहित हैं, नाम पूर्ण चिन्मय है, अतएव वे मायिक जगतके बन्धनको ध्वंस करनेमें समर्थ हैं। ये सब नाम माहात्म्य परम सत्य हैं, किन्तु जो इनपर विश्वास नहीं करते और कहते हैं शास्त्रमें नामकी महिमा बढ़ा-चढ़ा कर कही गई है, उन व्यक्तियोंका कभी संग भी न करो। यदि वे कभी आँखोंके सामने पड़ जायें तो समस्त कपड़ोंके साथ स्नानकर लेना—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा है।

(६) भगवन्नामको काल्पनिक समझना अपराध है। मायावादी और भौतिक कर्मवादी निर्विकार और नाम-रूपरहित ब्रह्मको परमतत्त्व मानते हैं। जो ऐसा मानते हैं कि ऋषियोंने अपने कार्योंकी सिद्धिके लिए राम-कृष्ण आदि नामोंकी कल्पना की है—वे नामापराधी हैं। हरिनाम काल्पनिक नहीं, वरन् नित्य और चिन्मय वस्तु हैं—भक्तिके द्वारा चिद् इन्द्रियोंपर आविर्भूत मात्र होते हैं। सद्गुरु और शास्त्र यही शिक्षा देते हैं। अतः हरिनामको परम सत्य मानना चाहिए; उन्हें कल्पित समझनेसे कभी भी नामकी कृपा नहीं पायी जा सकती।

(७) जिनकी श्रीनामके बलपर पाप-कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है, उनकी अनेक यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि कृत्रिम योग-प्रक्रियाओंके द्वारा भी शुद्धि नहीं होती, यह निश्चित है।

(८) धर्म, व्रत, त्याग, होम, आदि प्राकृत शुद्ध कर्मोंको अप्राकृत भगवन्नामके समान या तुल्य समझना भी प्रमाद या असावधानी है।

(९) श्रद्धाहीन और नाम-श्रवण करनेसे विमुख मनुष्यको नामका उपदेश देना भी नामापराध है।

(१०) नामकी अद्भुत महिमाको सुनकर भी जो शरीरमें 'मैं' और

सांसारिक भोग्य पदार्थोंमें 'मेरा' की बुद्धि रखते हैं तथा श्रीनामोच्चारणमें प्रीति या आग्रह नहीं दिखलाते, वे भी नामापराधी हैं।

साधु अनादर आर अन्ये ईश ज्ञान। गुरुके अवज्ञा, नाम शास्त्रे अपमान।।
नामे अर्थवाद, नामवले पापान्धता। अन्य शुभकर्म सह नामेर समता।।
श्रद्धाहीने नाम दान जड़ासक्तिक्रमे। माहात्म्य जानिया नामे श्रद्धा नहे भ्रमे।।
एइ दश अपराध यत्ने परिहरि। हरिनामे कर भाई भजन चातुरी।।

भजनरहस्यवृत्ति—उपर्युक्त दश प्रकारके नामापराधोंसे सावधानीपूर्वक बच कर साधुसंगमें भजन करना ही नाम-भजन-चातुरी है।

फल्गुवैराग्य वर्जन यथा भक्तिरसामृतसिन्धु (पू. वि. २/२५६)—

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते।।२५।।

—मुक्तिके इच्छुक साधक शास्त्र, श्रीमूर्ति, भगवन्नाम, महाप्रसाद और गुरु-वैष्णव इत्यादि हरिसम्बन्धी वस्तुओंको प्राकृत वस्तु समझकर परित्याग कर देते हैं। ऐसे त्याग या वैराग्यको फल्गु वैराग्य कहते हैं।

प्रापञ्चिक ज्ञाने भक्ति सम्बन्ध विषय। मुमुक्षुजनेर त्याग फल्गु नाम हय।।

नामाधिकारी जीवोंका कर्माधिकार त्याग; यथा श्रीमद्भागवत (११.५.४१)—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम्।।२५।।

—जो सब प्रकारसे शरणागतवत्सल भगवान् मुकुन्दकी शरणमें आ गया है, वह देवताओं, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियोंके ऋणसे उऋण हो जाता है, वह किसीके अधीन या किसी अन्यका सेवक नहीं रहता।।२५।।

एकान्त हइया नामे ये लय शरण। देवादिर ऋण तार नहे कदाचन।।

भजनरहस्यवृत्ति—पितृ-ऋणसे उद्धार पानेके लिए कर्मकाण्डीय श्राद्ध आदि कर्मोंका विधान, भगवानके शरणागत भक्तोंके लिए नहीं है। उनके लिए भगवानकी पूजाकर पितरोंको भगवत् प्रसाद अर्पण करके बन्धु-बाधवोंके साथ भगवत् प्रसाद पाना ही एकमात्र विधि है। सम्पूर्ण गीताका चरम तात्पर्य है कि जो लोग समस्त धर्मोंका भरोसा छोड़कर भगवानके शरणागत होते हैं, भगवान् उन्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर देते हैं। जब अनन्य भक्तिके प्रति अधिकार पैदा हो जाता है, तब वह अधिकारी व्यक्ति ज्ञान-शास्त्र

और कर्मशास्त्रकी विधियोंका पालन करनेके लिए बाध्य नहीं होता। केवल भक्ति अनुशीलनसे ही उसकी सर्वसिद्धि हो जाती है। अतएव, 'न मे भक्तः प्रणश्यति' (गी. ९.३१)—भगवान्‌की इस प्रतिज्ञाको सर्वोपरि समझना चाहिए।

नियमाग्रहका परित्यागकर नियमका सार ग्रहण करें; यथा भक्तिरसामृतसिन्धु १/२/८ (पद्मपुराण वचन)—

स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधि निषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः।।२६।।

—विष्णुको सर्वदा स्मरण रखो, उन्हें कभी मत भूलो—दूसरे दूसरे समस्त विधि-निषेध इन दोनोंके ही अनुगत हैं।।२६।।

याहे कृष्णस्मृति हय, ताई विधि जानि। कृष्ण विस्मारक कार्य निषेध बलि मानि।।

भजनरहस्यवृत्ति—शास्त्रोंमें जितनी प्रकारकी विधियोंकी व्यवस्था है तथा निषेधोंका निर्धारण है, वे समस्त उक्त दो मूल विधि और निषेध वाक्योंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं। भगवान विष्णुको जीवनभर सर्वदा स्मरण रखो—यही मूल विधि है; जीवके जीवन निर्वाहके लिए वर्णाश्रमादि व्यवस्थाएँ इसी विधिके अधीन हैं। भगवानको भूलना—यही मूल निषेध है। पाप और बहिर्मुखता वर्जन तथा पापोंके प्रायश्चित्त, ये सभी इसी मूल निषेध-विधिके अनुगत हैं।

अतएव शास्त्रोक्त समस्त विधि और निषेध भगवत् स्मरण-विधि और विस्मरण निषेधके चिर किङ्कर हैं। इससे यह समझना होगा कि वर्णाश्रमादि समस्त प्रकारकी विधियोंमें भगवत् स्मरण-विधि ही नित्य है।

कर्म-ज्ञानके द्वारा प्रायश्चित्तादि करनेकी चेष्टा मत करो; यथा पद्मपुराण—

हरेरप्यपराधान् य कुर्याद्विपदपांशलः।
नामाश्रयः कदाचित् स्यात् तरत्येव स नामतः।।
नाम्नोऽपि सर्वसुहृदो ह्यपराधात् पतत्यधः।
नामापराध युक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च।।२७।।

—जो नराधम व्यक्ति श्रीहरिके चरणोंमें सेवापराध करते हैं, कदाचित् यदि वे नामाश्रय करें तो सेवापराधसे मुक्त हो सकते हैं। समस्त प्रकारके अपराध नाम सेवासे दूर हो जाते हैं। अविच्छिन्न तैलधारावत्, सम्बन्धयुक्त अनर्थरहित नाम-सेवासे सर्वसिद्धि होती है।।२७।।

कृष्णेर श्रीमूर्ति प्रति अपराध करि। नामाश्रये सेइ अपराधे याय तरि।।
नाम अपराध यत नामे हय क्षय। अविश्रान्त नाम लैले सर्वसिद्धि हय।।

प्रत्येक व्यक्तिको कृष्णस्वरूप तथा आत्म-स्वरूपके ज्ञानकी प्राप्तिकी चेष्टा करनी चाहिए; सर्वप्रथम कृष्णके रूप, गुण तत्पश्चात् लीलाका ज्ञान; यथा चतुःश्लोकी भागवत (२.९.३२)—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्।।२८।।

भगवान ब्रह्माजीसे कहते हैं, 'इस जगतकी सृष्टिके पूर्व एकमात्र मैं ही था, स्थूल, सूक्ष्म अर्थात् सत् असत् एवं अनिर्वचनीय ब्रह्म पर्यन्त मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। सृष्टिके रूपमें जो परिदृश्यमान है वह भी मैं ही हूँ, सृष्टिके पश्चात् भी मैं ही रहता हूँ एवं प्रलयमें भी एकमात्र मैं ही रहूँगा।।२८।।

चिद्घन-स्वरूप कृष्ण नित्य सनातन। कृष्णशक्ति परिणति अन्य संघटन।।
सकलेर अवशेषे कृष्ण चिद् भास्कर। अविचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व कृष्णेतर।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोकमें 'अहमेव' अर्थात् 'मैं ही'—यह शब्द तीन बार कहा गया है, इसका कारण है कि भगवान अनादि कालसे अपने पूर्णैश्वर्यमय साकार विग्रह रूपमें नित्य वर्तमान हैं। जो परब्रह्मके निराकार रूपको मानते हैं उनके मतका खण्डन करनेके लिए ही भगवान्ने तीन बार 'मैं ही' शब्दका व्यवहार किया है। इसका भावार्थ इस प्रकार है—इस समय मैं तुम्हारे सामने इस परम मनोहर रूप, गुण, माधुर्यकी महावारिधिके रूपमें ही विराजमान हूँ, इस सृष्टिके पूर्व अर्थात् महाप्रलय कालमें भी वर्तमान था। उस समय भगवानका समस्त कार्य था, केवलमात्र पाञ्चभौतिक जगतकी सृष्टि नहीं थी। भगवानकी अंतरङ्ग लीला भी वर्तमान थी तथा लीला सहायक समस्त परिकर भी वर्तमान थे। भगवानके अंतरङ्ग पार्षद आदि भी प्रलयकालमें वर्तमान रहते हैं। महाप्रलयमें प्राकृत ब्रह्माण्डोंका ही नाश होता है; किन्तु भगवानकी चिद्शक्तिका विलास, विभिन्न भगवत्स्वरूप, विभिन्न धाम एवं परिकर नित्य ही अवस्थान करते हैं। भगवान सृष्टिके पहले तथा बादमें दोनों ही कालोंमें विराजमान रहते हैं। समस्त जड़ जगत् भगवानकी बहिरङ्गा शक्तिका रूप है तथा जीव उनकी तटस्था शक्ति है। अतः यह पाञ्चभौतिक प्रपञ्च भी भगवानसे पृथक् नहीं है। अपने षडैश्वर्यशाली रूपमें भगवान अनन्त

वैकुण्ठोंमें, प्रपञ्चमें अन्तर्यामी रूपमें तथा अवतरण प्रयोजन कालमें मत्स्यादि अवतारोंके रूपमें अवस्थान करते हैं।

निर्विशेषवादी कहते हैं कि पहले एकमात्र निर्विशेष ब्रह्म मात्र था। उसके उत्तरमें कहते हैं—'सत् अर्थात् कार्य और असत् अर्थात् कारण, इन दोनोंसे अतीत परम वस्तु जो ब्रह्म है वह मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है। कोई-कोई मेरे भगवत् स्वरूपभूत चिद्विलास स्वरूपका अनुभव न कर पानेसे केवल निर्विशेष स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं, किन्तु तुम मेरे आशीर्वाद और अनुग्रहसे अप्राकृत रूप, गुणविशिष्ट मेरे स्वरूपका अनुभव करो।'

मायाशक्तिका स्वरूप-ज्ञान और जीवशक्तिका स्वरूप-ज्ञान; यथा तत्रैव (२.९.३३)—

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।२९।।

—स्वरूप तत्त्व ही यथार्थ तत्त्व है। उस तत्त्वके बाहरमें जो कुछ दिखायी देता है और उस स्वरूप-तत्त्वमें जिसकी प्रतीति नहीं है, उसीको आत्मतत्त्वका माया-वैभव समझना चाहिए। इसका दृष्टान्त है—स्वरूपतत्त्व सूर्यकी भाँति ज्योतिर्मय वस्तु है। सूर्यकी प्रतीति दो अन्य रूपोंमें भी होती है आभास और तमः। आभास जीवमाया स्थानीय है तथा तमः गुणमाया-स्थानीय है।।२९।।

कृष्ण शक्ति माया, कृष्ण हइते भेदाभेद। चिच्छक्ति स्वरूपाश्रिता चिज्योतिसम्भेद।।
जड़ाकारे मायाशक्ति छाया तमोधर्म। प्रपञ्च प्रतीति याहे विनश्वरकर्म।।

भजनरहस्यवृत्ति—ये दोनों भगवद् आश्रित होनेपर भी भगवत् प्रतीतिमें जीव और माया प्रतीतिका अभाव है। जीव एवं माया प्रतीतिमें भगवत् प्रतीति नहीं है।

पूर्व श्लोकमें परम तत्त्वका स्वरूप निरूपण किया गया है। स्वरूपसे पृथक् तत्त्वके द्वारा स्वरूप-तत्त्वके ज्ञानका अनुभव होना ही विज्ञान है। यही पृथक् तत्त्व माया है। प्रस्तुत श्लोकमें इसी मायातत्त्वके ज्ञानका विस्तार है। स्वरूप तत्त्व ही यथार्थ तत्त्व है तथा इसके बाहर प्रतीत होनेवाला जिसकी स्वरूप तत्त्वमें प्रतीति नहीं होती, उसीको आत्म तत्त्वका वैभव कहा जाता है। उदाहरणके लिए—सूर्य, उसकी प्रतिच्छवि तथा तम जहाँ

सूर्यका प्रकाश न हो। सूर्यका आभास—सूर्यका किसी जलाशय आदिमें दीखनेवाला प्रतिबिम्ब या आभास सूर्यके उदयकालमें ही दिखाई देता है, सूर्यके न होनेपर आभास भी नहीं रहता। इसी प्रकार मायाकी प्रतीति भी तभी होती है, जब भगवानकी सृष्टि करने वाली शक्तिका विकास होता है। महाप्रलयमें मायाका अस्तित्व नष्ट हो जाता है। भगवानके बिना मायाकी अभिव्यक्ति नहीं है। तम या अन्धकार—जहाँ प्रकाश रहता है, वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता, किन्तु अन्धकारकी प्रतीति भी नेत्रोंसे ही होती है। इसी प्रकार भगवानके आश्रयके बिना माया अपनी प्रतीति नहीं करा सकती। चिद् जगत भगवत् स्वरूप सूर्यकी किरण स्वरूप है, उसके सादृश्यके समान आभास या प्रतिछवि स्थानीय जीव जगत् है। चित् तत्त्वसे बहुत दूर अन्धकारमय मायाजगत् है। आत्मतत्त्व तथा मायातत्त्वमें दो प्रकारका सम्बन्ध है। प्रथम तो—आत्मस्वरूपके बिना जो पृथक् रूपमें प्रतीत हो वह माया है तथा आत्मस्वरूपसे बहुत दूर अनात्म अज्ञान भी माया है। इस प्रकार अपने स्वरूप, जीव स्वरूप तथा माया स्वरूपका निरूपण कर भगवानने ब्रह्माजीको सम्बन्ध तत्त्वका वर्णन किया है।

जीव और जड़का कृष्णसे अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध है तथापि कृष्ण अपने नित्य स्वरूपमें पृथक् अवस्थान करते हैं—यथा तत्रैव (२.९.३४)—

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।३०।।

—जिस प्रकार पञ्च महाभूतसमूह देव, तिर्य्यकादि उच्चनीच प्राणिसमूहमें प्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट रूपमें स्वतन्त्र वर्तमान हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें परमात्मा रूपसे प्रविष्ट रहकर भी मैं स्वतन्त्र रूपसे अपने स्वरूपमें अवस्थित हूँ तथा अपने शरणागत भक्तोंके अन्दर तथा बाहरमें स्फुरित होता हूँ।।३०।।

महाभूत उच्चावच भूते अवस्थित। हइया ओ पूर्णरूपे महाभूते स्थित।।
सेइ रूप चिंदश जीवे कृष्णांश व्यापित। हइया ओ पूर्ण कृष्ण स्वरूपावस्थित।।

भजनरहस्यवृत्ति—अपने स्वरूपका वर्णन करनेके पश्चात् श्रीभगवान् कहते हैं कि, 'मैं समस्त प्राणियोंके भीतर-बाहर अवस्थित रहता हूँ।' भगवान अन्तर्यामी रूपमें समस्त प्राणियोंमें रहते हैं, किन्तु इसकी अनुभूति समस्त प्राणी नहीं कर पाते हैं, इसका अनुभव केवल भगवानके भक्त ही कर

सकते हैं। यही नहीं भगवान सभी स्थानोंमें विराजित हैं, वे भक्तजन इसका भी अनुभव करते हैं। अपनी भक्तिके तारतम्यानुसार भक्तगण भगवानके अस्तित्वके साथ उनके सौन्दर्य-माधुर्यामृतका भी आस्वादन करते हैं। श्रीभगवानसे भक्तोंकी जो प्रीति है—वही प्रेम है तथा यही प्रयोजन तत्त्व है। प्रेमी भक्त अन्दर तथा बाहर सर्वत्र श्रीकृष्णको ही देखते हैं।

भक्त आमा बान्धियाछे हृदय भितरे।
जाँहा नेत्र पड़े ताहा देखये आमारे।।

(चै. च. म. २५.१२७)

श्रीकृष्ण कहते हैं—भक्तोंने मुझे प्रेम रूपी रज्जुसे अपने हृदयमें बाँध रखा है और बाहर जहाँ-जहाँ भी उनकी दृष्टि पड़ती है, वहाँ वे मुझे ही देखते हैं। प्रयोजन-तत्त्व प्रेमका यही स्वरूप लक्षण है।

भगवान् भक्तोंके हृदयमें ममतापूर्वक निवास करते हैं तथा अन्यान्य जीवोंके हृदयमें निर्लिप्त भावसे रहते हैं। ममतापूर्वक भक्तोंके हृदयमें निवास ही परम स्वतन्त्र भगवानकी वशीभूतता है। भगवान् प्रेमी भक्तोंकी प्रेमभक्तिसे उनके द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं। तत्त्वज्ञानका सार है प्रेमभक्ति तथा प्रेम-भक्तिका अपूर्व रहस्य है—अपने प्रेमीभक्तोंके वशीभूत रहना।

नामादिका स्वरूपज्ञान; यथा भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्वविभाग २.२३३ (पद्मपुराण वचन)—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः।।३१।।

—नाम और नामीमें कोई भेद न होनेके कारण नाम चिन्तामणि-स्वरूप हैं, अर्थात् परम पुरुषार्थको देनेवाले हैं। ये 'नाम' कृष्णचैतन्य रस-स्वरूप, पूर्णशुद्ध अर्थात् अपरिच्छिन्न एवं माया सम्बन्धसे रहित नित्यमुक्त हैं।।३१।।

हरिनाम चिन्तामणि चिद्रसस्वरूप। पूर्ण जड़ातीत नित्य कृष्ण निजरूप।।

भजनरहस्यवृत्ति—नाम और नामी परस्पर अभेद तत्त्व हैं। इसलिए नामी कृष्णके समस्त चिन्मय गुण उनके नाममें हैं। नाम सर्वदा पूर्णतत्त्व हैं, हरिनाममें जड़-संस्पर्श नहीं है, वे नित्यमुक्त हैं, क्योंकि वे मायिक गुणों द्वारा कभी आबद्ध नहीं होते। नाम-स्वयं कृष्ण हैं, अतएव चैतन्य-रसके घनविग्रह हैं। नाम-चिन्तामणि हैं, उनसे जो कुछ भी माँगा जाय, वे सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। श्रीनाम-संकीर्त्तन रूप साधन, साध्यरूप कृष्णसे सर्वथा

अभिन्न है। एक ही सच्चिदानन्द–रस परतत्त्व नाम एवं नामी इन दो रूपोंमें नित्य अभिव्यक्त हो विराजमान है।

भक्तिरसामृतसिन्धु; पूर्व विभाग (२.२३४)—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।।३२।।

—श्रीकृष्णनामादि प्राकृत जिह्वादि इन्द्रियोंसे ग्रहणीय नहीं हैं। वे तो केवल भक्तोंकी सेवोन्मुख अप्राकृत जिह्वादि इन्द्रियोंमें स्वयं ही स्फुरित होते हैं।।३२।।

नाम, रूप, गुण, लीला इन्द्रियग्राह्य नय। सेवामुखे कृपा करि इन्द्रिये उदय।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवत्स्वरूप भगवन्नाम–ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होना ही सेवोन्मुखी वृत्ति है। जो जिह्वादि इन्द्रियाँ श्रीनामसेवाके लिए उन्मुख होती हैं अर्थात् ग्रहण करनेके लिए प्रवृत्त होती हैं, नाम उनपर स्वयं ही आविर्भूत होकर नृत्य करने लगते हैं। उदाहरणके लिए भरत महाराज जब मृग शरीर छोड़ने लगे तथा गजेन्द्र भी जब जलमें डूबने लगा, तब पशु होते हुए भी भगवन्नाम उनकी जिह्वापर स्वयं आविर्भूत हो उठा।

श्रीमद्भागवत (११.२१.२)—

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निर्णयः।।३३।।

—अपने अपने अधिकारके अनुसार धर्ममें दृढ़ निष्ठा रखना गुण कहा गया है और इसके विपरीत अनधिकार चेष्टा करना ही दोष है।

अधिकार सुसम्मत कार्ये हय गुण। विपरीत कार्ये दोष बुझिबे निपुण।।

भजनरहस्यवृत्ति—तात्पर्य यह है कि गुण और दोषका निर्णय अपने अधिकारके अनुसार किया जाता है, किसी वस्तुके अनुसार नहीं।।३३।।

नामाधिकार; यथा श्रीमद्भागवत (११.२०.२७–२८)—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः।।
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढ़निश्चयः।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन्।।३४।।

—जिस साधककी मेरी कथाओंमें श्रद्धा उत्पन्न हो गई है, यदि वह सभी भोग और भोग–वासनाओंको दुःखरूप जानकर भी उनको परित्याग करनेमें समर्थ न हो, उसे चाहिए कि उन भोगोंको सच्चे हृदयसे दुःखजनक

समझते हुए और मन ही मन उनकी निन्दा करते हुए भोगता रहे, किन्तु साथ ही साथ श्रद्धा, दृढ़ निश्चय और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन भी करता रहे।।३४।।

कृष्ण कथा श्रद्धालाभ त्यजे कर्मासक्ति। दुःखात्मक कामत्यागे तबू नहे शक्ति।।
काम सेवा करे ताहा करिया गर्हण। सुदृढ़भजने कामे करे विध्वंसन।।
पुण्यमय काममात्र उद्दिष्ट एथाय। पापकामे श्रद्धधानेर आदर ना हय।।

भजनरहस्यवृत्ति—सत्सङ्गके प्रभावसे किसी मनुष्यकी हरिकथाके श्रवणमें रुचि उत्पन्न होती है, उस समय उसे दूसरा कोई भी काम अच्छा नहीं लगता। वह दृढ़ विश्वासके साथ भगवन्नाम लेता रहता है। उन भोग और भोगवासनाओंको, जिनका वह अपने पूर्व अभ्यासके कारण परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, मन ही मन निन्दा करते हुए भोगता रहता है।

यहाँ भक्तिके अधिकारीका प्राथमिक लक्षण बताते हुए भक्तिके स्वरूपका इन दो श्लोकोंमें वर्णन करते हैं—

'सर्वकर्मषु' अर्थात् समस्त लौकिक, वैदिक कर्मों तथा उनके फलोंमें विषण्ण अर्थात् दुःख बुद्धिसे उद्विग्न होकर। 'कामान्' अर्थात् स्त्री आदिके संगसे उत्पन्न होनेवाली कामनाओंको दुःख रूप समझे। यदि उसके परित्यागमें असमर्थ हो, तो भी आरम्भसे ही दृढ़ निश्चयवाला हो जाय—कि मेरी गृहासक्ति नष्ट हो या बढ़े, मेरे भजनमें कोटि-कोटि विघ्न हों, अपराध होनेपर यदि नरक भी हो जाय, तो उसे भी मैं अंगीकार करूँगा, किन्तु भक्तिको नहीं छोड़ूँगा, चाहे स्वयं ब्रह्मा भी आकर वैसा कहें। इस प्रकारके दृढ़निश्चयसे जो भजन करता है, उसे सफलता प्राप्त होती है। कलत्र, पुत्र आदिके संगसे उत्पन्न होनेवाली दुःखद कामनाओंकी निन्दा करते हुए सेवन करे, किन्तु भक्तिका परित्याग न करे। धीरे-धीरे श्रवण कीर्त्तनादिसे भोग वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं तथा भक्तिकी प्राप्ति होती है।

भक्तिके अनुकूल छह संकल्प; यथा उपदेशामृत (तृतीय श्लोक)—

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात् तत्तत्कर्म-प्रवर्त्तनात्।
संगत्यागात् सतोवृत्तेः षडभिर्भक्तिः प्रसिध्यति।।३५।।

—भक्ति वर्द्धक नियमोंमें उत्साह रखना, शास्त्र एवं शास्त्रानुकूल श्रीगुरुदेवके वचनोंमें दृढ़ विश्वास रखना, अनेक विघ्न-बाधा आनेपर भी अथवा अभीष्ट सिद्धिमें विलम्ब होनेपर भी भक्तिके साधनोंमें धैर्य रखना, श्रवण, कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका पालन तथा कृष्ण प्रीतिके लिए

अपने भोग–विलासका वर्जन करना, भक्ति विरोधी अवैध स्त्रीसंग, योषित संगीका संग, मायावादी, निरीश्वरवादी और धर्मध्वजी लोगोंका संग छोड़ देना, भक्तजनोंका सा सदाचार और उनकी जैसी वृत्ति ग्रहण करना—इन छह प्रकारके साधनोंसे भक्तिकी सिद्धि होती है।।३५।।

उत्साह, दृढ़ता, धैर्य भक्ति कार्ये रति। सङ्गत्याग, साधुवृत्ति छये कर मति।।

भजनरहस्यवृत्ति—जीवन–निर्वाह और भक्तिका अनुशीलन—ये दोनों ही कार्य भक्तके लिए आवश्यक हैं। इस श्लोकको पहली अर्द्धलीमें भक्ति अनुशीलनकी क्रियाओंकी ओर संकेत किया गया है और दूसरी अर्द्धलीमें भक्तजीवनकी व्यवस्था दी गयी है। उत्साह, निश्चय, धैर्य, भक्ति–पोषक कार्योंका अनुष्ठान, संगत्याग और सदाचारसे अथवा सद् वृत्तिसे भक्ति सिद्धि होती है।

ज्ञान, कर्म और अन्याभिलाष सम्बन्धी साधनों एवं रुचिकर विषय भोगोंसे सर्वथा उदासीन होकर दृढ़तापूर्वक साधन–भक्तिके अङ्गोंका पालन करना 'उत्साह' है। भगवद्भक्ति ही जीवोंके लिए एकमात्र पुरुषार्थ है—ऐसा दृढ़ विश्वास ही 'निश्चय' है। कर्म–ज्ञान आदि मार्गोंमें भटकनेसे चित्त चंचल होता है और उनके साधनसे केवल क्लेशमात्र ही हाथ लगता है। अतः भक्तिमार्ग ही शुद्ध जीवोंके लिए अविचलित मार्ग है—ऐसी स्थिर धारणा ही 'धैर्य' कहलाती है। भक्ति मार्गके प्रति श्रीहरिदास ठाकुरकी यह अटल प्रतिज्ञा कि भले ही मेरे शरीरको खण्ड–खण्ड कर दिया जाय, भले ही मेरे प्राण निकल जायँ—किन्तु मैं हरिनामका कीर्त्तन करना कभी नहीं छोड़ सकता—यह भक्ति राज्यमें आदर्श है—

खण्ड–खण्ड हय देह जाय यदि प्राण।
तबु आमि वदने ना छाड़ि हरिनाम।।

(श्रीचैतन्य भागवत)

ऐसी दृढ़ताके साथ हरिकथाका श्रवण, भगवन्नामका कीर्त्तन, उनके नाम, रूप और लीला–कथाओंका चिन्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका अनुशीलन—'तत्तत्कर्म प्रवर्त्तन' है। भगवद्भक्तजनोंका संग ही वांछनीय है; ज्ञानी, कर्मी और अन्याभिलाषी व्यक्तियोंको विषय–विमूढ़ जानकर उनका संग कभी नहीं करना चाहिए। भगवद् भाव रहित कर्म, ज्ञान और अष्टांगयोग आदि भक्तिपथके सोपान नहीं हैं। भक्तिमार्ग ही साधुवृत्ति है, क्योंकि भक्तिमान पुरुषमें सभी गुण निश्चित रूपसे विराजमान रहते हैं। कृष्णसेवामें उत्साह, सेवाविषयमें निश्चयता, कृष्णसेवामें स्थिरता, कृष्ण सेवाके लिए ही अखिल चेष्टापरायण

होना, कृष्ण भक्तोंके अतिरिक्त दूसरे लोगोंका संग त्याग और कृष्ण भक्तोंका अनुगमन—इन छह प्रकारके साधनोंसे भक्तिकी वृद्धि होती है।

प्रकृत साधु संग द्वारा भक्तिके क्रमका विकास; यथा श्रीमद्भागवत (३.२५.२५)—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि, श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति।।३६।।

—सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान कराने वाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली वीर्यवती कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके पथस्वरूप मुझमें श्रद्धा, रति और प्रेम भक्तिका क्रमशः प्रकाश होता है।।३६।।

साधु सङ्गे हय कृष्णकथा रसायन। ताहे श्रद्धा रति भक्ति क्रमे उद्दीपन।।

भजनरहस्यवृत्ति—संसारमें भ्रमण करते-करते जीवको सौभाग्यवश भक्तिप्रद सुकृति होती है। वही भक्तिप्रद सुकृति अनेक जन्मोंमें एकत्रित एवं सञ्चित होकर अनन्य भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती है। श्रद्धा होनेपर शुद्ध भक्तों-सच्चे संतोंका संग प्राप्त करनेके लिए लालसा उत्पन्न होती है। सत्संगसे साधन और भजन क्रमशः होने लगते हैं। अनर्थ दूर होनेपर वही श्रद्धा निर्मल होकर निष्ठाके रूपमें बदल जाती है, निष्ठा भी क्रमशः निर्मल होकर रुचि हो पड़ती है। रुचि भक्तिके सौन्दर्यसे अधिक दृढ़ होनेपर आसक्तिके रूपमें बदल जाती है, वही आसक्ति क्रमशः पूर्णता लाभ करनेपर भाव या रति होती है। रति सामग्रीके साथ मिलकर रस हो पड़ता है—यही 'प्रेमोत्पत्ति' का क्रम-विकास है।

मध्यम भक्तकी तीन प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा; यथा उपदेशामृत पंचम श्लोक—

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य-
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या ।।३७।।

—जिसकी वाणीपर 'हे कृष्ण!' ऐसा एक भी कृष्णनाम उच्चारित हो, ऐसे कनिष्ठ अधिकारीको अपना मानकर मन-ही-मन आदर करना चाहिए; जिसने दीक्षाके तत्त्वको समझकर योग्य गुरुदेवसे दीक्षा ग्रहण कर ली है तथा वैष्णव रीतिके अनुसार भगवानका भजन भी करता है, ऐसे सदसद् विचार-सम्पन्न मध्यमाधिकारीका प्रणाम आदिके द्वारा आदर करना चाहिए

और जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत आदि वैष्णव स्मृतियोंके अनुसार भजनके तत्त्वको अच्छी प्रकार जानकर अनन्य रूपसे श्रीकृष्णका भजन करता है, श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी अभिनिवेश नहीं रहनेके कारण दूसरोंकी निन्दा आदिसे शून्य निर्मल हृदयवाला है, ऐसे भजनविज्ञ अर्थात् मानससेवाके द्वारा अष्टकालीय लीला-स्मरण भजन परिपाटीमें अभिज्ञ महाभागवतको स्वजातीय अंतःकरणवाले सुस्निग्धजनोंमें सर्वोत्तम संग जानकर प्रणिपात, परिप्रश्न और प्रीतिपूर्वक सेवा द्वारा उनका आदर करना चाहिए।।३७।।

अकैतवे कृष्णनाम यार मुखे शुन। मनेते आदर तारे कर पुनः पुनः।।
भक्ति सम्प्रदाय लभि येइ कृष्ण भजे। आदर करह पड़ि तार पदरजे।।
स्वीय पर बुद्धिशून्य अनन्यभजन। याँहार, ताँहार सेवा कर अनुक्षण।।

भजनरहस्यवृत्ति—महाभागवत सर्वत्र ही कृष्ण-सम्बन्ध दर्शन करनेके कारण समदर्शी होते हैं। वे मध्यमाधिकारीकी भाँति कृष्ण-भजन परायण और कनिष्ठाधिकारीकी भाँति श्रीनाम परायण होते हैं। मध्यमाधिकारी श्रीकृष्णके प्रति प्रेम, त्रिविध भक्तोंके प्रति शुश्रूषा, प्रणाम और मानसिक आदर विशिष्ट; बद्ध जीवोंको कृष्णोन्मुख करनेके लिए सदा प्रयत्नशील और कृष्णद्वेषियोंके प्रति उपेक्षा परायण होते हैं। ये उत्तमाधिकारी महाभागवतकी भाँति सर्वत्र समदर्शी नहीं होते। यदि वे कपटता करके महाभागवत बनकर उनका अनुकरण करें, तो वे शीघ्र पतित हो पड़ेंगे। कनिष्ठाधिकारी श्रीकृष्णनामको परम कल्याणकारी समझकर श्रीकृष्णनामका आश्रय ग्रहण करते तो हैं; परन्तु मध्यमाधिकारीका आसन ऊँचा है और वही भविष्यमें उनका प्राप्य अधिकार है—इस विषयकी उन्हें उपलब्धि नहीं होती। कनिष्ठ अधिकारी कभी-कभी अपनेमें गुरु होनेका अभिमान कर अधःपतित हो पड़ते हैं। अतः सावधानीपूर्वक उन्हें अपनेसे उत्तम वैष्णवोंको यथायोग्य सम्मान देते हुए श्रीनामका आश्रय लेना चाहिए।

युक्तवैराग्य सहित जीवन निर्वाह करते हुए नाम करो; यथा भक्तिरसामृतसिंधु पूर्व विभाग (२.२५५)—

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते।।३८।।

—कृष्णसे इतर विषयोंमें अनासक्त एवं कृष्ण-सम्बन्धी विषयोंसे निरन्तर सम्बन्ध रखकर सेवानुकूल विषयोंको ग्रहण करना ही युक्त वैराग्य है।।३८।।

यथायोग्य विषय भोग अनासक्त हइया। सुयुक्त वैराग्य भक्ति सम्बन्ध करिया।।

यथा श्रीमद्भागवत (७.११.३२)—

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत्।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्।।३९।।

—जो स्वाभाविक वृत्तिका आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे-धीरे उन स्वाभाविक कर्मोंसे विरक्त होकर गुणातीत हो जाता है।।३९।।

स्वभाव विहित वृत्ति करिया आश्रय। निष्पाप जीवने कर कृष्णनामाश्रय।।

यथा श्रीमद्भागवत (११.७.३९)—

प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः।।४०।।

—मैंने शरीरकी प्राणवायुसे यह शिक्षा ग्रहण की है, कि आहार उतनी ही मात्रामें ग्रहण करना चाहिए जिससे सन्तुष्टि हो जाय। साधकोंको भी केवल जीवन निर्वाहोपयोगी आहार करना चाहिए। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिए विषयोंका उपभोग मत करो, जिससे बुद्धि विकृत न हो जाय, कहीं मन चंचल न हो जाये और वाणी कृष्णसे इतर बातोंमें व्यस्त न हो जाये।।४०।।

अप्रजल्पे कर प्राणवृत्ति अङ्गीकार। इन्द्रियेर प्रियवृत्ति ना कर स्वीकार।।
वागिन्द्रिय मनोज्ञान याहे स्वास्थ्य पाय। एरूप आहारे युक्त वैराग्य ना याय।।

संगके विषयमें विशेष सावधान रहना चाहिए यथा हरिभक्ति सुधोदय (८.५१)—

यस्य यत्सङ्गतिः पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्गुणः।
स्वकुलर्द्ध्यै ततो धीमान् स्वयूथान्येव संश्रयेत्।।४१।।

—जिस व्यक्तिका जैसा संग होता है, उसमें भी ठीक वैसा ही गुण पैदा हो जाता है, जैसे मणिका जिस वस्तुसे स्पर्श होता है, उसी वस्तु जैसा रंग मणिका भी दीखने लगता है। इसलिए शुद्ध साधुपुरुषोंके संगसे शुद्ध साधु हुआ जा सकता है।।४१।।

स्वयूथेर मङ्गल ओ अन्ये राखि दूर। यथा सङ्ग यथा फल पाइबे प्रचुर।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधुसंग समस्त कल्याणोंका मूल है। शास्त्रोंमें जो 'निःसंग' होनेका उपदेश दिया गया है, वहाँ 'निःसंग' शब्दका तात्पर्य साधुसंग है।

यत्नपूर्वक महाजनों द्वारा निर्देशित पथपर चलना चाहिए; यथा स्कंदपुराण—

स मृग्यः श्रेयसां हेतुः पन्थाः सन्तापवर्जितः।
अनवाप्तश्रमं पूर्वे येन संतः प्रतस्थिरे।।

—प्राचीन महाजन साधु जिस पथपर अनायास चले हैं, उनका अनुसरण करनेपर ही हमारा चरम मंगल एवं क्लेशोंसे मुक्ति मिल सकती है।

श्रौत पंथा ही भक्ति पथ है; यथा ब्रह्मयामले—

श्रुतिस्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरूत्पातायैव कल्पते।।४२।।

—शुद्ध भक्तिका ऐकान्तिक भाव अर्थात् अनन्य भाव पूर्व-पूर्व महाजन पथका अवलम्बन करनेसे ही प्राप्त होता है। पूर्व महाजन पथको छोड़कर अन्य पथकी सृष्टि करनेसे ऐकान्तिक भाव प्राप्त नहीं होता। इसीलिए दत्तात्रेय, बुद्ध आदि अर्वाचीन प्रचारकगण शुद्धभक्तिको समझ न सकनेके कारण उसके कुछ-कुछ भावाभासको ग्रहणकर किसीने मायावाद मिश्र, किसीने नास्तिकता मिश्र एक-एक क्षुद्र पंथका प्रदर्शन कर उसीमें ऐकान्तिकी हरिभक्तिका आरोप किया है, परन्तु वास्तवमें उन लोगों द्वारा प्रवर्तित पंथ हरिभक्ति नहीं है—उत्पात मात्र है।।४२।।

भजनरहस्यवृत्ति—रागमार्गीय भजनमें श्रुति, स्मृति, पुराण पञ्चरात्रादि विधियोंकी अपेक्षा नहीं रहती। वहाँ केवल ब्रजानुगमनकी अपेक्षा होती है। परन्तु विधि मार्गके अधिकारी साधकोंको ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, व्यास और शुक आदि महाजनों द्वारा निर्दिष्ट एकमात्र भक्ति पथका अवलम्बन करना आवश्यक है। अतएव वैध भक्तोंके लिये साधुमार्ग अनुसरणके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। जो लोग कुछ-कुछ भजन तो करते हैं, किन्तु अनर्थ-नाशके लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं करते, वे नाम प्रभुकी कृपाके बिना लाखों प्रयत्न करनेपर भी अनर्थ उसे कदापि नहीं छोड़ते हैं। किन्तु नाम प्रभुके श्रीचरणोंमें निष्कपट होकर क्रन्दन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें उसके सारे अनर्थ दूर हो जाते हैं। इस प्रकार अनर्थोंको छोड़कर श्रवण-कीर्तन करते हुए ऐकान्तिक रूपसे श्रीनामका आश्रय ग्रहण करो।

पूर्व महाजन पथे चले अनायासे। नवपथे उत्पात आसिया जीवे नाशे।।
अनर्थ-नाशेर यत्न कभु नाहि यार। नामकृपा नाहि पाय दुर्दैव ताहार।।
नाम कृपा बिना कोटि कोटि यत्न करे। ताहाते अनर्थ कभु नाहि छाड़े तारे।।

निष्कपटे यत्ने कांदे नामेर चरणे। दूर हय अनर्थ ताँहार अल्प दिने।।
अनर्थ छाड़िया कर श्रवण कीर्त्तन। एकान्तभावेते लओ नामेर शरण।।

एकान्त भजनका यत्न; यथा हरि-भक्ति-विलास—

एवमेकान्तिनां प्रायः कीर्त्तनं स्मरणं प्रभोः।
कुर्वतां परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्न रोचते।।
भावेन केनचित् प्रेष्ठश्रीमूर्त्तेरंघ्रिसेवने।
स्यादिच्छैषां स्वमन्त्रेण स्वरसेनैव तद्विधिः।।
विहितेष्वेव नित्येषु प्रवर्त्तन्ते स्वयं हि ते।
सर्वत्यागेऽप्यहेयायाः सर्वानर्थभुवश्च ते।।
कुर्युः प्रतिष्ठाविष्ठायाः यत्नमस्पर्शने वरम्।
प्रभाते चार्धरात्रे च मध्यान्हे दिवसक्षये।
कीर्त्तयन्ति हरिं ये वै न तेषामन्यसाधनम्।।४३।।

—इस प्रकार यदि ऐकान्तिक भक्त परम प्रीतिके साथ प्राय अपने भावोंके अनुसार प्रभु श्रीविष्णुका कीर्त्तन और स्मरण करता है, तो उसकी अन्य किसी भी कार्यमें रुचि नहीं होगी। वह जिस किसी भी भावसे प्रेष्ठ श्रीमूर्तिकी चरणसेवा अभिलाषमें विभावित हो स्वस्वमन्त्र, स्वस्वरसके द्वारा अर्चन करता है, वही सेवा बादमें नित्य सेवाके रूपमें परिणत हो जाती है।।४३।।

भजनरहस्यवृत्ति—सर्वत्याग करनेपर भी सब कुछका त्याग नहीं होता है। प्रतिष्ठारूपी विष्ठाका परित्याग करना परम कर्त्तव्य है जो समस्त अनर्थोंका मूल है। इस प्रतिष्ठाका स्पर्श तो क्या दूरसे दर्शन भी मत करो।

जो प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या एवं मध्य रात्रिमें श्रीहरिका कीर्त्तन करता है, उसके लिए किसी अन्य साधन करनेकी आवश्यकता नहीं।

एकान्त भक्तेर मात्र कीर्त्तन-स्मरण। अन्य पर्वे रुचि नाहि हय प्रवर्तन।।
भावेर सहित हय श्रीकृष्ण सेवन। स्वारसिकी भाव क्रमे हय उद्दीपन।।
एकान्त भक्तेर क्रिया मुद्रा रागोदित। तथापि से सव नहे विधि-विपरीत।।
सर्वत्याग करिलेओ छाड़ा सुकठिन। प्रतिष्ठाशा त्यागे यत्न पाइवे प्रवीण।।
प्रभाते गभीर रात्रे मध्याह्ने सन्ध्याय। अनर्थ छाड़िया लह नामेर आश्रय।।
एइरूपे कीर्त्तन स्मरण येइ करे। कृष्ण कृपा हय शीघ्र, अनायासे तरे।।
श्रद्धा करि साधुसंगे कृष्ण नाम लय। अनर्थ सकल याय निष्ठा उपजय।।
प्रातःकाले नित्य लीला करिवे चिन्तन। चिन्तिते चिन्तिते भावेर हइबे साधन।।

(प्रातः लीला यथा गोविन्दलीलामृत—)

राधां स्नातविभूषितां व्रजपयाहूतां सखीभिः
प ॅ ग ` –
तद्गेहे विहितान्नपाकरचनां कृष्णावशेषाशनाम्।
कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनुसदनं निर्व्यूढ़ गोदोहनं
सुस्नातं कृतभोजनं सहचरैस्ताञ्चाथ तञ्चाश्रये।।४४।।

—कुञ्ज भंग लीलाके पश्चात् श्रीराधा–श्यामसुन्दर अपने–अपने भवनोंको पधारे तथा अपनी–अपनी शय्यापर लेट गये। जावटमें श्रीकिशोरीजीकी बड़ी ही अनिर्वचनीय स्थिति है। वे अपने प्रियतमके विरहमें जर्जरित हो रही हैं, श्रीरूप तथा रति मञ्जरी सेवामें संलग्न रहकर उन्हें प्रोत्साहन देकर मानो पुनः प्राणोंको संचरित करती हैं। श्रीकिशोरीजीके कक्षमें कभी जटिला, कभी मुखरा, कभी पौर्णमासी आती हैं। इसी समय श्यामला भी आती हैं। दोनोंमें हास–परिहास होता है, इस प्रकार लीला नवनवायमान रूपमें वर्द्धित होती रहती है। श्रीरूपमञ्जरी तथा रतिमञ्जरी तथा अन्य मञ्जरीगण श्रीराधाजीको अंगमार्जन, आभूषण धारण आदि कराते हुए अलंकृत करती हैं; साथ–ही–साथ श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण भी कराती हैं।

राधा स्नात विभूषित, श्रीयशोदा समाहुत, सखीसङ्गे तद्गृहे गमन।
तथा पाक विरचन, श्रीकृष्णावशेषाशन, मध्ये–मध्ये दुँहार मिलन।।
कृष्ण निद्रा परिहरि, गोष्ठे गोदोहन करि, स्नानाशन सहचर सङ्गे।
एइ लीला चिन्ता कर, नामप्रेमे गरगर, प्राते भक्तजन सङ्गे रंगे।।
एइ लीला चिन्त आर कर संकीर्त्तन। अचिरे पाइवे तुमि भाव उद्दीपन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकिशोरीजी अपनी सखियोंके साथ नन्दभवनके लिए प्रस्थान करती हैं। मार्गमें उनका श्रीश्यामसुन्दरसे मिलन होता है, अनेक रसमयी लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। इन लीलाओंका हमारे गोस्वामी वर्गने अपने–अपने ग्रन्थोंमें प्रकाश किया है। नन्दभवनमें पहुँचकर श्रीकिशोरीजी शत–शत चूल्होंके बीच रन्धन कार्य प्रारम्भ कर अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन तैयार करती हैं। श्रीश्यामसुन्दर अपने भवनमें सो रहे हैं, मैया यशोदा जगाती हैं, लालाके अङ्गोंमें नखक्षत चिह्न देखकर दुःखित होकर कहती हैं, 'नीलकमलदलसे भी कोमल मेरे लालाके अङ्गोंको बालकोंने मल्लयुद्धमें कैसे क्षत–विक्षत कर दिया है? कितना धातुराग इसके अङ्गोंमें लग रहा

है। हाय-हाय क्या करूँ? मुझे इसका उपाय कुछ समझमें नहीं आता।' कुन्दलताजी परिहास करती हुई कहती हैं "आपका लाला रात्रिमें 'रास' करता है।" यशोदा मैया 'रास' शब्दसे अपरिचित हैं। वात्सल्य प्रकट करते श्यामसुन्दर शय्यासे उठ बैठते हैं तथा गोदोहनके लिए जाते हैं। वहाँसे लौटकर स्नानकर भोजन करते हैं तथा गोचारणके लिए गमन करते हैं। श्रीकिशोरीजी भी अपने प्रियतमका थोड़ासा उच्छिष्ट प्रसाद संकुचित भावसे ग्रहणकर सखियोंके साथ अपने गृह जावटके लिए प्रत्यावर्तन करती हैं।

इन सबके मध्यमें न जाने कितनी लीलायें सम्पन्न होती हैं, जिनका प्रकाशन अति कठिन है। इस इंगित मात्रसे प्रेमी भक्त चिन्तन करते-करते भजन करते हैं तथा साधनावस्थामें ही इन लीलाओंका रसास्वादन करते हैं।

इति श्रीभजनरहस्ये प्रातःकालीन भजनं वा द्वितीययाम भजनप्रकार वर्णनम्।।

।।इति श्रीभजनरहस्य द्वितीययाम साधनम्।।

तृतीययाम–साधन

पूर्वाह्नकालीय भजन—निष्ठा भजन

(छह दण्डसे दो प्रहरपर्यन्त)

नाम कीर्त्तनके अधिकारीका निर्णय—नाम साधन प्रणाली यथा शिक्षाष्टक (३) श्लोक—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः।।१।।

—सभीके पद-दलित अत्यन्त तुच्छ तृणसे भी अपनेको दीनहीन, नीच समझकर, वृक्षसे भी अधिक सहनशील बनकर, स्वयं अमानी होकर तथा दूसरोंको यथायोग्य मान देनेवाला बनकर सदासर्वदा-निरन्तर श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन करना चाहिए।।३।।

ये रूपे लइले नाम प्रेम उपजय। तार लक्षण-श्लोक सुन स्वरूप रामराय।।
उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम। दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्ष सम।।
वृक्ष येन काटिलेओ किछु ना बोलय। शुकाइया मैले कारे पानी ना मागय।।
जेई जे मागये, तारे देय आपन धन। धर्म-वृष्टि सहे, आनेरे करये रक्षण।।
उत्तम हइञा वैष्णव हबे निरभिमान। जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।

भजनरहस्यवृत्ति—निरपराध होकर श्रीकृष्णनामका संकीर्त्तन करने वाले साधकोंमें चार प्रकारके लक्षण देखे जाते हैं—विषयोंके प्रति विरक्ति जनित स्वाभाविक दीनता, मत्सरता रहित निर्मल दया, जड़ीय मिथ्याभिमानसे रहित, हृदयकी निर्मलता और सबके प्रति यथायोग्य सम्मानकी भावना। 'तरोरपि सहिष्णुना' का तात्पर्य यह है कि वृक्ष इतने सहनशील होते हैं कि अपनेको काटनेवालेको भी अपनी सुशीतल छाया और सुमधुर फल देकर उपकार करना नहीं भूलते। कृष्णभक्त तो उससे भी अधिक दयालु होनेके कारण शत्रु-मित्र सबका उपकार करते हैं। यही निर्मत्सरतायुक्त दया है जो भक्ति राज्यमें उत्तम होकर भी निरभिमान रहे और जीव मात्रमें कृष्णका अधिष्ठान

जानकर उन्हें यथायोग्य सम्मान दे, वही श्रीकृष्णनाम कीर्त्तनका यथार्थ अधिकारी है और ऐसे श्रीकृष्णनामका कीर्त्तन करनेवालोंको ही श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है।

शरणागतिका रूप; यथा वैष्णवतन्त्र वाक्य—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य विवर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।२।।

—कृष्ण भक्तिके अनुकूल विषयोंको ग्रहण करूँगा तथा प्रतिकूलका वर्जन करूँगा, भगवान मेरी रक्षा करते हैं—ऐसा विश्वास, वे हमारा पालन पोषण करते हैं—निर्भरता, आत्मसर्मपण और दैन्य—ये छह प्रकारकी शरणागति है।।२।।

भक्ति अनुकूल याहा ताहाइ स्वीकार। भक्ति प्रतिकुल सब करि परिहार।।
कृष्ण वइ रक्षा कर्त्ता आर केह नाहि। कृष्ण से पालन मोरे करिवेन भाई।।
आमि आमार यत किछु कृष्णे निवेदन। निष्कपट दैन्ये करि जीवन यापन।।

भजनरहस्यवृत्ति—शरणागति अर्थात् भगवानके समस्त प्रकारके विधानोंको मस्तकपर धारणकर अनुक्षण अपने प्रभुकी सेवामें संलग्न रहना, ऐकान्तिक भक्तोंकी शरणागतिका यही लक्षण है। ऐसे भक्त भगवत् प्रदत्त दण्डादिको भी कृष्ण-कृपारूपमें ग्रहण करते हैं। भक्त केवल यही जानते हैं कि समस्त कार्य कृष्णकी इच्छासे होते हैं; अतएव कृष्णकी इच्छामें अपनी इच्छा सम्मिलित कर शान्त रहते हैं। एक भक्तका विचार रहता है कि कृष्णने हमें जगतका क्लेश सहनेको नहीं भेजा, हमने अपनी स्वतंत्रताका अपव्यवहार कर स्वयं ही जगतके क्लेशोंका वरण किया है। कर्तृत्व अभिमान त्यागकर गुरु-वैष्णवोंकी शरणमें जाना ही शरणागतिका लक्षण है। इसमें भी श्रीकृष्णको गोप्तृत्वे वरण करना शरणागतिका स्वरूप लक्षण है। अवशिष्ट पाँच तटस्थ लक्षण हैं।

ऐसा दृढ़ विश्वास कि श्रीकृष्ण सदासर्वदा मेरा पालन-पोषण करते हैं, यही 'गोप्तृत्वे वरणं' का तात्पर्य है। गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—'तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्'। वे भी कहते हैं, 'मेरे भक्तका कभी विनाश नहीं होता।'

तटस्थ लक्षणोंमें प्रतिकूलके वर्जन तथा अनुकूलका ग्रहणके सम्बन्धमें श्रील रूप गोस्वामी पादने स्वरचित उपदेशामृतमें दो (द्वितीय तथा तृतीय) श्लोकोंकी अवतारणा की है। इनकी विस्तृत व्याख्या द्वितीय याममें की

जा चुकी है।

सर्वप्रथम देहाभिमान परित्याग; यथा मुकुन्दमालामें ३७ वां श्लोक—

इदं शरीरं शतसन्धिजर्जरं पतत्यवश्यं परिणामपेशलम्।
किमौषधं पृच्छसि मूढ़ दुर्मते, निरामयं कृष्णरसायनं पिव।।३।।

—इस शत संधियोंसे जुड़े, पाञ्चभौतिक जर्जर शरीरका अवश्य ही पतन होगा। परिणामस्वरूप यह देह या तो भस्म होगी अथवा कृमिभोज बन कर विष्ठामें परिणत होगी। हे मूढ़ दुष्ट मन! ऐसे घृणित शरीरमें अर्वाचीन ममताको संजोये हुए हो। इस भवव्याधिरूपी रोगका निदान केवल श्रीकृष्णनाम रसायनरूपी महौषधि है, उसका तू निरन्तर पान कर, अर्थात् निरन्तर कृष्णनाम कर।।३।।

शत सन्धि-जर-जर, तव एइ कलेवर,
पतन हइवे एकदिन।
भस्म कृमि विष्ठा हवे, सकलेर घृण्य तबे,
इहाते ममता अर्वाचीन।।
ओरे मन, शुन मोर ए सत्य वचन।
ए रोगेर महौषधि, कृष्णनाम निरवधि,
निरामय कृष्ण-रसायन।।

भजनरहस्यवृत्ति—क्षणभंगुर अनित्य शरीरकी रक्षाके लिए यत्नवान न होकर, गोविन्द सेवाकी ही चेष्टा हो। इस नाशवान पाञ्चभौतिक शरीरको कितना भी सुरक्षित रखनेकी प्रचेष्टा की जाय, किन्तु उसका विनाश अवश्यम्भावी है। इसलिए कहते हैं, हे दुष्ट मन! तुम शरीरके लिए अष्टाङ्ग योग व्यायामादिका परित्यागकर केवल कृष्णनामामृतका पान करो। एकमात्र कृष्णनामामृत ही जन्म-मृत्युसे तुम्हारा उद्धार करनेमें समर्थ है। नामकी कृपासे नित्य शाश्वत कृष्ण-धाम तथा चिद् सेवोपयोगी देह प्राप्त होगी तथा तुम नित्य सेवामें नियोजित हो जाओगे।

वृक्षकी भाँति सहिष्णुता तथा जीवमात्रपर दया; यथा श्रीमद्भागवत (३.९.१२) श्रीब्रह्माजीके वाक्य—

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-राराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूतदययाहसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा।।४।।

—हे भगवन्! आप समस्त प्राणियोंके हृदयमें परम हितकारी अंतरात्माके

रूपमें विराजमान हो। आप दयाशील होनेके कारण सबके प्रति प्रसन्न रहते हो, किन्तु अभक्तोंके लिए अलभ्य हो।।४।।

बहु उपचारार्पणे, पूजि कामी देव गणे, प्रसन्नता ना लभे तोमार।।
सर्वभूते दया करि, भजे अखिलात्मा हरि, तारे कृपा तोमार अपार।।

भजनरहस्यवृत्ति—ब्रह्माजी भगवच्चरणोंमें प्रार्थना कर रहे हैं—हे भगवन्! आप निखिल प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपमें अवस्थित हैं, सबके सुहृत है, अभक्तोंको अलभ्य होते हुए भी सर्वशील दयावान हैं। नाना प्रकारकी सांसारिक कामनाओंके लिए देवगण आपकी सकाम उपासना द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं। आप अपने दयाशील गुणके कारण उन्हें उनका मनोवाञ्छित फल देते हैं, क्योंकि आपका वचन है 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' किन्तु अपने भक्तोंपर आपकी विशेष कृपा रहती है। सर्वत्र आपकी दयाका प्रचार होनेपर भी अपने भक्तोंके प्रति आपकी भक्त वात्सल्यता विशेष रूपसे परिलक्षित होती है। यह आपका गुण-वैषम्य नहीं है। गीता (९.२९) वचनानुसार—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेस्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

भक्तोंको मान प्रदत्त धर्म माहात्म्य; यथा मुकुन्दमालामें (३५)—

श्रृण्वन् सतो भगवतो गुणकीर्त्तनानि, देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः।
नोत्पद्यते नयनयोर्विमलाम्बूमाला, धिक् तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य।।५।।

—गुरु-वैष्णवोंके मुखसे हरिके नाम, रूप, गुण, लीला सम्बन्धी कीर्त्तनोंको श्रवणकर जिसकी देह पुलकित नहीं होती, रोमाञ्चित नहीं होती, हृदय नहीं पिघलता, अश्रु नहीं आते, अहो! उस अधम पुरुषके जीवनको धिक्कार है।।५।।

साधु मुखे येइजन, कृष्णनाम गुण गण, शुनिया न हैल पुलकित।
नयने विमल जल, ना वहिल अर्नगल, से वा केन रहिल जीवित।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक भजन करते-करते अपने जीवनको धिक्कारते हैं "अहो! साधु मुखसे हरिकथा श्रवण करके भी मेरा कठोर चित्त द्रवीभूत नहीं होता, यह मेरे अपराधोंका फल है। जो एकबार कृष्ण नामकी महिमा सुनता है, उसका चित्त पिघल जाता है। परन्तु मेरे चित्तमें इस तत्त्वकी उपलब्धि नहीं हुई। मेरे जीवनको धिक्कार है।" वे इस प्रकार अनुताप करते हैं।

इस विषयमें एक कथा है—साधु समाजमें कोई एक व्यक्ति हरिकथा श्रवण करने आता था। समस्त श्रोता कथा श्रवणकर आनन्दमें आप्लावित हो रहे थे, किन्तु उस व्यक्तिके हृदयमें विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उसे बड़ी ग्लानि हुई। अगले दिन उस व्यक्तिने कथा श्रवणके समय अपनी आंखोंमें पिसी हुई लाल मिर्च लगा लीं। फिर तो उसके नेत्रोंसे आसुओंकी झड़ी लग गयी। कथावाचक वैष्णव संत यह देख रहे थे। कथाके अन्तमें उन्होंने उस व्यक्तिको बुलाकर साधुवाद दिया और कहा, 'जो इन्द्रयाँ श्रीकृष्ण भजनमें नहीं लगतीं, उन्हें इसी प्रकार दण्ड देना चाहिए। यह शास्त्र वचन है, किन्तु आपने आज इसे प्रत्यक्ष कर दिया।' श्रीमद्भागवतमें कहा गया है, 'उन इन्द्रियोंको धारण करना व्यर्थ है जो भगवद् सेवामें न लगें।' ऐसा सुनकर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

कृष्णमहिमाज्ञानं तत्रैव (४३)—

कृष्णो रक्षति नो जगत्रयगुरुः कृष्णो हि विश्वम्भरः
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णे लयं गच्छति।
कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं कृष्णस्य दासा वयं
कृष्णेनाखिलसदगतिर्वितरिता कृष्णाय तस्मै नमः।।६।।

—त्रिजगतके गुरु श्रीकृष्ण ही हमारी रक्षा करते हैं, विश्वम्भर कृष्ण ही विश्वका सब प्रकारसे भरणपोषण करते हैं। यह जगत् कृष्णसे अर्थात् उनकी बहिरंगा शक्तिके द्वारा प्रकाशित होता है। पुनः समयानुसार (प्रलयके समय) समस्त जगत् उन्हींमें लय हो जाता है। कृष्ण समस्त विश्वमें व्याप्त हैं अथवा समस्त विश्व कृष्णमें स्थित है। हम सभी कृष्णके नित्यदास हैं। समस्त प्रकारकी सम्पत्ति श्रीकृष्णसे ही प्रकाशित होती है। ऐसे श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ।।६।।

जगद्गुरु कृष्ण सबे करेन रक्षण। कृष्ण विश्वम्भर विश्व करेन पालन।।
कृष्ण हैते एइ विश्व हइयाछे उदय। अवशेषे एइ विश्व कृष्णे हय लय।।
कृष्णे विश्व अवस्थित जीव कृष्णदास। सद्गति प्रदाता कृष्णे करह विश्वास।।
जनम लयेछ कृष्णभक्ति करिबारे। कृष्णभक्ति विना सब मिथ्या ए संसारे।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक नाम करते-करते पुनः पुनः श्रीकृष्ण नामकी महिमा गान करते हैं। उनके युगल-चरणोंमें प्रणाम एवं प्रार्थना करते हैं, हे कृष्ण! मुझे दर्शन देकर मेरी प्राण-रक्षा करो। आप जगतका भरण-पोषणकर

विश्वम्भर नाम सार्थक करते हैं, मैं भी तो जगतमें ही हूँ, मेरी भी आप रक्षा कीजिए। आपसे जगत्का सृजन, पालन एवं लय होता है। आपके लोम-कूपमें (रोम-रोममें) करोड़ों जगत् अवस्थित हैं, अतएव जगतमें अवस्थित मैं भी आपका तुच्छ अनुचर हूँ। मुझपर कृपा करें। प्रभो! आपने अहैतुकी कृपा करके जीवोंको मनुष्य देहमें जन्म दिया है, वह केवल भगवद्भजनके लिए ही दिया है; क्योंकि भगवद्भजनके बिना यह सारा जगत् व्यर्थ है। यह भक्ति भी आपकी कृपाके बिना नहीं मिलती, आप कृपा करें।

और भी—

जगतेर पिता कृष्ण जे ना भजे बाप। पितृद्रोही पातकीर जन्मे-जन्मे ताप।।
जे माने अथवा न माने। सब जीव कृष्णेर दास।।

श्रीकृष्ण जगतके पिता हैं। जो लोग इन नित्य पिताका भजन नहीं करते हैं, वे माता-पिता, पुत्र, पत्नी आदिके प्रति अपने धर्मका पालन करनेपर भी मूलरूपमें पितृद्रोही होनेके कारण जन्मजन्मान्तरोंमें मायाके त्रिविध-तापोंसे जलते रहते हैं।

हे कृष्ण! आपके अभय चरणकमलोंको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्मनी। कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय।। दश अश्वमेध यज्ञ करनेपर ही जीव पुनः जगतमें आता है किन्तु श्रीकृष्णको एकबार प्रणाम करनेवाला फिर जगतमें नहीं आता।

कृष्ण भजनमें व्याकुलता; यथा तत्रैव (३३)—

कृष्ण! त्वदीय पदपञ्कजपञ्जरान्त मद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ भजनं कुतस्ते।।७।।

—हे कृष्ण! मेरी प्रार्थना है कि मेरा मानस-राजहंस आपके पदपंकजरूपी पिंजरेमें आबद्ध हो रससागरमें निवास करे। प्राण निकलते समय कण्ठ कफ, वात, पित्त द्वारा अवरुद्ध हो जायेगा, उस समय आपके नामका स्मरण किस प्रकार होगा?।।७।।

वृथा दिन याय मोर मजिया संसारे। ए मानसराजहंस भजुक तोमारे।।
अद्यइ तोमार पादपञ्कजपञ्जरे। बद्ध हये थाकुक हंस रसेर सागरे।।
ए प्राण प्रयाणकाले कफ वात पित्त। करिवेक कण्ठरोध-अप्रफुल्ल चित्त।।
तखन जिह्वाय ना स्फुरिबे तव नाम। समय छाड़िले किसे हबे सिद्ध काम।।

भजनरहस्यवृत्ति—नाम भजनशील व्यक्ति जितना अधिक हरिनाम करते

हैं, उतनी ही पश्चात्ताप आर्त्ति हृदयमें वृद्धि होती है। दिवारात्रि हरिनाम करके भी वे सोचते हैं, 'अहो! संसारके नाना प्रकार विषयोंकी चिन्ता करते-करते मेरा दिन वृथा गया। नाम प्रभुके चरणोंमें मेरा मन नहीं लग रहा है। हे प्रभो! मेरा किस प्रकार उद्धार होगा? प्रभो! आपके चरणकमलोंमें मेरा निवेदन है कि, मेरा मनरूपी राजहंस आपके चरणकमलरूपी पिञ्जरेमें आबद्ध होकर सुधाका निरन्तर पान करता रहे। मृत्युके समय कफ, वात, पित्तादि मेरे कण्ठको रुद्ध करेंगे, उस समय मैं आपके नामामृतका पान कैसे करूँगा? अन्तिम समय आपका नाम जिह्वापर यदि स्फुरित नहीं होगा तो मुझे सिद्धि लाभ किस प्रकार होगी? हे प्रभो! मैं आपके चरणकमलोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि प्रयाणकालके समय मैं नाम उच्चारण करते-करते ही शरीरको त्यागूँ।

अपना दैन्य; यथा यामुनस्तोत्रके निम्न छय श्लोक—

(क) न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये।।८।।

—न तो मैं धर्मनिष्ठ हूँ तथा न ही आत्मज्ञाता, आपके चरणकमलोंकी भक्ति भी मेरे हृदयमें नहीं है। हे शरण्य! मैं अन्यगतिहीन हूँ, आप ही मेरी एकमात्र गति हैं। मैं अकिञ्चन होकर आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप मुझ जैसे अधम पतितका उद्धार करनेके लिए ही पतित पावन बने हो। मैं आपका नित्यदास हूँ तथा आप मेरे नित्य स्वामी हैं।।८।।

हरि हे!

धर्म निष्ठा नाहि मोर, आत्मबोध वा सुन्दर, भक्ति नाइ तोमार चरणे।
अतएव अकिञ्चन, गति हीन दुष्टजन, रत सदा आपन-वञ्चने।।
पतितपावन तुमि, पतित अधम आमि, तुमि मोर एकमात्र गति।
तव पादमुले पैनु, तोमार शरण लैनु, आमि दास तुमि नित्यपति।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक अत्यन्त दीन-हीन भावसे भगवानके निकट प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! मुझमें धर्म निष्ठा, भक्ति तथा ज्ञान नहीं; मैं कैसे आपके चरणकमलोंका स्मरण करूँ। आप पतित पावन हैं तथा दीन-हीन जनोंको भी अपने चरणोंमें स्थान देते हैं। इसलिए मुझ जैसे पतितका आप उद्धार करें, तभी आपका पतितपावन नाम सार्थक होगा।

(ख) न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके सहस्त्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे।।९।।

—हे प्रभु! हे हरि! ऐसा कोई भी दुष्ट कर्म नहीं, जो मैंने न किये हों, अर्थात् सभी दुष्ट नीच कर्म मैंने सहस्त्र-सहस्त्र बार किये हैं। इन कर्मोंको मैं भोग लूँगा। हे हरि! मैं देख रहा हूँ कि आपके बिना मेरी अन्य कोई गति नहीं है, आपके सम्मुख रो-रोकर प्रार्थना कर रहा हूँ। यदि आपकी इच्छा है तो मुझे दण्ड दो, इस अकिञ्चन देहके आप ही दण्डधर स्वामी हो।।९।।

हेन दुष्ट कर्म नाइ, याहा आमि करि नाइ, सहस्त्र-सहस्त्र बार हरि।
सेइ सव कर्मफल, पेये अवसर बल, आमाय पिशिछे यन्त्रोपरि।।
गति नाहि देखि आर, कान्दि हरि अनिवार, तोमार अग्रेते एबे आमि।
जा तोमार हय मने, दण्ड देह अकिञ्चने, तुमि मोर दण्डधर स्वामी।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! मैंने जन्मजन्मान्तरमें अनेकों पापकर्म तथा घृणित कार्य किये हैं। उन सबका आपके निकट वर्णन करना सम्भवपर नहीं। किन्तु आप सर्वज्ञ हैं, आप सभी जानते हैं। अतः मैं आपके सम्मुख तृण-गुच्छ दाँतोंमें धारणकर दीनतापूर्वक निवेदन कर रहा हूँ, कि आप चाहें तो दण्ड देकर भी मेरा उद्धार कीजिए। हे प्रभो! समस्त अपराधोंके कारण मैं माया द्वारा गन्नेकी भाँति पेला जा रहा हूँ। इस अकिञ्चनजनको दण्ड देकर शोधन करें—यही मेरी आपके निकट क्रन्दनयुक्त विज्ञप्ति है। आपका एक नाम मुकुन्द है अर्थात् आप जीवोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। इसलिए मुझे भी इन पापोंसे मुक्त कर, अपने चरणकमलोंकी सेवा प्रदान करें।

जगाई मधाई हइते मुइ से पापिष्ट। पुरिषेर कीट हइते मुई से लघिष्ट।।
एमन निर्घृण्ण मोरे केबा कृपा करे। एक नित्यानन्द बिना जगत मझारे।।

(ग) निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्तश्चिराय मे कुलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः।।१०।।

—हे अनन्त! मैं इस ओर-छोर रहित भवसमुद्रमें अनन्त कालसे डूब रहा हूँ। आपके पादपद्म प्राप्तिकी आशा ही इस भवसिन्धुका कूल है। इस संसारमें निमग्न मैं, रोते हुए कातर स्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप गुरुरूपमें आकर मेरा उद्धार कीजिए।।१०।।

निजकर्म दोषफले, पड़ि भवार्णव जले, हाबु डुबु खाइ कत काल।।

साँतारि साँतारि याइ, सिन्धु अन्त नाहि पाइ, भव सिन्धु अनन्त विशाल।।
निमग्न हइया यवे, डाकिनु कातर रवे, केह मोरे करह उद्धार।।
सेइ काले आइले तुमि, तव पदकूलभूमि, आशा वीज हइल आमार।।
तुमि हरि दयामय, पाइले मोरे सुनिश्चय, सर्वोत्तम भाजन दयार।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! अपने पूर्व-पूर्व कर्मके फल स्वरूप मैं इस भवसागरमें निमज्जित हो रहा हूँ, जिसमें नाना प्रकारकी कर्मरूपी उत्ताल तरंगें उठकर सुख-दुःख द्वारा मुझे उत्पीड़ित कर रही हैं। इस कर्म-मार्गका कोई आदि अन्त नहीं है और न ही मुझे इस विशाल भवसमुद्रमें तैरना आता है। नाना प्रकारके काम-क्रोधादिरूपी मगरमच्छ मेरे शरीरको खा रहे हैं। हे प्रभो! आप मेरा उद्धार कीजिए, एकमात्र आपका ही मुझे भरोसा है। अब मैं अपने बलका भरोसा परित्याग करके आपके चरणकमलोंका आश्रय ले रहा हूँ। मैंने महाजनोंसे श्रवण किया है कि जो जितना पतित होता है, आप उसपर उतनी ही कृपा करते हैं। जिस प्रकार आपने गजकी अपने चक्रद्वारा रक्षा की थी, मेरी भी इस भवसागररूपी ग्राहसे रक्षा कीजिए। प्रभो! सुना है, आप दयालुकी सीमा हैं। किन्तु यह भी जान लीजिए कि मैं भी पतिताधम हूँ। मेरे जैसा दयाका सर्वोत्तम पात्र जगतमें ढूढ़नेपर भी कहीं नहीं मिलेगा—ऐसा जानकर मुझपर कृपा करें।

(घ) भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः—प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः ।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्।।११।।

—आपकी निरन्तर सेवाद्वारा अन्य मनोरथ शमित हो जाते हैं तथा मन शान्त हो जाता है। मैं कब आपका नित्य किंकर कहलाऊँगा? आप जैसे समर्थ स्वामीको पाकर मैं आनन्दसे कब प्रफुल्लित होऊँगा?।।११।।

आमि बड़ दुष्टमति, ना देखिया अन्यगति, तव पदे लयेछि शरण।
जानियाछि एवे नाथ, तुमि प्रभु जगन्नाथ, आमि तव नित्य परिजन।।
सेई दिन कबे हबे, ऐकान्तिकभावे यबे, नित्यदास्यभाव पाव आमि।
मनोरथान्तर यत निःशेष हइबे स्वतः, सेवाय तुषिब ओहे स्वामि।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक नामादिका कीर्त्तन करते हुए प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! आप तो जगतके नाथ हैं, मैं आपका ही जन हूँ, किन्तु सेवा विमुखतावश आपसे दूर हो गया हूँ। अब आपकी त्रिताप मायासे दग्धीभूत हो रहा हूँ। मेरे जैसे दुर्गति प्राप्त जनको अपने चरणकमल प्रदान करो। प्रभो! वह सुदिन कब उदित होगा जब मेरी मायिक वासना हृदयसे दूर

होगी और मैं ऐकान्तिकरूपसे आपका दासत्व प्राप्त करूँगा। अनन्तर आपकी मनोऽभीष्ट सेवाद्वारा आपको प्रसन्न करूँगा।

(ङ) अपराध सहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात् कुरु।।१२।।

—हे हरि! मैं सहस्रों अपराधोंका अपराधी हूँ तथा दण्डनीय हूँ। मैं इस भीषण भवसमुद्रमें डूब रहा हूँ। मैं पथविहीन आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करता हूँ, कृपया मुझे अपनाओ। आपकी प्रतिज्ञा है कि अपने शरणागतका आप अवश्य उद्धार करते हैं, अतः मेरा भी उद्धार कीजिये।।१२।।

आमि अपराधी जन, सदा दण्ड्य दुर्लक्षण, सहस्त्र-सहस्त्र दोषे दोषी।
भीम भवार्णवोदरे, पतित विषमघोरे, गतिहीन गति-अभिलाषी।।
हरि तव पदद्वये, शरण लइनु भये, कृपा करि कर आत्मसात्।
तोमार प्रतिज्ञा एइ, शरण लइबे येइ, तुमि तारे उद्धारिबे नाथ।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! अपने सहस्र-सहस्र अपराधोंके कारण मैं दण्ड भोग रहा हूँ। संसारके भीषण उत्ताल तरंगायित समुद्रमें पतित होकर मैं गतिहीन हो रहा हूँ। भवसमुद्रकी तरंगें कभी मुझे डुबा देती हैं, तो कभी उठाकर ऊपर पटक देती हैं। इस स्थितिमें भवसमुद्रसे उद्धार करनेवाले मेरे एकमात्र बन्धु आप ही हैं। मुझपर कृपाकर आत्मसात् कीजिए। मैंने साधुओंके मुखसे श्रवण किया है कि अपने शरणागतजनका आप अवश्य ही उद्धार करते हैं।

यह आपकी प्रतिज्ञा है। अतएव हे प्रभो! यही आशा और विश्वास लेकर आपके चरणोंमें उपस्थित हो रहा हूँ कि आप मेरा अवश्य उद्धार करेंगे।

(च) न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः।।१३।।

—हे हरि! आपके चरणकमलोंमें मैं एक निवेदन कर रहा हूँ, उसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। आप यदि मुझपर दया करें या न करें, किन्तु परमार्थ परिपूर्ण प्रार्थना है कि आपको मुझ जैसा दयाका पात्र अन्यत्र इस संसारमें अन्य कोई नहीं मिलेगा। आपका नाम दयामय ही है। इसलिए

आप मुझे अपनी कृपा कटाक्षका भाजन बना लें, अन्यथा आपका नाम बदनाम हो जायेगा।।१३।।

अग्रे एक निवेदन, करि मधुनिसूदन, शुन कृपा करिया आमाय।
निरर्थक कथा नय, निगूढ़ार्थमय हय, हृदय हइते वाहिराय।।
अति अपकृष्ट आमि, परम दयालु तुमि, मोरे दया तव अधिकार।
ये यत पतित हय, तव दया तत ताय, ताते आमि सुपात्र दयार।।
मोरे यदि उपेक्षिवे, दयापात्र कोथा पावे, दयामय नामटि तोमार।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे दयामय मधुसूदन! आपके पादपद्मोंमें मेरी एक ही प्रार्थना है, उसे मैं अन्तर हृदयसे आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी प्रार्थना निरर्थक समझकर मेरी उपेक्षा मत करना, क्योंकि मेरे जैसा अधम जन आपको संसारमें कहीं नहीं मिलेगा। यदि आपने मेरी उपेक्षा की तो अपनी दयाका पात्र किसे बनाएँगे? मुझपर ही दयाकर अपना दयावान् नाम सार्थक करें।

अमानित्व यथा यामुनस्तोत्रमें—

अमर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूया—प्रसवभूः कृतघ्नो दुर्मानी स्मरपरवशो रक्षणपरः।
नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधेरपारादुत्तीर्ण स्तवपरिचरेयं चरणयोः।।१४।।

—मैं अमर्यादित, क्षुद्र, चंचलमति, असूयाग्रस्त, कृतघ्न, पराश्रित, नृशंस तथा पापिष्ठ हूँ। इस स्थितिमें कैसे मैं इस दुर्लंघ्य भवसमुद्रको पारकर आपके चरणारविन्दकी परिचर्याको प्राप्त करूँ?।।१४।।

आमित चञ्चल मति, अमर्याद क्षुद्र अति, असूया प्रसव सदा मोर।
पापिष्ठ कृतघ्न मानी, नृशंस वञ्चने ज्ञानी, कामवशे थाकि सदा घोर।।
ए हेन दुर्जन हये, ए दुःखजलधि वये, चलितेछि संसारसागरे।
केमने ए भवाम्बुधि, पार हये निरवधि, तव पद सेवा मिले मोरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! मैं मर्यादारहित क्षुद्र जीव, चंचल मति, असूया-ग्रस्त, कृतघ्न एवं परवश होकर इस संसारमें भ्रमण कर रहा हूँ। मेरे जैसे अधमका संसार-कूपसे उद्धार कीजिए। आपकी कृपाके बिना इस दुर्लंघ्य समुद्रसे उद्धार पानेका अन्य कोई उपाय नहीं। आपके चरणकमलोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। आप मेरा उद्धार कर अपने चरणकमलोंकी सेवामें नियुक्त करें।

भक्त मानदत्व, यथा तत्रैव—

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे।
इतरावसथेषु मास्मभूदपि जन्म चतुर्मुखात्मना।।१५।।

—हे भगवन्! पूर्वकर्मानुसार अथवा आपकी इच्छासे यदि मेरा पुनः जन्म हो, तो वह जन्म आपके भक्तगृहमें हो, चाहे वह कीट योनिमें ही क्यों न हो। भगवद्भक्ति विहीन गृहमें मुझे ऐश्वर्यपूर्ण ब्रह्माका पद भी नहीं चाहिए। हे पुरुषोत्तम! मेरी आपसे यही करबद्ध प्रार्थना है।।१५।।

वेद-विधि अनुसारे, कर्म करि ए संसारे, जीव पुनः पुनः जन्म पाय।
पूर्वकृत कर्मफले, तोमार वा इच्छावले, जन्म यदि लभि पुनराय।।
तवे एक कथा मम, शुन हे पुरुषोत्तम, तव दास सङ्गिजन-घरे।
कीट जन्म यदि हय, ताहाते ओ दयामय, रहिब हे सन्तुष्ट अन्तरे।।
तव दास सङ्ग हीन, ये गृहस्थ अर्वाचीन, तार गृहे चतुर्मुख-भूति।
ना चाइ कखन हरि, करद्वय जोड़ करि, करे तव किंकर मिनति।।

भजनरहस्यवृत्ति—हे प्रभो! मैंने गुरु वैष्णवोंके निकट श्रवण किया है कि जीव पूर्व-पूर्व कर्म फलानुसार जन्म-मृत्युके चक्रमें भ्रमण करते हैं। प्रभो! यदि अपने शुभ या अशुभ कर्मानुसार मेरा जन्म इस देवी धाममें हो, तब भी कोई दुःख नहीं, किन्तु आपके चरणोंमें मेरा निवेदन है कि, मुझे अपने कर्मानुसार नीच योनिमें कीट या कुत्ता होकर भी जन्म लेना पड़े, तो मेरा जन्म भक्तगृहमें ही हो, मुझे सन्त-वैष्णवोंका संग प्राप्त हो। मैं हरिविमुख धनाढ्य गृहमें अथवा ब्रह्मा जैसी विभूतिसम्पन्न गृहमें जन्म नहीं चाहता—यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है। मैंने शास्त्रोंमें सुना है—

भक्ति उत्पन्न कारण साधु-संग।
कृष्ण भक्ति जन्म मूल हय साधु संग।।

हे दयामय! मैं स्वर्ग या नरक कहीं भी रहूँ, आपके चरणकमलोंका श्रवण, कीर्त्तन एवं ध्यान करता रहूँ।

आत्म-निवेदनात्मक दैन्य यथा; यामुनस्तोत्रमें (५२)—

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथा तथाविधः।
तदयं तव पादपद्मयोरहमद्यैव मया समर्पितः।।१६।।

हे भगवन्! इस संसारमें देहगत भेदके अनुसार स्त्री-पुरुष हैं एवं सत्त्व, रज तथा तमोगुणके अनुसार चार वर्ण और आश्रम भेद हैं। इस प्रकार अनंत प्रकारके शरीर भेद हैं। हे प्राणेश्वर! मैं किसी भी शरीर या अवस्थामें

जन्म पाऊँ, मैंने तो सब कुछ आपके चरणकमलोंमें पूर्णरूपसे समर्पण कर दिया है; अब मेरा अपना कुछ नहीं है।।१६।।

स्त्री-पुरुष देहगत, वर्ण आदि धर्म यत, ताते पुनः देह गत भेद।
सत्त्वरजस्तमोगुण, आश्रयेते भेद पुनः, एइरूप सहस्र प्रभेद।।
ये कोन शरीरे थाकि, ये अवस्था गुण राखि, से अहंता एवे तव पाय।
संपिलाम प्राणेश्वर, मम वलि अतःपर, आर किछु ना रहिल दाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—यहाँ आत्म निवेदनात्मक दैन्य अभिव्यक्त हो रहा है। साधक दैन्ययुक्त आर्त्तिसे भगवत् चरणोंमें निवेदन करते-करते नामग्रहण करते हैं—'हे भगवन्! इस प्रापञ्चिक शरीरगत स्त्री-पुरुष, वर्णादिगत अहं भावका परित्यागकर आपके पादपद्मोंमें यह देह समर्पित करता हूँ। प्राणेश्वर आप ही एकमात्र मेरे जीवन हैं।'

स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरमें अहं ममता भाव रहने तक जीवका शुद्ध भजनमें प्रवेश नहीं होता। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट श्लोक—नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि... के भावमें जब जीव प्रतिष्ठित होता है तभी भजन राज्यका द्वार खुलता है।

निष्कपट दैन्य; यथा कृष्णकर्णामृतमें (३०)—

निबद्ध मूर्द्धाञ्जलिरेष याचे नीरन्ध्रदैन्योन्नतिमुक्तकण्ठम्।
दयानिधे देव भवत्कटाक्षं दाक्षिण्यलेशेन सकृन्निषिञ्च।।१७।।

—हे देव! हे दयासागर! मैं मस्तकपर हाथ जोड़कर दैन्यपूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि आप एकबार करुण कटाक्षसे मुझे अभिषिक्त कर दो।।१७।।

मस्तके अञ्जलि बान्धि, एइ दुष्टजन कान्दि, निष्कपट दैन्य मुक्तस्वरे।
फूकारि फूकारि कय, ओहे देव दयामय, दाक्षिण्य प्रकाशि अतःपरे।।
कृपादृष्टि एकबार करह सिञ्चन। तवे ए जनेर प्राण हइबे रक्षण।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोकमें लीलाशुक बिल्वमंगल ठाकुर श्रीराधाजीके विरहजन्य दैन्यसे उद्दीपित होकर कातर स्वरसे प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीकृष्ण जब सुदूर प्रवास मथुरा गमन करते हैं, तब श्रीमती राधिका अतीव विरह व्याकुल हो अत्यन्त दीनतापूर्वक भ्रमरसे कहती हैं 'स्मरति स पितृगेहान्' (श्रीमद्भा. १०.४७.२१)—हे भ्रमर! क्या आर्यपुत्र किसी भी रूपमें हमको स्मरण करते हैं।' अथवा 'क्या वे उज्जैनसे सकुशल लौटकर

वृन्दावन आ रहे हैं।' रासके प्रसंगमें कृष्णके अंतर्धान हो जानेपर वे कहती हैं—'दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्' (श्रीमद्भा. १०.३०.४०) 'हे नाथ! मैं आपकी दासी हूँ, मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।' इसी दैन्यके लोभी श्रीलीलाशुक कह रहे हैं—हे कृष्ण! अपने नयन पथका मुझे पथिक बनाएँ, अपनी सेवा प्रदान करें। आपकी कृपासे ही मुझे आपकी अंतरंग निभृत निकुंज लीलामें सेवा प्राप्त होगी, जिसे पाकर जीव सदाके लिए कृतार्थ हो जाता है। यदि मैं इस सेवाके अयोग्य हूँ तो इन्हीं भावनाओंमें विभावित होकर आपका भजन करूँ। मैं अपराधी हूँ, फिर भी आप तो दयाके सागर हैं। अतः मेरे अवगुणोंपर ध्यान न देकर मेरी आशारूपी लताको फलित करो। यही आपसे प्रार्थना है।

यथा कृष्णकर्णामृत (२९)—

मयि प्रसादं मधुरैः कटाक्षैर्वंशीनिनादानुचरैर्विधेहि।
त्वयि प्रसन्ने किमिहापरैर्न स्त्वय्यप्रसन्ने किमिहापरैर्नः।।१८।।

—वंशी निनादके सहचर मधुर कटाक्षों द्वारा, हे कृष्ण! मेरे ऊपर दया कीजिए। आपके प्रसन्न होनेपर दूसरोंकी अप्रसन्नतामें भी मेरी कोई क्षति नहीं है। किन्तु आपकी अप्रसन्नतामें औरोंकी प्रसन्नतासे मेरा क्या प्रयोजन?।।१८।।

मधुर कटाक्ष वंशी निनादेर सह। आमाके प्रसाद करि तव पदे लह।।
प्रसन्न हइले तुमि अन्य प्रसन्नता। प्रयोजन किवा मोर, एइ मोर कथा।।
तव प्रसन्नता विना अन्येर प्रसादे। कि कार्य आमार वल कहिनु अवाधे।।
एइरूप निष्ठा सह करिले कीर्त्तन। अचिरे हइवे रूचि, पावे प्रेमधन।।
पूर्वाह्न कालेर लीला एइरूप हय। नामाश्रायकाले चिन्ता कर महाशय।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्णके साथ पूर्व-पूर्व कुञ्ज विलासको स्मरण करती हुई श्रीराधिका विरह व्याकुल हो जाती हैं—क्या कभी कृष्ण हमारे मस्तकपर अपने अगुरु सुगन्धसे भी अधिक सुगन्धित एवं शीतल भुजाको अर्पित करेंगे—"क्वचिदपि स कथं नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु।।" (श्रीमद्भागवत १०.४७.२१) इसी विरह प्रलापमें वे कहती हैं—'हे प्राणनाथ! आप पहलेके समान कटाक्ष करते हुए कुञ्जमें प्रवेश करो।' उनका कटाक्ष कैसा है? जब वे मुरली वादन करते हैं, तब साथ-ही-साथ कटाक्षके द्वारा राधाको कुञ्जमें प्रवेशके लिए इंगित भी करते हैं। इसी

कारण वंशी आनन्ददायक होती है। यदि कोई कहे कि रासलीलाके समय कटाक्ष युक्त मुरलीवादनमें केवल श्रीराधाके लिए ही संकेत है, तब अन्य गोपियोंका क्या होगा? तो कहते हैं कि वंशी एवं कटाक्षमें निहित अचिन्त्य शक्तिके द्वारा कृष्ण श्रीराधाको साक्षात् रूपमें बुलाते हैं तथा अन्य गोपियोंको अलक्षित रूपमें। श्रीराधा कहती हैं कि, 'मुझे केवल आपकी प्रसन्नतासे ही प्रयोजन है।' सभी गोपियाँ अप्रसन्न भी हो जायें, किन्तु आप प्रसन्न हों, यही मुझे अभीष्ट है। आप यदि प्रसन्न होकर दर्शन न दें तो अन्यान्य गोपियोंकी अनेकों चेष्टाएँ भी मुझे प्रसन्न नहीं कर सकतीं।

—इस प्रकार निष्ठायुक्त भजन करते-करते रुचि अवस्था उदित होती है तथा क्रमशः साधक प्रेमावस्थाको प्राप्त करता है।

पूर्वाह्न लीला यथा गोविन्दलीलामृत—

पूर्वान्हे धेनुमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठलोकानुयातं
कृष्णं राधाप्तिलोलं तदभिसृतिकृते प्राप्ततत्कुण्डतीरम्।
राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतगृहगमनामार्ययाक्र्वार्च्चनायै
दिष्टां कृष्णप्रवृत्तैः प्रहितनिजसखी वर्त्मनेत्रां स्मरामि।।१९।।

—पूर्वाह्नमें जो श्रीकृष्ण धेनु एवं अपने सखाओंके साथ वनगमन करते हैं, श्रीनन्द यशोदादि व्रजवासीजन जिनके पीछे-पीछे चलते हैं, श्रीराधा-मिलनके लिए लालायित और चंचल होकर उनसे अभिसारार्थ राधकुण्ड तटपर उपस्थित होते हैं, उन श्रीकृष्णका मैं स्मरण करती हूँ। जो श्रीराधाजी नन्दभवनमें कृष्ण-दर्शनके पश्चात् अपने घर जाती हैं और जटिला द्वारा सूर्यपूजाके लिए गमनादेश प्राप्त करती हैं एवं जो श्रीकृष्ण-वृत्तान्त जाननेकी आशामें भेजी गयी सखीके आनेकी प्रतीक्षामें बैठी राह देखती हैं, उन श्रीराधाजीका मैं स्मरण करती हूँ।।१९।।

धेनु सहचर सङ्गे, कृष्ण वने याय रङ्गे, गोष्ठजन अनुव्रत हरि।
राधसङ्ग लोभे पुनः, राधाकुण्ठ तट वन, याय धेनु सङ्गी परिहरि।।
कृष्णेर इङ्गित पाइञा, राधा निज गृहे याइञा, जटिलाज्ञा लय सूर्यार्चने।
गुप्ते कृष्णपथ लखि, कतक्षणे आइसे सखी, व्याकुलिता राधा स्मरि मने।।

भजनरहस्यवृत्ति—पूर्वाह्न लीलामें भोजनोपरान्त कृष्ण गोपवेशमें सुसज्जित होकर वन गमनको प्रस्तुत हुए तथा श्रीवृषभानुनन्दिनीने श्रीयशोदा प्रदत्त वस्त्रालंकारोंसे विभूषित होकर यावटकी ओर प्रस्थान किया। मध्य मार्गमें

दोनोंका मिलन हुआ श्रीराधाका अवलोकनकर उनका मयूरपुच्छ स्खलित हो जाता है, वेणु हाथसे छूट जाती है—

वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं, भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराज सूनोः।

(श्रीराधारससुधानिधि–३९)

श्रीकृष्ण पुनर्मिलनके लिए राधाकुण्डपर उपस्थित हो, वहाँ श्रीराधाको न देखकर अत्यन्त उत्कण्ठित और व्याकुल हो जाते हैं। यावटमें जटिला श्रीराधाजीको सूर्य पूजाके लिए प्रेरित करती है। सूर्यपूजाके स्थानपर किस प्रकार श्रीराधाकृष्ण–पूजा करती हैं यह सब भजनकी सम्पत्ति हैं जिनकी उपलब्धि भजन करते–करते होगी।

।।इति श्रीभजनरहस्ये तृतीययाम साधनम्।।

चतुर्थयाम–साधन

मध्याह्नकालीय भजन—रुचि–भजन

(द्विप्रहर दिवससे साढ़े तीन प्रहर पर्यन्त)

अहैतुकी कृष्ण भक्तिके अतिरिक्त नाम साधककी अन्य कोई कामना नहीं, यथा शिक्षाष्टक चतुर्थ श्लोक—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।१।।

—हे जगदीश! न मैं धन चाहता हूँ, न जन चाहता हूँ, न सुन्दरी कविता (विद्या) ही चाहता हूँ। हे प्राणेश्वर! मैं केवल यही चाहता हूँ कि आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी जन्म–जन्मान्तरमें अहैतुकी भक्ति हो।।१।।

गृह–द्रव्य–शिष्य–पशु–धान्य–आदि धन। स्त्री–पुत्र–दास–दासी कुटुम्बादि जन।।
काव्य अलंकार–आदि सुन्दरी कविता। पार्थिव विषय मध्ये ए सव वारता।।
एइ सब पाइवार आशा नाहि करि। शुद्ध भक्ति देह मोरे कृष्ण कृपा करि।।
प्रेमेर स्वभाव याहाँ प्रेमेर सम्बन्ध। सेइ माने कृष्णे मोर नाहि भक्तिगन्ध।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रद्धापूर्वक हरिनामके कीर्त्तनसे ही भक्तिका हृदयमें प्रादुर्भाव होता है। किन्तु अन्वय–व्यतिरेक रूपमें जड़ जगतके वैषयिक सुखोंसे सम्बन्धरहित हुए बिना साधकके शुद्ध स्वरूपका उदय नहीं होता। यहाँ अन्वयका तात्पर्य आनुकूल्यमय कृष्णानुशीलन रूप मुख्य लक्षणसे है तथा व्यतिरेक लक्षणका तात्पर्य भक्तिके अतिरिक्त अन्याभिलाषिताशून्य और कर्म ज्ञानादिसे अनावृत होना—इन दो गौण लक्षणोंसे है। इस श्लोकमें—'न धनं न जनं' के द्वारा व्यतिरेक लक्षणको स्पष्ट किया गया है, 'धन' अर्थात् धन–सम्पत्ति और भोग–विलासकी सामग्रियाँ। 'जन' शब्दसे स्त्री, पुत्र, दास, दासी, प्रजा और बन्धु–बान्धवोंको लक्ष्य किया गया है। सुन्दरी–कविता अर्थात् काव्य सम्बन्धी साधारण विद्या। मैं इन सब वस्तुओंके

लिए आपसे प्रार्थना नहीं करता, परन्तु जन्म-जन्मान्तरोंमें आप प्राणेश्वर कृष्णमें ही मेरी अहैतुकी भक्ति हो—केवल यही प्रार्थना है।

पार्थिव धनादि भक्तिविरोधी हैं यथा भागवत (३.९.६)—

तावद्भयं द्रविणदेहसुहृन्निमित्तं शोकस्पृहापरिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्त्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः।।२।।

—जब तक पुरुष आपके अभय श्रीचरणारविन्दोंका आश्रय नहीं लेता, तभी तक उसे धन, घर और बंधुजनोंके कारण प्राप्त होनेवाला भय, शोक लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं, तभी तक उसे 'मैं' 'मेरेपन' का दुराग्रह रहता है, जो दुःखका एकमात्र कारण है।।२।।

द्रव्य-देह-सुहृन्निमित्त शोक भय। स्पृहा पराभव आर लोभ अतिशय।।
आमि मम आर्त्तिमूल असत् आशय। यत दिन नहे तव पाद पद्माश्रय।।

भजनरहस्यवृत्ति—जिनके कर्णोंमें हरि-कथा प्रविष्ट नहीं होती, उनकी हरि सेवामें प्रवृत्ति नहीं होती। वे संसारके कार्योंमें अपना समय, धन तथा शक्ति लगाते हैं तथा उनको यह अभिमान रहता है—'मैं भोक्ता हूँ।' वे अपनी भोग प्रवणताके द्वारा प्रपीड़ित होते हैं, अर्थात् दुःखका भोग करते हैं, किन्तु कृष्ण इतर वस्तुकी ही चेष्टा करते हैं। इसका एकमात्र कारण भ्रान्ति है। 'श्रीकृष्ण ही मेरे एकमात्र सुहृद बन्धु हैं' इसे भूलकर कृष्ण विमुख जनोंसे बन्धुत्व स्थापन करते हैं तथा भक्तोंसे भयभीत रहते हैं। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी कृपादृष्टिसे ही इन क्लेशोंसे जीवका उद्धार होता है तथा उसके हृदयमें भगवत् सेवाकी प्रवृत्ति उदित होती है—भगवत् सेवावृत्ति हृदयमें उन्मेषित होती है। जीव अपने स्वरूप, भगवत् स्वरूप तथा माया स्वरूपकी उपलब्धि करता है तथा सर्वेन्द्रियोंको हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें नियुक्त करता है।

आत्म निवेदन, तुआ पदे करि, हइनु परम सुखी।
दुःख दूरे गेल, चिन्ता न रहिल चौदिके आनन्द देखी।।

श्रीकृष्ण ही सर्वोपरि सर्वेश्वर हैं, उनके अर्चनादिसे सबका अर्चन सम्पन्न हो जाता है, यथा श्रीमद्भागवत (४.३१.१४)—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।।३।।

—जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है तथा भोजन द्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे

समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्णकी पूजाद्वारा ही निखिल देव पितृ आदिकी पूजा हो जाती है।।३।।

तरुमूले दिले जल भुजशाखा-स्कन्ध। तृप्त हय अनायासे सहज निर्बन्ध।।
प्राणेर तर्पणे यथा इन्द्रिय सबल। कृष्णार्चने तथा सर्वदेवता शीतल।।

भजनरहस्यवृत्ति—वृक्षके मूलमें जल सिंचन करनेसे वृक्षके स्कन्ध, शखा, पत्र एवं फलादि समस्त अंग जीवनीशक्ति प्राप्त करते हैं। भोजनके द्वारा शरीरके समस्त अंग-प्रत्यंग तृप्त एवं पुष्ट होते हैं। इन्द्रियोंमें पृथक्-पृथक् भोजन सामग्री देनेसे इन्द्रियाँ अनिष्ट फल देती हैं। उसी प्रकार अच्युतकी एकान्त रूपमें आराधना करनेसे समस्त देवी देवताओंकी आराधना हो जाती है, कारण कि अच्युत ही चेतनाकी मूल वस्तु हैं, समस्त चेतन अचेतन वस्तु पदार्थ अच्युतके आश्रित हैं। स्वयं भगवान ही एकमात्र अच्युत वस्तु हैं, कभी च्युत नहीं होते। पूर्व पक्ष प्रश्न उठाता है कि भगवान तथा देवी देवताओंकी आराधना एक साथ करनेपर क्या क्षति होती है? इसके उत्तरमें कहते हैं—भगवानके प्रति निष्ठामें अभाव हो जाता है। देवी-देवता प्राकृत गुणों द्वारा परिचालित होते हैं, जब कि भगवानकी सेवा अप्राकृत विधिसे होती है। अन्य देवी-देवताओंकी अवज्ञा उचित नहीं, किन्तु उन्हें कृष्णके समान मानना भी उचित नहीं। शास्त्र कहते हैं कि जो श्रीकृष्ण भजन परित्याग कर अन्य देवी-देवताओंकी पूजा करते हैं वे अपनी माँको छोड़कर चाण्डालिनीकी पूजा करते हैं अथवा अमृत त्यागकर विष पान करते हैं।

ऐकान्तिक भक्तोंको कृष्ण सेवाके अतिरिक्त अन्य किसी देवी-देवताकी सेवा नहीं करनी चाहिए। यथा पद्मपुराण—

हरिरेव सदाराध्यः सर्वदेवेश्वरेश्वरः।
इतरे ब्रह्मरुद्राद्या नावज्ञेयाः कदाचन।।४।।

—सर्व देवेश्वर श्रीहरि ही एकमात्र सर्वदा आराध्य हैं किन्तु ब्रह्मा, रुद्रादि अन्य देवताओंकी भी अवज्ञा करना उचित नहीं है।।४।।

आदौ सर्वेश्वरज्ञान कृष्णेते हइबे। अन्य देवे कभु नाहि अवज्ञा करिबे।।

भक्ति विस्तारके छलसे अयोग्यजनोंकी संख्यामें वृद्धि मत करो; यथा श्रीमद्भागवत (७.१३.८)—

न शिष्यान्नैवानुबध्नीयात् ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्।।५।।

—लोभवश बहुतसे शिष्य न करे, बहुतसे ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, शास्त्रोंकी व्याख्याके द्वारा जीवन निर्वाह और बड़े-बड़े कामोंको त्याग दें।।५।।

बहुशिष्य-लोभेते अयोग्य शिष्य करे। भक्तिशून्य शास्त्राभ्यासे तर्क करि मरे।।
व्याख्यावाद-वह्वारम्भे वृथा काल जाय। नामे जार रुचि सेई ए सब ना चाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—देवर्षि नारद यतिधर्म प्रसंगमें युधिष्ठिर महाराजसे कहने लगे, 'संन्यासीको चाहिए कि वह नारायण परायण होकर विचरण करे, वह समस्त प्राणियोंका हितैषी बने, अपने जीवन निर्वाहके लिए कोई जीविका न करे, केवल वाद-विवादके लिए कोई तर्क न करे। मात्र भिक्षोपयोगी (जीविकानिर्वाहोपयोगी) वस्तु ग्रहण करे। असत्य—अनात्म वस्तुका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंसे प्रीति न करे। धन प्रलोभनके कारण अनधिकारियोंको मंत्र देकर शिष्य मंडली न बढ़ावे। पाण्डित्य प्रतिभाका प्रदर्शन न कर भक्ति ग्रन्थोंका अनुशीलन करे। वैभवका आडम्बरकर बड़े-बड़े मन्दिरोंका निर्माण एवं परिचालन करना केवल समयको व्यर्थ करना है, यह शुद्ध भक्तिके प्रतिकूल है। इनकी आड़में नाना प्रकारके अनधिकारी व्यक्ति व्यभिचारकी सृष्टिकर साधुसमाजको कलंकित करेंगे। साधुजन अपनी परम्पराके निर्देशित मार्गपर अपने गुरुजनोंके आनुगत्यमें भजन करें। शिष्य बनानेका अधिकार एकमात्र जातरति साधकको ही है। वे लोक कल्याण तथा सम्प्रदायकी रक्षाके लिए शिष्य करते हैं। अनधिकारी द्वारा बहुसंख्यामें शिष्य बनाना शास्त्र-निषिद्ध है।

ऐकान्तिकी अहैतुकी भक्ति यथा श्रीमद्भागवत (१.२.१४)—

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा।। (६)

—एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवानका ही नित्य निरन्तर श्रवण, कीर्त्तन, ध्यान और आराधना करनी चाहिए। साथ ही अनर्थ नाश करनेका यत्न करनेसे भक्तिलता अतिशीघ्र अपना प्रेम रूपी फल प्रदान करेगी।।६।।

अनन्य भावे ते कर श्रवण-कीर्त्तन। नाम-रूप-गुण-ध्यान-कृष्ण आराधन।।
सङ्गे-सङ्गे अनर्थनाशेर यत्न कर। भक्ति लता फल दान करिवे सत्वर।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीहरिकी प्रसन्नतासे ही समस्त धर्मोंका पालन हो जाता है। अतएव एकाग्रचित्त होकर तथा कर्म, ज्ञानकी अभिलाषाका परित्याग कर श्रीकृष्णका भजन करना ही जीवमात्रका कर्त्तव्य है। श्रीहरिकी प्रसन्नताके

लिए स्थिर चित्त होकर धाममें वास कर श्रीगुरु, वैष्णवोंसे हरिकथा श्रवण करें। श्रवणके पश्चात् उसका कीर्त्तन तथा स्मरण ही शुद्ध भजनानुशीलनकी विधि है। इस विधिके द्वारा अनर्थ नष्ट हो जाते हैं तथा शुद्ध भजन उदित होता है। साधकोंके लिए यही सार उपदेश है।

लब्ध द्रव्यादि नष्ट होनेसे क्षोभ नहीं करना चाहिए यथा भक्तिरसामृतसिन्धु (पू. वि. २.११४ पद्मपुराणके वचन)—

अलब्धे वा विनष्टे वा भक्ष्याच्छादनसाधने।
अविक्लवमतिर्भूत्वा हरिमेव धिया स्मरेत्।।७।।

—हरिभक्ति परायण व्यक्तिको भोजन और आच्छादन-संग्रहके लिए चेष्टा करनेपर भी यदि वह प्राप्त न हो अथवा उपलब्ध सामग्री नष्ट हो जाय, तो भी व्याकुल चित्त न होकर मनमें हरिका ही स्मरण करना चाहिए।।७।।

भक्ष्य आच्छादन यदि सहजे ना पाय। अथवा पाइया कोन गति के हाराय।।
नामाश्रित भक्त अविक्लव मति हइया। गोविन्द शरण लय आसक्ति छाड़िया।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीभगवद् कथा और नाममें रुचि होनेपर जीवकी पार्थिव वस्तुके प्रति आसक्ति नहीं रहती। वह शरीरकी रक्षाके लिए आवश्यक वस्त्र तथा भोजनमें संतुष्ट रहता है। किसी वस्तुके प्राप्त अथवा नष्ट होनेपर वह स्थिर चित्त रहता है। वह यही भावना करता है कि वस्तुएँ ईश्वर इच्छासे प्राप्त और नष्ट होती है। पूर्व-पूर्व कर्मोंके अनुसार लाभ-हानि आदि होती है। जड़ विषयोंके प्रति अनासक्त होकर, स्थिर चित्तसे श्रीभगवानका नाम स्मरण करते हैं।

क्षोभ त्यागकी व्यवस्था, यथा भक्तिरसामृतसिन्धु (पू.वि. २.११३—पद्मपुराण वचन)—

शोकामर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम्।
कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्त्तिः—सम्भावना भवेत्।।८।।

—जिनका हृदय शोक और क्रोधादिसे परिपूर्ण है, उस व्यक्तिके हृदयमें मुकुन्दकी स्फूर्तिकी सम्भावना कहाँ है?।।८।।

पुत्र कलत्रेर शोक, क्रोध अभिमान। ये हृदये ताहे कृष्ण स्फूर्ति नाहि पान।

भजनरहस्यवृत्ति—अनित्य वस्तुकी प्राप्तिमें हर्ष और नष्ट होनेपर शोकसे चित्त क्षुब्ध रहता है तथा क्षुब्ध चित्तमें मुकुन्दकी स्फूर्ति नहीं होती। इस प्रकार जीवको भगवत् विस्मरण होता है। श्रीमन् महाप्रभुके भक्तोंका चरित्र

अनुसरण कर उन्हींके भावानुसार हर परिस्थितिमें शांत और स्थिर रहना चाहिए। श्रीवास पंडितका उदाहरण यहाँ अनुसरणीय है। उनके गृहमें श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंके साथ कीर्त्तन करते समय, घरके भीतर श्रीवासजीके पुत्रका देहान्त हो गया था। किन्तु श्रीवासजी स्थिर चित्त रहे और घरकी स्त्रियों आदिको भी रोनेसे कठोरतापूर्वक निषेध कर दिया। जिससे कि महाप्रभुके कीर्त्तनमें बाधा न पड़े। महाप्रभुको भी पुत्रकी मृत्युका संवाद नहीं दिया। इसी प्रकार स्थिर और शान्तचित्त होकर भगवत्-चिन्तन, स्मरण करना चाहिए। यही शास्त्रोंका तात्पर्य है।

जीवन निर्वाहोपयोगी मात्र अर्थ ग्रहण करना यथा नारदीय पुराण—

यावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात्तावदर्थवित्।
आधिक्ये न्यूनतायाञ्च च्यवते परमार्थतः।।९।।

—जिस मात्रामें विषयोंका संग्रह करनेसे भक्तिका निर्वाह हो, अर्थविद्-साधक पुरुष उसी मात्रामें धनादि ग्रहण करेंगे। क्योंकि आवश्यकतासे अधिक या अल्प ग्रहण करनेसे परमार्थसे भ्रष्ट होना पड़ता है।।९।।

सहजे जीवन यात्रा निर्वाहोपयोगी। द्रव्यादि स्वीकार करे भक्त नहे भोगी।।

भजनरहस्यवृत्ति—वैधी भक्तिके अधिकारी वर्णाश्रमधर्मके अनुसार निर्धारित सदुपायोंके द्वारा अर्थ-उपार्जनकर जीवन निर्वाह करें। आवश्यकतानुसार अर्थ स्वीकार करनेसे कल्याण होता है। आवश्यकतासे अधिक ग्रहण करनेकी लालसासे आसक्ति होती है, जो भजनको क्रमशः नष्ट कर देती है। आवश्यकतासे कम स्वीकार करना भी अहितकर होता है, क्योंकि ऐसा होनेपर अभाव उपस्थित होकर भजनको क्षीण कर देता है। इसलिए जबतक निरपेक्ष होनेका अधिकार प्राप्त न हो जाय, तबतक जीवन-निर्वाहोपयोगी अर्थादि स्वीकार करते हुए शुद्ध भक्तिका अनुशीलन करना चाहिए।

अहैतुकी भक्तिकी उन्नतिका लक्षण, यथा श्रीमद्भागवत (११.२.४२)—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्।।१०।।

—भोजनकारी व्यक्ति प्रति ग्रासपर तुष्टि (तृप्ति सुख), पुष्टि (जीवन सुख लाभ) और क्षुधा निवृत्तिका अनुभव करता है। जिस प्रकार ये तीनों क्रियाएँ एक साथ होती हैं, ठीक वैसे ही शरणागत भक्त भी भक्ति करनेके साथ-ही-साथ परेशानुभव अर्थात् अपने आराध्यकी अनुभूति करता है, उसका

सम्बन्ध अपने आराध्यसे पुष्ट होता है और इस अनित्य संसार एवं अनित्य सम्बन्धोंके प्रति उसे विरक्ति होने लगती है।।१०।।

भक्तजने सममाने युगपदुदय। भक्ति ज्ञान विरक्ति तिन जानह निश्चय।।
चिदचिदीश्वर सम्बन्धज्ञाने–ज्ञान। कृष्णेतरे अनासक्ति विरक्ति–प्रमाण।।
येरूप भजने तुष्टि पुष्टि प्रति ग्रासे। क्षुधार निवृत्ति एइ तिन अनायासे।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवत् माधुर्यका अनुभव होनेपर साधकमें जो लक्षण लक्षित होते हैं, उन्हींका इस श्लोकमें वर्णन है। इस अवस्थाके भक्तोंमें भगवत् सेवा प्राप्ति, भक्तियुक्त तत्त्वज्ञानका अनुभव तथा कृष्णेतर वस्तुओंके प्रति वैराग्य ये तीनों ही एक साथ परिलक्षित होते हैं। साधकका वैराग्य उन भोग्य पदार्थोंसे होता है, जिनकी श्रीकृष्ण सेवामें अनुपयोगिता है। श्रीकृष्ण सेवाके उपयोगी उपकरणोंसे वैराग्य नहीं होता तथा न ही भोग विचार होता है, इसलिए वह वस्तु त्यागने योग्य भी नहीं होती।

जब श्रील सनातन गोस्वामीपादजीने दैन्यके कारण अपने शरीरको रथके पहियेके नीचे आकर त्यागनेका संकल्प किया, तब सर्वान्तर्यामी श्रीगौरसुन्दरने उन्हें उपदेश दिया कि देह–त्यागसे कृष्ण प्राप्ति नहीं होती। एकमात्र भजन अर्थात् श्रील गुरुजीकी मनोऽभीष्ट सेवा द्वारा कृष्णकी प्राप्ति होती है।

साधक जब श्रीगुरुके पादपद्ममें शरणागत होता है, उस समय उसकी देहपर गुरुजीका अधिकार हो जाता है। इसलिए उस देहको गुरुकी सम्पत्ति मानकर उसकी रक्षा करना आवश्यक है। इसी भावनाके अनुसार ही व्रजदेवियाँ श्रीकृष्ण सेवाके लिए वस्त्र, अलंकार तथा सौंदर्य प्रसाधन, शृंगारादिसे अपने शरीरको विभूषित करती हैं।

जितने परिमाणमें भगवद् अनुभूति होती है, उतने ही परिमाणमें जड़ विषयोंके प्रति उदासीनता उत्पन्न होती है। यही उदासीनता भगवद् सेवामें अधिकार प्राप्त कराती है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं—

वैराग्ययुग भक्तिरसं प्रयत्नैरपाययन्मामनभीप्सुमन्धम्।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी सनातनं तं प्रभुमाश्रयामि।।

(विलापकुसुमांजलि—६)

जो दयाके सागर हैं तथा सर्वदा दूसरोंका दुःख देखकर जिनका हृदय कातर हो जाता है, मेरी अनिच्छा होनेपर भी जिन्होंने यत्नपूर्वक मुझ अज्ञानान्धको वैराग्ययुक्त भक्तिरसका पान कराया है, उन्हीं सम्बन्ध ज्ञानदाता

श्रीसनातन प्रभुके श्रीचरणोंमें शरणागत होता हूँ।

अविचारकगण अपने दृष्टि कोणसे कृत्रिम वैराग्यका आदर करते हैं एवं शुष्क ज्ञान अर्जनकारीकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकारका ज्ञान, वैराग्य जिसमें सेवा-प्रवृत्ति नहीं है केवल मात्र भव प्रजल्प एवं लोक वंचना है। शुद्ध भक्तिका इसमें कोई स्थान नहीं है।

ऐसे समयमें निवेदन यथा प्रह्लादवाक्य; श्रीमद्भागवत (७.९.३९)—

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः।।११।।

—हे वैकुण्ठनाथ! मेरा मन पाप-वासनाओंसे कलुषित हो रहा है, अपने मनकी पीड़ाका वर्णन आपसे कैसे करूँ? सदैव कामना-वासनाओंसे यह मन आतुर रहता है तथा कामनाओंमें आसक्त हर्ष-शोक भयसे आक्रान्त सदा धनद्रव्यादिके संग्रहमें लगा रहता है। इसे आपकी लीला-कथाओंमें रस नहीं मिलता है। अतएव मैं आपके स्वरूपका किस प्रकार स्मरण एवं चिन्तन करूँ?।।११।।

दुरित-दूषित मन असाधु मानस। काम-हर्ष-शोक-भय एषणार वश।।
तव कथा रति किसे हइवे आमार?। किसे कृष्ण तव लीला करिव विचार।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधकके हृदयमें अचला भक्ति उदित होनेसे उसके स्वाभाविक दैन्य भावका प्रकाश होता है। निरन्तर भगवत् माधुर्य आस्वादन करनेके लोभसे वे हा-हुताश करते हैं—'हाय! हाय! मैंने कुछ साधन-भजन नहीं किया। मेरा चित्त पापी तथा मन मलिन है' इसीलिए ऐसे करुणामय भगवानको छोड़कर विषयगर्त्तमें निमज्जित हो रहा हूँ। किस प्रकार स्वामिनीजीके चरणकमलोंका मकरन्द आस्वादन करूँ? हे प्रभु! आपके रूप, गुण, लीलामें किस प्रकार मेरी प्रीति होगी? मेरी रसना किस प्रकार भजनास्वादन प्राप्त करेगी? नाना प्रकारकी कामना दुर्वासना दृढ़तासे बांधकर मुझे संसाररूपी समुद्रमें निमज्जित कर रही हैं। अहो! मैं इनसे किस प्रकार अपनी रक्षा करूँ? हे भगवन्! मैं षड्रिपुओंका दास बन गया हूँ। आपके असीम, अनन्त, गम्भीर तत्त्वको मेरे जैसा निर्बुद्धि वासनापरायण व्यक्ति किस प्रकार समझ पायेगा? भक्तिकी परिपाक दशामें ही इस प्रकारका दैन्य उत्पन्न होता है, यथार्थमें परिपक्व प्रेम ही दैन्य है अपनेको अत्यन्त दीन-हीन जानकर साधक सदासर्वदा विविध प्रकारकी दैन्य आर्त्तिसे भगवानके निकट

प्रार्थना करते हैं।

रूप रसादि विषय–आकर्षणसे जीवनका सर्वनाश हो जाता है, यथा श्रीमद्भागवत (७.९.४०)—

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति–
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति।।१२।।

—हे अच्युत! मेरी जिह्वा मुझे स्वादिष्ट रसोंकी ओर खींच रही है, जननेन्द्रिय सुन्दर स्त्रीकी ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्शकी ओर, पेट भोजनकी ओर खींच रहा है जो अनर्थकारी है, कान मधुर संगीत या ग्राम्य कथाओंकी ओर खींच रहे हैं, नासिका भीनी–भीनी सुगन्धकी ओर तथा नेत्र सौन्दर्यकी ओर खींचते रहते हैं। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ अपने–अपने विषयोंकी ओर खींच रही हैं। हे नन्दनन्दन! मेरी तो वैसी ही अवस्था हो रही है जैसे किसी पुरुषकी बहुतसी पत्नियाँ उसे अपने–अपने शयन गृहमें ले जानेके लिए घसीट रही हों। अतः इस अवस्थामें आपका एवं आपके रूप, गुण, लीलाओंका कैसे स्मरण करूँ?।।१२।।

जिह्वा टाने रस प्रति, उपस्थ कदर्थे। उदर भोजने टाने विषम अनर्थे।।
चर्म टाने शय्यादिते श्रवण कथाय। घ्राण टाने सुरभिते, चक्षु दृश्ये जाय।।
कर्मेन्द्रिय कर्मे टाने, बहुपत्नी यथा। गृहपति आकर्षय, मोर मन तथा।।
एमत अवस्था मोर श्रीनन्दनन्दन। किरूपे तोमार लीला करिब स्मरण।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक अति दीनतापूर्वक भगवानके निकट प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! मेरा मन आपके चरणकमलोंमें संलिप्त हो सदासर्वदा आपका कीर्त्तन करता रहे। किन्तु हे अच्युत! मैं शत–शत प्रकारसे चेष्टा करके भी अपनी दुष्ट इन्द्रियोंको वशीभूत नहीं कर सका। हाय! हाय! मैं क्या करूँ? एक ओर मेरी अतृप्त जिह्वा, एक ओर उपस्थ, एक ओर मेरी त्वचा तथा उदर, कर्ण, नासिका, चंचल दृष्टि आदि अपने–अपने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिकी ओर आकर्षितकर मेरा विनाश कर रही हैं। हे प्रभु! मैंने इनका दमन करनेकी बहुत चेष्टा की किन्तु असफल रहा। मेरी दशा उस कामी पुरुषकी भाँति है, जिसने कामके वशीभूत हो अनेक स्त्रियोंसे विवाह कर लिया हो; अब वे सभी पत्नियाँ उसे अपनी–अपनी ओर खींच

रही हैं, तथा सभी अपनी सुख वासनाकी पूर्ति करना चाहती हैं। किन्तु वह इतनी पत्नियोंकी काम ज्वालाका प्रशमन नहीं कर सकता और स्त्रियाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़तीं। उन स्त्रियोंकी कभी न मिटनेवाली वासनाओंकी पूर्तिके लिए वह कामी विविध प्रकारकी जितनी चेष्टा करता है, उतना ही असफल होता है।

उसी प्रकार मैंने भी बहुत चेष्टा की, परन्तु सफल न हो पाया। हे अनाथोंके नाथ! अब आप ही मेरी एकमात्र गति हैं, एकमात्र आपपर ही मेरा विश्वास है। आप अपने कृपारूपी विक्रमसे मेरा इस संसार जालसे उद्धार कर, अपने पतित पावन नामको सार्थक कीजिये।

ब्रजके भक्तोंकी सङ्गकी प्रार्थना, यथा ब्रह्मस्तव दशम स्कंध श्रीमद्भागवत (१०.१४.३०)—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।१३।।

—हे भगवन! मुझे इस मनुष्य जन्ममें, दूसरे जन्ममें या किसी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदिके जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि आपके भक्तोंका संग पाकर, उनके आनुगत्यमें मैं आपके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त करूँ।।१३।।

एइ ब्रह्म जन्मेइ वा अन्य कौन भवे। पशु-पक्षी हये जन्मि तोमार विभवे।।
एइ मात्र आशा तव भक्तगण संगे। थाकि तव पद सेवा करि नानारङ्गे।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्णको अन्य गोप बालकोंके साथ खेलते देख ब्रह्माजी भ्रमित हो गये तथा श्रीकृष्णकी अन्य लीलादर्शन हेतु गोवत्स, ग्वालबालोंको चुराकर ले गये। किन्तु श्रीकृष्णने उतनी ही संख्यामें बछड़े, ग्वाल बालोंका रूप धारणकर एक वर्षतक पूर्ववत् लीला करते रहे। अन्तमें ब्रह्माजीको अपना चतुर्भुज रूप दिखाया। भगवानके ऐश्वर्यका दर्शनकर ब्रह्माजी बहुत पछताए तथा विविध प्रकारसे श्रीकृष्णकी स्तुतिकर अपने अपराधकी क्षमा प्रार्थना करने लगे, 'हे प्रभो! आपके प्रसादका फल मैंने साक्षात् रूपमें प्राप्त किया। हे सर्वकाल पूरक! यह ब्रह्मपद पाना मेरा सौभाग्य नहीं है। यदि इस ब्रजमें पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि तिर्यक योनिमें भी जन्म

पाऊँ, तभी अपनेको महासौभाग्यशाली समझूँगा। इस ब्रह्म जन्ममें मुझे वह कृपा सुलभ नहीं, जो ब्रजमें हिरणियोंको उपलब्ध है। वे आपके श्रीअंगमें लगी रजको अपनी जिह्वासे मार्जन करती हैं तथा आप भी अपने श्रीहस्तसे उनका स्पर्श करते हैं। जिस योनिमें आपकी सेवा प्राप्त हो, चाहे वह योनि उच्च हो या अति निम्न, उसीमें जन्म प्राप्त कर आपके भक्तोंके आनुगत्यमें आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ यही मेरी ऐकान्तिक अभिलाषा है तथा यही मेरा सौभाग्य होगा।'

चर्तुवर्गकी चिन्ता अति तुच्छ है, यथा श्रीमद्भागवत श्रीउद्धव वाक्य (३.४.१५)—

कोन्वीश ते पादसरोजभाजां
सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह।
तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्
भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः।।१४।।

—हे ईश! जिसने आपके चरणकमलोंका आश्रय ले लिया है, उसके लिए चर्तुवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दुर्लभ नहीं, फिर भी वह उन्हें प्राप्त करनेकी कामना नहीं करता। हे भूमन! आपके चरणारविन्दोंकी सेवाके अतिरिक्त उसे अन्य किसी वस्तुसे प्रयोजन नहीं।।१४।।

कृष्ण तव पादपद्मे भक्ति आछे जार। चर्तुवर्ग–मध्ये किवा अप्राप्य ताँहार।।
तथापि तोमार पदसेवा मात्र चाई। अन्य कोन अर्थे मोर प्रयोजन नाई।।

भजनरहस्यवृत्ति—सेवा वृत्ति ही जीवका स्वरूपगत धर्म है, भक्त इसी कारण पञ्चम पुरुषार्थ प्रेम सेवाकी कामना करते हैं तथा उपाधिगत त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) एवं निरुपाधि मोक्षको भी स्वीकार नहीं करते। अद्वैतवादियोंका लक्ष्य सायुज्य मुक्ति है जो भक्तोंके लिए सर्वथा त्याज्य है—

हरिभक्ति महदेव्या सर्वमुक्तादि सिद्धय।
भक्तश्चाद् तास्तस्या चेटिकावत् अनुवृत।

(नारद पञ्चरात्र)

महादेवी हरिभक्तिका आचरण करनेसे समस्त मुक्तियाँ अपने–आप सिद्ध हो जाती हैं। सिद्ध ही नहीं, अपितु भक्तोंके पीछे–पीछे उनकी सेवाके लिए सेविका रूपमें चलती हैं।

भक्तोंको यद्यपि पाँचों (अर्थात् सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और

सार्ष्टि) मुक्तियाँ त्याज्य हैं, फिर भी सायुज्यको छोड़कर बाकी चार मुक्तियाँ भक्तिकी अत्यन्त विरोधी नहीं हैं। ये सारूप्य आदि मुक्तियाँ भी सुखैश्वर्योत्तरा तथा प्रेम सेवोत्तरा भेदसे दो प्रकारकी होती हैं। इन दोनोंमें ही स्वसुखकी कुछ कामना रहती है इसलिए ऐकान्तिक भगवत्सेवानुरागी भक्तजन इन्हें भी प्रेममयी परिचर्याका विरोधी मानकर ग्रहण नहीं करते।

शुद्ध अहैतुकी भक्तिके लिए यत्न; यथा श्रीमद्भागवत (१.५.१८)—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यदभ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुखःवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा।।१५।।

—ऊर्द्ध सप्तलोक एवं अधःस्थित सुतलादि सप्त लोकोंमें कालक्रमसे भ्रमण कर रहा हूँ, किन्तु अभी तक नित्य चिद्सुख प्राप्त नहीं हुआ। इसी नित्य चिद्सुखको पानेके लिए विवेकीजन यत्न करते हैं। गंभीर वेगशाली कालके प्रभावसे जिस प्रकार दुःख आता है उसी प्रकार बिना प्रयत्नके सुख भी प्राप्त हो जाता है। इसलिए इस भौतिक सुखके लिए प्रयत्न करनेका क्या प्रयोजन?।।१५।।

विना यत्ने दुःखेर घटना येन हय। सेइरूपे कालक्रमे सुखेर उदय।।
अतएव चौदहलोके दुर्लभ ये धन। सेइ भक्तिजन्य यत्न करे बुधगण।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवानके चरणकमलोंके मकरन्द एवं सुगन्धका सामान्य-सा भी अनुभव होनेपर भक्त ब्रह्माण्डके अन्तर्गत उपलब्ध समस्त सुखोंको तुच्छ समझने लगते हैं। जैसे किसी व्यक्तिने गुड़का ही आस्वादन किया हो, किन्तु सुगन्ध युक्त सीतोपल चख लेनेके बाद वह गुड़को त्याग देगा। इसी प्रकार यथार्थ शुद्ध भक्तोंके संगसे भगवद्भक्ति अनुशीलन करनेसे पूर्व, जीव वेदके मधुपुष्पित वाक्योंमें ही लुब्ध रहते हैं और स्वर्गके सोमरस पान, अमृत भोजन तथा अन्य-अन्य स्वर्गीय सुखोंकी कामना करते हैं अथवा ज्ञानियोंके संग-प्रभावसे मोक्षकी कामना करते हैं—यह शुद्ध भक्तोंको ग्रहणीय नहीं है। वे तो भक्तिद्वारा भगवानके प्रेम सेवा-सुखके आकांक्षी हैं। इस श्लोकमें यही उपदेश है कि यथार्थ विवेकीजन नित्य, चिरस्थायी, चिदानन्द वस्तुका ही अनुसंधान करते हैं। उसकी उपलब्धि केवल हरिधाममें ही सम्भव है। समस्त चौदह भुवनोंमें स्थावर योनिमें भ्रमणकारी किसी भी जीवको यह अप्राकृत सुख लभ्य नहीं है। यह जड़ विषयसुख तो शूकर योनिमें भी

उपलब्ध है। जीव अपने कर्मफलानुसार बिना प्रयत्नके कभी दुःख व कष्ट भोगता है तथा कभी सुख प्राप्त करता है। इसी कारण शास्त्रोंका एकमात्र उपदेश है कि इन प्राकृत नश्वर वस्तुओंकी प्राप्तिकी चेष्टा मत करो। पार्थिव दुःख निवारण और सुख-चेष्टा जीवका साध्य नहीं है, उसके लिए यत्न करना बाल चापल्य मात्र है। बुद्धिमान जन इन अस्थाई वस्तुओंका अन्वेषण छोड़कर आत्माके नित्यधर्म श्रीहरिकी सेवा प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं।

अहैतुकी भक्तिमें मुक्ति-वाञ्छाकी तुच्छता; यथा तत्रैव (४.९.१०)—

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म–
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्–
कित्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्।।१६।।

हे नाथ! आपके श्रीचरणकमलोंका ध्यान, ब्रजरस-रसिक भक्तोंके मुख-निःसृत आपकी लीला-कथा तथा आपके भक्तोंके चरित्र श्रवणसे जो आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्दकी एक बूंद ब्रह्मानन्दमें भी प्राप्त नहीं है। कालकी तलवारसे काटे जानेवाले स्वर्गारोही देव पुरुषोंको भी वह सुख प्राप्त नहीं, फिर अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या?।।१६।।

तव पदध्याने भक्त-मुखे तव कथा। श्रवणे ये सुख ताहा मागिये सर्वथा।।
ब्रह्म सुख नाहि भाल लागे मोर मने। कि छार अनित्य लोक सुख संघटने।।

भजनरहस्यवृत्ति—ध्रुव महाराजने भगवत् दर्शनके पश्चात् जो आनन्दानुभव किया, उसे वे इस स्तवके रूपमें वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—'हे प्रभो! आपके भक्तोंके साथ आपकी लीला कथा श्रवणमें जो आनन्द है, वह अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं है। अद्वैतवादियोंद्वारा ब्रह्मानन्दके आनन्दका वर्णन, भक्तके प्रेमानन्दरूपी सूर्यके समक्ष खद्योतकी भाँति है। देवताओंका स्वर्गानन्द उपभोग भी अनित्य तथा तुच्छ है, वह कालरूपी खडगसे खण्डित हो जाता है। इसका उपभोग तभी तक जीव कर सकता है, जब तक उसके पूर्व कर्मों द्वारा अर्जित पुण्य फल समाप्त नहीं हो जाते।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।।

(श्रीमद्भागवद्गीता ९.२१)

अतः स्वर्ग, अपवर्गादि फलश्रुतिका परित्याग करके एकमात्र भगवानकी भक्ति ही जीवके लिए परम कल्याणकारी है। विवेकीजन शुद्धभक्तोंके साथ हरिकथा श्रवण कीर्त्तन आदिके द्वारा जीवन व्यतीत करते हैं।

साधुमुखसे हरिनाम श्रवण माहात्म्य; यथा तत्रैव (४.२०.२४)—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।१७।।

—हे नाथ! मुझे मोक्षपद नहीं चाहिए, मुझे उस कीर्ति कथाको सुननेमें भी सुख नहीं है जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुख द्वारा निःसृत आपके चरणकमलोंका मकरन्द नहीं है। मैं तो यही वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिससे मैं आपकी लीला माधुरीका सदैव श्रवण करता रहूँ।।१७।।

याहाते तोमार पदसेवा-सुख नाई। सेई रूप वर आमि कभु नाहि चाई।।
भक्तेर हृदय हैते तव गुण-गान। शुनिते अयुत कर्ण करह विधान।।

भजनरहस्यवृत्ति—पृथु महाराज भगवानके श्रीचरणोंमें एकमात्र भक्तोंके साथ भगवानकी मंगलमयी लीला-कथाओंके श्रवण एवं कीर्त्तनके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। वे कहते हैं—'मुक्तिकी कथा तथा अन्य किसी भी प्रकारकी कथा जिसमें आपके पादपद्मकी सुधाका यशोगान नहीं है, उसे मैं दूरसे ही प्रणाम करता हूँ। भक्तोंके मुखसे निःसृत आपकी प्रेममयी लीलाकथामृतका पान करना ही मेरा अभीष्ट है। अवैष्णवोंके मुखसे आपकी माधुर्यमय लीला-कीर्त्तन सुननेकी भी मुझे अभिलाषा नहीं। सुगन्ध एवं मधु मिश्रित जल भी लवणयुक्त होनेपर त्याज्य है। हे प्रभो! आपके निकट प्रार्थना है कि, ब्रजरस-रसिक भक्तोंके मुखारविन्दसे आपकी माधुर्यमय कथाओंका श्रवण करनेके लिए मुझे अयुत (करोड़ों) कर्ण प्रदान कीजिये, अर्थात् मैं प्रबल उत्कण्ठाके साथ आपकी लीला कथा श्रवण करूँ। पक्षान्तरमें कैवल्य मुक्तिकी कथा कभी मेरे हृदयमें न जगे। आपके चरणकमलोंके परागरूपी अमृतकणोंसे युक्त जो वायु महापुरुषोंके मुखसे निकलती है, वह हमें भक्ति-शक्ति संचरित कर कृतार्थ कर देती हैं, उसे श्रवण करनेके लिए मैं कुछ भी करनेको प्रस्तुत हूँ, उनके भाव स्फुलिंग मेरे हृदयमें संक्रमित होकर मुझे प्रेम-समुद्रमें निमज्जित करायें।

भक्तकी दृष्टिमें स्वर्ग, ब्रह्म लोक, सार्वभौम पद, रसाधिपत्य, योग तथा अष्टादश

सिद्धियाँ भी तुच्छ हैं; यथा तत्रैव (६.११.२५)—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे।।१८।।

—हे सर्व सौभाग्यनिधे! मैं आपका परित्याग करके ध्रुवपद, ब्रह्मपद, पृथ्वीका एकछत्र आधिपत्य, अणिमादि योग सिद्धि, यहाँ तक कि मोक्षकी भी कामना नहीं करता।।१८।।

स्वर्ग परमेष्ठी-स्थान सार्वभौम पद। रसातल-आधिपत्य-योगेर सम्पद।।
निर्वाण इत्यादि यत छाड़ि सेवा तव। नाहि मागि ए मोर प्रतिज्ञा अकैतव।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोकमें वृत्तासुरकी प्रार्थना है। इन्द्रके साथ युद्ध करते-करते वृत्तासुरने जय-पराजयकी अपेक्षा मृत्युको वरण करना अधिक उचित समझा।

भगवान अपने भक्तोंके अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष सम्बधी प्रयासका निवारण कर देते हैं, इसीके द्वारा भगवानकी कृपाका अनुमान होता है। उनका ऐसा कृपाप्रसाद अकिञ्चन भक्तोंके लिए ही सुलभ है, परन्तु विषयाविष्ट जीवोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ है।

भगवानको प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए वृत्रासुर अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करने लगे, "हे सौभाग्यनिधे! आपको त्यागकर ध्रुवलोक, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका एकछत्र शासन, योग सिद्धि, यहाँ तक कि बहुत कठोर साधनकारी अद्वैतवादियोंका लक्ष्य मुक्तिपद भी नहीं चाहता। आपकी विरहाग्निमें मेरे प्राण प्राप्त हो रहे हैं। हे प्रभो! मैं आपकी नित्य चरण-सेवा किस प्रकार प्राप्त करूँ!"

भक्तजन भगवानकी नित्य सेवा प्राप्तिकी आकांक्षा करते हैं। जिन्होंने सेवानन्दका अनुभव किया है, वे ही इसका तात्पर्य जानते हैं। त्रिवर्ग प्राप्तकर जीवका आवागमन समाप्त नहीं होता, सायुज्य मुक्ति प्राप्तकर वह जड़ वस्तुकी भाँति ज्योतिर्मय ब्रह्मधाममें पड़ा रहता है। किन्तु भक्तजन भगवानके नित्य धाममें नवनवायमान रूपमें सेवा माधुर्यका आस्वादन करते हैं। यही भक्त और भक्तिका वैशिष्टय है। मुक्तिकी स्पृहा होनेपर भक्तिदेवी उस हृदयसे अन्तर्ध्यान हो जाती हैं।

तार मध्ये मोक्ष वाञ्छा कैतव प्रधान।
जहाँ हइते कृष्णभक्ति हन अन्तर्ध्यान।।

(चै. च. आ. १.९२)

नामाश्रय द्वारा उदित आसक्तिका लक्षण; यथा तत्रैव (१०.२९.३४)—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा।।१९।।

—गोपियाँ कृष्णसे कह रही हैं—हे चित्तचोर! आपने वंशी बजाकर, हमारे घरके कामधन्धेमें लगे हुए मनको चुरा लिया है। आपको इसमें कोई कठिनाई भी नहीं हुई। किन्तु चित्त चोरी हो जानेपर हमारी कोई कर्मेन्द्रिय कार्य नहीं कर रही है। इससे हमारी गति, मति निराली हो गई है। हमारे पैर आपको छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना नहीं चाहते; बताओ हम व्रजमें कैसे लौटें?।।१९।।

गृह सुखे चित्त छिल-गृहकार्ये कर। हरिया लयेछ तुमि प्राणेर ईश्वर।।
तव पादमूल छाड़ि पद नाहि याय। याब कोथा कि करिब बलह उपाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—विदग्ध शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सुमधुर वंशी ध्वनिके द्वारा, परकीया भावसम्पन्ना व्रजसुन्दरियोंका आह्वान किया। व्रजसुन्दरियाँ सब कुछ बिसराकर शुभ्र-ज्योत्सनासे सुशोभित यमुना पुलिन वंशीवटपर एकत्रित हो गईं। अब श्रीकृष्णचन्द्र अवहित्था भावों द्वारा उनसे नाना प्रकारके हास-परिहास मूलक उपदेश देकर अपने-अपने घरोंमें लौटनेको कहने लगे। तात्पर्य यह कि, वस्त्रहरण लीलामें रासरसिक श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजदेवियोंकी समस्त देहका दर्शन किया, किन्तु आज वे उनके अन्तः हृदयका दर्शन करना चाहते हैं। प्रेम-रस-समुद्रका यह एक वैशिष्ट्य है। ब्रजके मधुर रसरसिक आचार्यगण निरूपण करते हैं—जिस स्थलपर नायक दाक्षिण्य भाव धारण करता है, वहाँ नायिका वाम्यभाव अवलम्बन करती है, तथा जहाँ नायक वाम्य भाव धारण करता है वहाँ नायिका दाक्षिण्य भाव प्रदर्शित करती है। रास मण्डलमें समागता व्रजसुन्दरियोंमें विभिन्न प्रकारकी भाव तरंगें दिखाई पड़ती हैं। उनमें कोई प्रगल्भा, कोई मध्या तो कोई मृद्वी है। इस प्रकारके विभिन्न भावोंका समावेश रस-समुद्रमें एक अपूर्व माधुर्य

मण्डित करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं, "पतिकी सेवा करना ही साध्वी नारीका एकमात्र कर्त्तव्य है, ब्रह्मचारीके निकट, निर्जनवन तथा रात्रिकालमें, क्षणभर भी अवस्थान करना उचित नहीं है; अतः आपलोग अति शीघ्र घरको लौट जाओ।"

इन उपदेशोंको श्रवणकर, महा अनुरागवती गोपियाँ सरस वचनोंसे कहने लगीं, "हे चोर चक्रवर्त्ती! हम लोग निर्जन वास करने या आपके निकट कोई प्रार्थना करने नहीं आई हैं। हमारा चित्त गृहकार्योंमें सुखपूर्वक लगा हुआ था, उसे आपने अपनी वेणु द्वारा हरण कर लिया। हमारा हृदय धन लुट चुका है, अब हम घरको कैसे लौटें? हे स्तम्भनादि करनेवाले महामंत्रज्ञ! आप हमारी चित्तवृत्तिको लौटा दीजिये, उसके अभावमें हमारी समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ विकल हो गई हैं। उसके बिना पैर भी नहीं चलते, अपना चित्त वापस पाकर हम खुशीसे अपने घरको लौट जाएँगी।"

कोई व्रजदेवी श्लेष वाक्यसे कहने लगी—'हे मोहन! क्या तुम सोच रहे हो कि हम तुम्हारे वेणुके आकर्षणसे इस स्थानपर आई हैं, नहीं, नहीं! यह सत्य नहीं, हमारा चित्त तो अपने गृह-सुखमें ही निविष्ट है। हमारे चित्तको तुम बिंदुमात्र भी हरण नहीं कर सकते और न ही यह तुम्हारा साध्य है। तुम यह न सोचना कि हम यहाँ क्षणकाल भी विश्राम करेंगी। भला इस निर्जन स्थानमें रहकर हम क्या करेंगी? यदि आप कहो कि हम किसलिए इस निर्जन वनमें आई हैं, तो हे श्यामसुन्दर! आप हमारे दर्शनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे थे, यही हमारा यहाँ आनेका कारण है। आपने अब दर्शनकर लिया, अब हम जा रही हैं।"

इस अवस्थामें भक्तमें सारे गुण तथा शान्तिका उदय होता है, यथा प्रह्लाद वाक्य श्रीमद्भागवत (५.१८.१२)—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः।।२०।।

—जिस व्यक्तिकी भगवानमें निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें सारे देवता, धर्म, ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणोंके सहित सदा निवास करते हैं। किन्तु जो भगवानका भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषोंके वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं? क्योंकि वह तो तरह-तरहके सङ्कल्प करके निरन्तर तुच्छ बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है।।२०।।

अकिञ्चना भक्ति यार ताहार शरीरे। सर्वगुणसह सर्वदेवता विहरे।।
अभक्त सर्वदा मनोरथेते चड़िया। असद् बाह्ये भ्रमे गुण वर्जित हइया।।

भजनरहस्यवृत्ति—आचार्यगण निरूपण करते हैं कि, भगवान कृष्णके प्रति निष्काम सेवावृत्ति उदित होनेसे धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य आदि समस्त गुण भक्तोंमें परिलक्षित होने लगते हैं, यह केवल मुकुन्दसेवाका फल है। भक्तोंके हृदयमें इन्द्रादि देवताओंके पचास गुण विराजित होते हैं। इन सद्गुणोंका प्रकाश कुटिल तथा मात्सर्ययुक्त हृदयोंमें नहीं हो सकता। हरिभक्तिविहीन व्यक्ति अन्याभिलाष, ज्ञान, कर्म, योग तथा देह-गेह आदि कर्मोंमें आसक्त रहते हैं। वे सदासर्वदा लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा तथा मनोधर्म द्वारा बाह्य विषयोंके प्रति धावित होते रहते हैं।

श्रीलनरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—'कर्म काण्ड, ज्ञान काण्ड केवल विषेर भाण्ड' बहिर्मुख व्यक्ति सांसारिक वस्तुओंमें आसक्त हो कर्मानुसार नाना प्रकारकी योनियाँ प्राप्त करते हैं। परन्तु भक्तगण साधुसंग तथा सेवामें व्यस्त रहते हैं तथा परमानन्द-समुद्रमें निमग्न हो प्रसन्न चित्त रहते हैं।

भक्तिसे ही देहाभिमानरूप मिथ्या अहंकार नष्ट होता है; यथा श्रीमद्भागवत (४.११.३०)—

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त
आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या
ग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररुढम्।।२१।।

—मनुने (ध्रुवसे) कहा—ऐसा करने (भगवानको खोजने) से सर्वशक्तिसम्पन्न परमानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी भगवान अनन्तमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति होगी और उसके प्रभावसे तुम 'मैं' और 'मेरापन'के रूपमें दृढ़ हुई अविद्याकी गाँठको काट डालोगे।।२१।।

मनु बले ध्रुव तुमि धृत सर्वशक्ति। प्रत्यक् आनन्दरूप कृष्णे कर भक्ति।।
आमि-मम-रूपविद्या-ग्रन्थि दृढ़तम। छेदन करिते क्रमे हइबे सक्षम।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधक अहैतुकी, अव्यवहिता, पराभक्तिका अनुशीलन करके, अपने स्वरूपका अनुभव करते हैं। निज स्वरूपानुभवसे वे अति सहज सरल रूपमें—'मैं', 'मेरा' इस अविद्या-ग्रन्थिका छेदन करनेमें समर्थ होते हैं। अज्ञानवशतः जीव, जड़ देह एवं जड़ीय वस्तुओंमें 'मैं' और 'मेरेपन'

की ममत्व बुद्धि रखते हैं। सत्व, रज एवं तमोगुण दूर हो जानेपर जीव साधुसंगके प्रभावसे निखिल शक्ति सम्पन्न भगवद् रस अनुभव करनेमें समर्थ होता है। आत्मदर्शी होकर वे निर्गुण अर्थात् प्राकृत गुणरहित, अप्राकृत गुणयुक्त अद्वय–तत्त्व, अच्युत भगवानका अन्वेषण करते हैं तथा भक्तिके माध्यमसे धीरे–धीरे अपने स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं।

यथा श्रीमद्भागवत (४.२२.३९)—

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
कर्माशयं, ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध–
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्।।२२।।

—श्रीसनत्कुमार पृथु महाराजको उपदेश करते हुए कहते हैं—'भगवद्भक्त जिनके चरणकमलोंके अङ्गुलिदलकी छिटकती हुई छटाका स्मरण करते ही कर्म वासनासे बनी हृदय ग्रन्थिका अनायास ही छेदन कर डालनेमें समर्थ हैं, भक्तिरहित निर्विषयी योगीगण इन्द्रियोंको संयम करके भी वैसा नहीं कर पाते। अतएव ज्ञान योगादि चेष्टाओंको छोड़कर वासुदेव कृष्णका भजन करो।।२२।।

प्रत्याहारे रुद्धमति योगेश्वरगण। कदाच करिते पारे याहा सम्पादन।।
सेइ कर्माशय ग्रन्थि काटे साधुगण। यार कृपाबले, लह ताहार शरण।।

भजनरहस्यवृत्ति—निर्विशेषवादी ज्ञानीजन अत्यन्त कठिन साधनोंके द्वारा भी इन्द्रियोंको वशीभूत नहीं कर पाते हैं किन्तु भक्तजन अत्यन्त सहज सरल रूपमें, परम करुणामय भगवानके चरणकमलोंके कमलपत्र सदृश अङ्गुलियोंकी कान्तिका स्मरणकर महाबलवान इन्द्रियोंको वशीभूत कर ध्यानस्थ हो जाते हैं। यही ध्यान तथा ध्येय श्रीभगवान, ये दो वस्तु नित्य हैं। दूसरी ओर अद्वैतवादी यह कहते हैं, 'साधकानाम् हितार्थाय ब्रह्मणीरूप कल्पते' अर्थात् ब्रह्म निराकार हैं। परन्तु साधकोंके कल्याणके लिए अरूप ब्रह्ममें रूपकी कल्पना की गयी है। इन काल्पनिक विष्णु, शिव, शक्तिदुर्गा, सूर्य और गणेशकी आराधनासे चित्तशुद्धि होनेपर ब्रह्ममें सायुज्यमुक्ति मिलती है। किन्तु वस्तुतः यह धारणा शास्त्र–विरुद्ध और कोरी कल्पना है। 'विलासभक्त्या' का तात्पर्य है कि साधक श्रीकृष्णके श्रीअंगका स्मरण कर उद्वर्तन, तैलमर्दन, स्नान आदि नानाविध सेवा परिचर्याका चिन्तन करते

हैं। व्रजरस विदग्ध श्रीकृष्णकी अङ्गुलियोंका चिन्तन अर्थात् 'व्रजदेवियोंके साथ निकुञ्ज विलासमें श्रीकृष्णके चरणद्वयकी अङ्गुलियाँ कुंकुम रंगसे रंजित हो गई हैं', इस अप्राकृत लीला-चिन्तनसे साधककी सारी हृदरोग ग्रंथियाँ सरल-सहज रूपमें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। अविद्याग्रस्त निर्विशेषवादियोंको ये सब भाव कैसे प्राप्त होंगे, वे तो भगवानकी नित्यता भी स्वीकार ही नहीं करते तथा उनका अप्राकृत रूप भी स्वीकार नहीं करते। यद्यपि वे अपनेको मुक्त समझते हैं, किन्तु यथार्थतः वे मुक्त नहीं।

ज्ञानी जीवन्मुक्त दशा पाइनु करि माने।
वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्ण भक्ति बिने।।

(चै. च. सनातन शिक्षा)

अपराधी निर्विशेष-ज्ञानियोंकी इन्द्रिय-संयम चेष्टा वृथा है। बाह्य रूपसे संयम दिखनेपर भी फल्गु नदीकी भाँति वासनारूपी कलुषित धारा अन्तरमें प्रवाहित होती है। सौभरि ऋषि हजारों वर्षोंतक कठोर साधनकरके भी विषय वासनासे निर्मुक्त नहीं हुये। पक्षान्तरमें शुद्धभक्त अम्बरीष महाराजके संगमें भगवानकी सेवा द्वारा वे अति सहज रूपमें संसारसे मुक्त हुये। भक्तजन भक्तिके प्रभावसे अविद्याकी जड़ ही काट देते हैं। उनकी समस्त इन्द्रियाँ भगवद् सेवामें नियुक्त रहती हैं। भगवत् सौन्दर्यामृत आस्वादनके द्वारा वे इन्द्रियोंको सार्थक बनाते हैं। अतएव वृथा इन्द्रियोंका दमन करनेकी चेष्टाका परित्यागकर, नित्य चिदानन्दमय श्रीब्रजेन्द्रनन्दनका भजन करना ही श्रेयस्कर है।

मध्याह्न लीला सूचना; गोविन्दलीलामृत अष्टम सर्ग-९—

मध्याह्नेऽन्योन्यसङ्गोदित-विविधविकारादिभूषा प्रमुग्धौ।
वाम्योत्कण्ठातिलोलौ स्मरमखललिताद्यालि-नर्माप्तशातौ।।
दोलारण्याम्बुवंशीहृतिरतिमधुपानार्क पूजादि लीलौ।
राधाकृष्णौ सतृष्णौ-परिजनघटया सेव्यमानौ स्मरामि।।२३।।

—मध्याह्न समयमें परस्पर सङ्गजनित विविध अष्ट सात्त्विक, व्यभिचारी आदि भाव-भूषणोंसे जो अति मनोहर शोभा धारण करते हैं तथा वाम्य एवं उत्कण्ठासे अतिशय चपल हो उठते हैं, कन्दर्प यज्ञमें श्रीललितादि सखियोंके परिहास वचनोंसे जो परम सुखी होते हैं, झूला, वनविहार, जलकेलि, वंशीहरण, रतिक्रीड़ा, मधुपान, सूर्यपूजादि विविध लीलाओंमें आनन्दित होते

हुए जो प्रियजनों द्वारा सेवित होते हैं, उन श्रीश्रीराधाकृष्णका मैं स्मरण करता हूँ।।२३।।

राधाकुण्डे सुमिलन, विकारादि विभूषण, वाम्योत्कण्ठमुग्धभावलीला।
सम्भोग नर्मादि रीति, दोला—खेला वंशीहृति, मधुपान सूर्यपूजा खेला।।
जलखेला वन्याशन, छलसुप्ति वन्याटन, बहुलीलानन्दे दुइजने।
परिजन सुवेष्टित, राधाकृष्ण सुसेवित, मध्याह्नकालेते स्मरि मने।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीमति राधारानी नन्दभवनमें प्रसादसेवा सम्पन्न करनेके पश्चात् पुनः जावटमें अपनी सखियोंके साथ लौट आती हैं। वे अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक प्राणप्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेकी प्रतीक्षा करती हैं। सास जटिलाकी आज्ञासे वे सूर्यपूजाके छलसे बाहर निकलती हैं तथा गुप्तरूपसे राधाकुण्डकी ओर सखियोंके साथ प्रस्थान करती हैं। वहाँ अपने प्रियतमके साथ उनका स्वच्छन्दरूपसे मिलन होता है। प्रियतमके दर्शन एवं स्पर्शसे श्रीराधा अष्टसात्त्विक भाव, किलकिंचित् तथा अन्य—अन्य भावोंसे विभूषित होती हैं। वाम्यभाव धारणकर अपने प्राणेश्वरको लीलारसास्वादनकी चरम सीमातक ले जाती हैं तथा नवनवायमान उत्कण्ठा जगाती हैं। फिर कृष्णकी सम्भोग, नर्मादि रीतिसे पाशा—क्रीड़ा, आँखमिचौनी, वंशीचोरी, मधुपान (प्रेम पान), जलक्रीड़ा, वन्य भोजन, छलशयन, सूर्यपूजा आदि बहुत—सी लीलाएँ गोपियोंके साथ सम्पन्न होती हैं। रागानुगीय साधक इन लीलाओंका चिन्तन करते हुए आविष्ट होकर कृष्णनामका कीर्तन करते हैं।

।।इति श्रीभजनरहस्ये चतुर्थयाम साधनम्।।

पंचमयाम–साधन

अपराह्नकालीय भजन—कृष्णासक्ति

(साड़े तीन प्रहर दिवससे सन्ध्या पर्यन्त)

नाम साधकका स्वरूप तथा श्रीकृष्णके नित्य–दासत्वके लिए उनकी प्रार्थना, यथा शिक्षाष्टक पंचम श्लोक—

अयि नन्दतनुज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपङ्कज स्थितधूलिसदृशं विचिन्तय।।१।।

—हे नन्दनन्दन! अपने कर्मफलसे भयंकर भवसागरमें पड़े हुए अपने इस नित्यदासको कृपाकरके अपने श्रीचरणोंमें संलग्न रज–कणके समान सदासर्वदा अपने क्रीतदासके रूपमें ग्रहण करें।।१।।

तव नित्य दास मुञि तोमा पासरिया। पड़ियाछों भवार्णवे मायाबद्ध हइया।।
कृपा करि कर मोरे पद धूलि सम। तोमार सेवक करों तोमार सेवन।।

—हे प्रभो! मैं आपका नित्यदास हूँ। दुर्भाग्यसे आपको छोड़कर मायाबद्ध हो अथाह भवसागरमें डूब रहा हूँ। आप कृपा करके मुझे श्रीचरणोंकी धूलिके रूपमें ग्रहण करें। मैं आपका सेवक बनकर नित्यकाल आपकी सेवा करूँगा।

भजनरहस्यवृत्ति—भक्त जब आसक्तिकी दशाको प्राप्त करता है, तब उसकी प्रार्थनामें अत्यन्त दीनता एवं रुदन होता है। आसक्तिकी परिपक्व अवस्थामें सिद्ध–देहका कुछ आभास होने लगता है। भजनके साथ भजनीय वस्तुमें भी आसक्ति उदित हो जाती है। भगवान भी ऐसे भक्तकी पुकारको सुनते हैं। भजन करते–करते श्रद्धा, अनर्थ निवृत्ति आदि होते–होते रुचि उत्पन्न होती है। इस स्थिति तकके भक्तकी पुकार कृष्ण हृदयमें स्थित अंतर्यामीकी भाँति ग्रहण करते हैं, किन्तु आसक्तियुक्त अवस्थाके भक्तकी पुकारसे कृष्णका हृदय करुणासे द्रवित हो जाता है।

निरपराध होकर नाम कीर्त्तन करते–करते श्रीकृष्ण कृपासे भावोदगम होता है; यथा श्रीमद्भागवत (१.२.१७–१९)—

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्।।

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत सेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी।।
तदारजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्वे प्रसीदति।।२।।

—श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्त्तन दोनों ही पवित्र करनेवाले हैं। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ कामादि वासनाओंको नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे संतोंके नित्य सुहृद हैं।।१७।।

—श्रीमद्भागवत और भक्तभागवतोंके निरन्तर सेवनसे क्षीण–प्रायः अशुभ वासनाएँ नष्ट हो, उत्तमश्लोक भगवान श्रीकृष्णमें नैष्ठिकी भक्ति उदित होती है।।१८।।

—नैष्ठिकी भक्ति उदित होनेसे रजस्तमोगुणके भाव काम–क्रोधादि शांत हो जाते हैं तथा चित्त निर्मल होकर शुद्धावस्थाको प्राप्त होता है।।१९।।

यार कथा श्रवण कीर्त्तने पुण्य हय। सेई कृष्ण हृदये वसिया नाशे भय।।
साधकेर अभद्र क्रमशः करे नाश। भक्तिर नैष्ठिक भाव करेन प्रकाश।।
रजस्तम समुद्भुत काम लोभ हीन। हइया भक्त चित्त सत्वे हयत प्रवीन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीगुरुपादपद्मका निष्कपट आश्रय ग्रहण करनेके पश्चात् ही श्रीवासुदेवकी कथाओंमें रुचि होती है। श्रवण कीर्त्तनादि साधन क्रियाओंसे साधकके अभद्र, अनर्थ, अपराध दूर होनेपर अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। कथाके माध्यमसे भगवान स्वयं भक्तके हृदयमें प्रवेश करते हैं, तथा समस्त प्रकारके अभद्र अमंगल अर्थात् अनर्थ, अपराधादि, बुरे प्रारब्धयुक्त कर्मफलको नष्ट कर हृदयमें सदाके लिए विराजमान हो जाते हैं। भक्तका हृदरोग भी दूर हो जाता है।

'भागवत सेवा' से ग्रन्थ भागवत एवं भक्त भागवतकी सेवासे तात्पर्य है। इसी सेवाके फलस्वरूप साधकके हृदयमें अचला भक्ति उदित होती है। 'नैष्ठिकी' अर्थात् निष्ठासे चित्तकी एकाग्रता होती है तथा भगवतभक्तोंके संग क्रमसे कर्म एवं फल्गु वैराग्यादि ध्वंस हो जाते हैं। अभक्त अर्थात् मायावादी या योषित संगकी कुप्रवृत्ति जाग्रत नहीं होती। अपनी चेष्टा प्रयत्न द्वारा इनका छूटना संभव नहीं है। उत्तम भागवतोंसे उत्तम श्लोकोंमें वर्णित भगवानकी कथा श्रवण करके ही हृदयमें नैष्ठिकी भक्ति उदित होती है,

जिसके प्रभावसे रज, तम, काम, क्रोध आदि नष्ट हो जाते हैं और यदि रहें भी तो भुने हुए बीजोंकी भाँति फलहीन हो जाते हैं। रज एवं तमोगुणसे जीवोंमें लय, विक्षेप एवं कृष्ण इतर वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। 'एतैरनाविद्धं' का तात्पर्य यह है कि नैष्ठिकी भक्ति उदित होनेपर कामादि रिपुओंसे साधकका हृदय विक्षिप्त नहीं होता अर्थात् चित्त भक्ति मार्गमें स्थिर हो जाता है तथा विषय समूहके प्रति अरुचि हो जाती है।

तत्कृपा प्रार्थना; यथा श्रीमद्भागवत (१०.१४.८)—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो, भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वागवपुर्भिर्विदधन्नमस्ते, जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।।३।।

—जो पुरुष अपने किये कर्मोंके फलको और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे भगवान्की कृपा मानकर निर्विकार मनसे भोग करते हुए काय, वाक्य और मनके द्वारा स्वयंको आपके (श्रीभगवानके) चरणोंमें समर्पित करता हुआ जीवन धारण करता है, वही मुक्तिके आश्रय स्वरूप इन (भगवानके) पादपद्मोंके अधिकारी हैं।।३।।

दुःख भोग करि निजकृत कर्मफले। कायमनोवाक्ये तव चरण कमले।।
भक्ति करि काटे काल तव कृपा आशे। मुक्तिपद, तव पद पाय अनायासे।।

भजनरहस्यवृत्ति—तत्तेऽनुकम्पां—भगवानके निकट प्रार्थना करते हुए ब्रह्माजी साधकोंको यही शिक्षा देते हैं कि सुख या दुःखकी प्राप्तिको भगवानकी कृपा समझनी चाहिए अथवा पूर्वसंस्कारसे प्राप्त पाप-अपराधकी समाप्तिकी सम्भावना समझनी चाहिए। कभी-कभी भगवान् साधकके हृदयमें उत्कण्ठा बढ़ानेके लिए भी ऐसी व्यवस्था करते हैं। 'मुक्तिपद' शब्दका अर्थ है—जिनके श्रीचरणोंका मुक्ति आश्रय करती है, वे भगवान, वह भक्ति अथवा भगवत्सेवा।

इस स्थितिमें पहुँचनेपर पराशान्ति प्राप्त होती है; यथा श्रीमद्भागवत (११.२.४३)—

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवन्ति वै भागवतस्य राजन् ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्।।४।।

—हे राजन! इस प्रकार भक्तिके अभ्यासके द्वारा जो भगवानके चरणकमलोंका भजन करता है, उसे भगवानके प्रति प्रेममयी भक्ति, संसारके प्रति वैराग्य तथा उसके हृदयमें भगवत् तत्त्वज्ञान स्फुरित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप वह परमशान्तिका अनुभव करने लगता है।।४।।

हेन अनुवृत्ति-सह येई कृष्ण भजे। सुभक्ति, विराग, ज्ञान, ताहार उपजे।।
से तीन सुन्दररूपे एकत्रे बाढ़िया। पराशान्ति-प्रेमधन देय त आनिया।।

भजनरहस्यवृत्ति—नवयोगेन्द्रमेंसे अन्यतम 'कवि' ऋषि निमि महाराजके प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं—भगवद्भक्तिके अतिरिक्त आत्यन्तिक मंगलका कोई उपाय नहीं है। काल्पनिक शान्ति अथवा जड़भोग राहित्यके लिए निर्बोधकी भाँति क्षणिक प्रयास करके जीव मंगल लाभ नहीं कर सकता। श्रीभगवानके भक्तोंका आश्रय करके अभ्यास द्वारा त्रिगुणातीत भक्तिको प्राप्त करना ही श्रेय है। शुद्ध भक्तिमान व्यक्ति स्वयंरूप भागवतधर्ममें प्रतिष्ठित हो युक्त वैराग्यसे सेवा करते हैं तथा अज्ञानता उन्हें स्पर्श नहीं करती है। भक्तिराज्यमें प्रतिष्ठित हो उत्तरोत्तर उन्नत भक्ति लाभ करता हुआ पराशांति प्राप्त करता है। श्रीभगवानके भक्तोंका आश्रय लेना ही अभ्यास या अनुवृत्ति है। कृष्णसे अधिक उनके परिकरोंका स्मरण तथा अनुशीलन अधिक लाभकारी है। भक्ति साधकोंके लिए महाप्रभुकी अपेक्षा श्रील रूप गोस्वामी, रघुनाथदास गोस्वामीकी गोपियोंकी आनुगत्यमयी भक्ति-प्रणाली अधिक उपादेय है। भक्तोंके भावोंका चिंतन, प्रार्थना और रुदन—यही लोभ उत्पत्तिकी विधि है। स्वरूप-सिद्धिको लक्ष्य करके इन्द्रियों द्वारा भक्तिका अनुशीलन साधन कहलाता है। भावोदय होनेपर यह साधन न रहकर भावभक्ति हो जायेगी तथा वस्तु सिद्धि होनेपर प्रेमसेवा लाभ होगी।

भक्ति-साधन नौ प्रकारके होते हैं; यथा श्रीमद्भागवत (७.५.२२-२४)—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।५।।

—जो भगवान् श्रीविष्णुके प्रति आत्मसमर्पणपूर्वक कर्म, ज्ञान, योग आदि व्यवधानसे रहित होकर तद्विषयक श्रवण, उन्हींका कीर्त्तन, उनके नामरूप आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये नौ प्रकारकी भक्ति करते हैं, उन्होंने ही उत्तमरूपसे शास्त्र अध्ययन किया है—ऐसा कहा जाता है। अर्थात् उनका ही शास्त्रानुशीलन सार्थक हुआ है।।५।।

श्रवण कीर्त्तन आदि भक्तिर प्रकार। चिद्घन-आनन्द कृष्णे साक्षात् याहार।।
सर्वशास्त्र तत्त्व बुझि क्रियापर तिनि। सर्वार्थसिद्धिते तिहँ विज्ञ शिरोमणि।।

भजनरहस्यवृत्ति—नवधा भक्ति स्वरूपसिद्धा भक्ति है, अन्य प्रकारके भक्ति अनुशीलन संगसिद्धा, आरोप सिद्धा आदिकी श्रेणीमें आते हैं। भगवानके प्रति पूर्ण समर्पण अत्यावश्यक है। स्वरूपसिद्धा अथवा शुद्धाभक्तिमें शरणागतिके बिना प्रवेश नहीं होता। 'इति पुंसार्पिता विष्णो' का यही तात्पर्य है। 'पुंसा' शब्दका अर्थ मायाबद्ध भोगपरायण जीवसे है (श्रील सनातन गोस्वामीका विचार) 'भगवत्यद्धा' के द्वारा निर्विच्छिन्न तैल धारावत् भक्तिजनित सेवाका निर्देश किया गया है।

इस प्रकार भक्ति अनुशीलनसे धीरे-धीरे भावोद्‌गम होता है तथा सहज रूपमें दास्य रति उदय होती है जिस प्रकार वृत्तासुरकी प्रार्थनासे स्पष्ट है—श्रीमद्भागवत (६.११.२४)—

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः।।६।।

—वृत्तासुर भगवानसे प्रार्थना कर रहा है—जीव भगवानका नित्यदास है, किन्तु अपनी स्वतन्त्र इच्छाके दुरुपयोगसे उसने अपना नित्यदासत्व विस्मरण कर दिया, दुष्परिणामस्वरूप मायाके पाशमें बंधकर संसारमें अनेक प्रकारकी यंत्रणाएँ भोग रहा है। पुनः आपके दासोंका दास बननेकी आशाकी पूर्ति केवल गुरु वैष्णवोंकी अहैतुकी अनुकम्पासे ही हो सकती है। यह दासत्व भाव भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होता है। हे प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि अनन्य भावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें प्राप्त हो। मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही संलग्न रहे।।६।।

छिनु तव नित्य दास, गले बांधि मायापाश, संसारे पाइनु नानाक्लेश।
एवे पुनः करि आश हइया तव दासेर दास, भजि पाई तव भक्ति लेश।।
प्राणेश्वर तव गुण, स्मरुक मन पुनः पुनः, तव नाम जिह्वा करुक गान।
करद्वय तव कर्म, करिया लभुक शर्म, तव पदे संपिनु पराण।।

जीव वस्तुतः भोग्य वस्तु है तथा श्रीकृष्ण भोक्ता हैं। रसिक भक्तोंके साथ भजन करते-करते आनन्दमयी श्रीराधिकाके कैंकर्यकी आशा प्रबल हो जाती है तथा गोपीभाव उदय होता है; यथा श्रीमद्भागवत (१०.२९.३८)—

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः।

त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम –
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम्।।७।।

—श्रीकृष्णकी वंशी ध्वनिसे आकृष्ट होकर कृष्णके निकट आई गोपियाँ कह रही हैं—हे दुःखहारिण! हम अपने गृह, सम्बन्ध, कुटुम्बियोंका परित्याग करके (केवल आपकी सेवा करनेकी आशासे) आपके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुई हैं। आप हमारे प्रति प्रसन्न होओ, हे पुरुषरत्न! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुस्कान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेममिलनकी आकांक्षाकी आग धधका दी है, हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो।।७।।

तव दास्य आशे छाड़ियाछि घर द्वार। दया करि देह कृष्ण चरण तोमार।।
तव हास्य मुख निरीक्षण-कामिजने। तोमार कैंकर्य देह प्रफुल्ल वदने।।

भजनरहस्यवृत्ति—शुकदेव गोस्वामी गोपियोंके भावमें विभावित होकर आलोच्य श्लोक उच्चारण कर रहे हैं—तन्नः प्रसीद; वेणुनाद श्रवणकर गोपियाँ रासस्थलीमें कृष्णके सम्मुख उपस्थित हुईं। अखिलरसामृतसिन्धु ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर गोपियोंके अंतःहृदयस्थित-भाव माधुर्यादिका रसास्वादन करनेके लिए परिहासमूलक वाक्य प्रयोग करने लगे। ब्रजवल्लभियाँ भी श्लेष वाक्योंमें उत्तर देने लगीं।

साधारण रूपमें गोपियाँ कृष्णसे दासी बननेकी प्रार्थना कर रही हैं—'देहि दास्यम्'। श्रीकृष्ण कहने लगे—'हे नव यौवनप्रमत्ता! मेरा दासत्व तो अत्यन्त दुर्लभ है। गोपियोंने उत्तर दिया—हे श्यामसुन्दर! आप तो अपने आश्रित-जनोंकी आशाको पूर्ण करते हैं। आपकी सुन्दर हास्यमय-दृष्टिसे हमलोगोंके हृदयमें तीव्र स्मर प्रज्वलित हुआ है तथा हमें दग्धीभूत कर रहा है। तथापि हम इसका किसी भी प्रकार प्रतिकार नहीं चाहती हैं, आप केवल अपने चरणकमलोंकी सेवा प्रदान कीजिए। अथवा—गोपियाँ कहने लगीं—'हे श्यामसुन्दर! हम युवतियाँ हैं तथा अपने अङ्गोंके द्वारा आपका सुख विधान करना चाहती हैं। हम आपके स्मित हास्य निरीक्षण, अधरामृत आदि उपकरणोंके द्वारा ही आपकी उपासना करना चाहती हैं। हे पुरुष भूषण! तुम इन्द्रनीलमणि स्वरूप, तथा हम गौराङ्गी हैं, तुम तो हमारे अङ्गोंके अलंकार स्वरूप हो।' अथवा श्लेष वाक्यमें गोपियाँ कह रही हैं, 'हम तो आपकी चरणधूलि प्राप्तिकी प्रार्थना नहीं कर रही हैं' 'बृजिनार्दन' नामको

आप सार्थक कर रहे हो—हमें पाप एवं दुःखसे पीड़ित कर रहे हो। हमने पौर्णमासीसे सुना है कि श्रीनारायणकी वक्ष विलासिनी लक्ष्मी भी आपके चरणकमलोंकी शरण लेनेके लिए आती हैं। 'तेऽङ्घ्रिमूलं' किन्तु हम लक्ष्मी नहीं। हम तो ज्योत्सनामयी रजनीमें वृन्दावनकी प्राकृतिक शोभा निरखनेको कौतूहलवश आई हैं। अतः आप वैकुण्ठस्थित लक्ष्मीको ही आश्रय प्रदान करें, हमें नहीं। किन्तु यह स्मरण रखना कि लक्ष्मी आदि भी आपका दासत्व सम्पूर्ण रूपमें स्वीकार नहीं करेंगी। हे पुरुषश्रेष्ठ! गोकुल वधुओंकी प्राप्तिके लिए उत्कण्ठित होकर पुरुष सखाओं सुबलादिको गोपी वेशमें सजाते हो। हे पुरुषभूषण! आपके इस स्वभावसे पुरुष जाति कलंकित हुई है। आप हमें कामसंतप्ता न समझें, हम तो आपकी रमणी भी नहीं हैं, यह तो केवल आपकी कल्पना है।

सिद्ध गोपी भावाश्रय, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२९.३९)—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री–
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणञ्च भवाम् दास्यः।।८।।

—प्रियतम! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली काली-काली अलकें झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर मनोहर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं, तुम्हारे ये मधुर अधर जिनकी सुधा अन्य सुधाको भी पराजित कर रही है; तुम्हारी यह मनोहारी चितवन जो मन्द-मन्द मुस्कानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ जो शरणागतोंको अभय दान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और स्वर्णरेखाके रूपमें लक्ष्मी द्वारा सुशोभित तुम्हारा यह वक्षःस्थल, यह सब देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गई हैं।।८।।

ओ मुख अलकावृत ओ कुण्डल-शोभा। अधर-अमृत-गण्ड-स्मित-मनोलोभा।
अभयद भुजयुग श्रीसेवित वक्ष। देखिया हलाम दासी सेवाकार्ये दक्ष।।

भजनरहस्यवृत्ति—इसमें गोपियोंका अन्तर्हित भाव विद्यमान है।

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर सिद्ध गोपी-भावाश्रयकी स्फूर्तिमें आलोच्य श्लोकका स्मरण एवं कीर्त्तन कर रहे हैं। रसिक चूड़ामणि व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर अपना दाक्षिण्य भाव संगोपन करके व्रजदेवियोंके प्रति उदासीन

भाव प्रकट करके कहने लगे, "हे व्रजदेवियों! आपलोग मेरी बिना मूल्यकी दासी पद पानेकी चेष्टा क्यों कर रही हैं?"

गोपियाँ दैन्य भावसे कहने लगीं, "हे श्यामसुन्दर! आपने हमें अवर्णनीय वेतन प्रदान किया है।" श्यामसुन्दरने मुस्कराकर कहा—वह क्या?

गोपियोंने कहा, "आपने अपनी स्वभावसिद्ध अधर–सुधा, लोभनीय भुजादि स्पर्श, श्रीलक्ष्मीके आश्रयस्वरूप अपने वक्षःस्थलका आलिङ्गन आदि वेतन रूपमें समस्त रमणियोंको प्रदान किया है। हमलोगोंके खंजनपक्षी रूपी नयन आपके अलकावृत्त मुखमण्डल रूपी जालमें आबद्ध हो गये हैं। आपकी अलकावली नहीं, यह पाश है और दोनों कर्णकुण्डल जाल हैं, आपकी अधर–सुधा हमारे नयनरूपी खंजन पक्षीका आहार है। आपके सहास्य दृष्टिरूपी खंजननयन जो भली प्रकार पालित एवं शिक्षित हैं हमारे नयनोंको हरण कर लेते हैं।

आपकी लोभनीय भुजायें व रतिप्रद वक्षःस्थल हमारे हृदयको उपशमित करता है। हे कृष्ण! आपने हमारी वयःसन्धिके पूर्व ही अपने मोहन माधुर्य द्वारा अपने कुञ्ज मन्दिरमें बुलाकर नीलनिधि, पद्मनिधि, जाम्बुनदस्वर्णके कुण्डल–युगलादि रूपी सम्पत्तिका दर्शन कराकर अधरसुधाका भोजन कराया। इन सभी लोभनीय वस्तुओंने हमें विवशकर आपकी दासी बननेको लालायित कर दिया है।" प्रणयरोषके साथ व्रजदेवियाँ कहने लगीं, "हे कृष्ण! आपकी अनुपम रूप सम्पत्तिको देखकर हम दासी बननेकी आशा तो कर रही हैं, किन्तु यह आशा पूर्ण न होकर दुराशामें बदल जायेगी।"

अथवा गोपियाँ तर्जनी अंगुलीसे कृष्णको सम्बोधित करती हुई बोलीं— हे धार्मिक चूड़ामणि! आपके धर्मके स्वरूपके विषयमें हम अच्छी तरह जानती हैं। आप परनारियोंसे सदैव छेड़छाड़ करते रहते हो। वैकुण्ठकी रमणियोंको भी रमणनिमित्त वक्षःस्थलमें धारण करते हो। आपको नारायण क्षमाकर सकते हैं; किन्तु हम नहीं। हमारे पति भी आपको क्षमा नहीं करेंगे, बल्कि महाबली कंससे शिकायत करके आपको दण्ड दिलाएँगे। हम कुलवधुएँ हैं, औपपत्य भाव हमारे लिए अत्यन्त निन्दनीय है। अपना सौन्दर्य माधुर्य दिखाकर आप हमें अपनी किंकरी नहीं बना सकते हैं।

गोपियाँ कृष्णकी अद्भुत रूपमाधुरी देखकर कैसे दासी होती हैं, उसका वर्णन करते हुए व्रजरस रसिक चूड़ामणि महामहोपाध्याय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—

श्यामसुन्दर गोपियोंसे कहते हैं कि मैंने तो तुमलोगोंको किसी वेतन द्वारा क्रय नहीं किया, तब तुम मेरी दासी कैसे हुईं?

इसका उत्तर देती हुई व्रजरमणियाँ कहने लगीं—"वेतनसे भी कोटि-कोटि गुण अधिक तुमने हमें प्रदान किया है। वह महामूल्य निधि क्या है तो सुनो—वयःसन्धिके आरम्भमें ही अपने कुञ्जमन्दिरमें हमें बुलाकर आपने अपने अलकावलिसे आवृत मुखमण्डलका दर्शन कराया। जब आप टेढ़ी पाग बांधते हैं, उसमेंसे घुंघराले कुंचित केशपाश रूपी झरोखोंमेंसे आपके मुखकमलका हम दर्शन करती हैं। फिर आप कोमल कनिष्ठ अंगुलीसे उन्हें भीतर करते हैं तो वह भी आपके सौन्दर्यको प्रस्फुटित करता है। कभी आप ऊँची पाग बांध लेते हैं तो उसमेंसे भी आपके घुंघराले केश लटकते हैं। विश्राम करते समय जब आप अपनी पागको उतार देते हैं तो सारी अलकावली आपके मुखको आवृत कर लेती है। इस प्रकार कभी अनावृत तो कभी ईषदावृत तथा कभी-कभी सम्पूर्ण रूपमें अलकावलीसे मुखारविन्द सुशोभित होता है। हास-परिहासके समय कपोलोंका चुम्बन करनेके लिए आपके कुण्डल दोलायमान होते हैं। मिलनोचित चिह्नोंसे सुशोभित गण्डस्थलकी अपूर्व शोभा विकीर्ण होती है। इस प्रकार आपके मुखरूपी चन्द्रमाको निरख कर गोपियोंका हृदयकुमुद खिल उठता है। इसी अनुपम रूपमाधुरी मूल्य द्वारा आपने हमें मोल ले लिया है।"

यदि कृष्ण कहें कि, "मैं तो धर्म परायण हूँ और तुम परनारी हो, अतः मैं तुम्हें कैसे अपनी दासी बनाऊँ?"

यह सुनकर तर्जनी अंगुलीसे लक्ष्य करके गोपियाँ कहती हैं, "हे धार्मिकप्रवर! वैकुण्ठस्थित नारायणकी लक्ष्मीको तुम अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हो, हमारे सम्मुख वह लज्जावश स्वर्णरेखाके रूपमें वक्षःस्थलपर विराजमान हो जाती है। किन्तु एकान्तमें वह आपके साथ रमण करती है। क्या त्रिभुवनकी कोई भी स्त्री आपका परित्याग कर सकती है? अर्थात् नहीं कर सकती। यही सब अमूल्य सम्पत्ति दर्शन कराकर आपने हमें अपनी दासी बननेके लिए बाध्य किया है।

यथा श्रीमद्भागवत (१०.२९.३३)—

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।

तन्नः प्रसीद परमेश्वर मास्म छिन्द्या
आशां धृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र।।९।।

—हे परमात्मन! आत्म हितैषी महापुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं क्योंकि आप सभी आत्माओंके आत्मा स्वरूप हैं। अनित्य दुःखद पति-पुत्रादिकी सेवा या रति करनेसे क्या प्रयोजन? आप हमपर प्रसन्न होकर कृपा करें। कमलनयन! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पालीपोसी आशा-अभिलाषाकी लहलहाती हुई लताका छेदन मत करो।।९।।

तुमि प्रिय आत्मा नित्य रतिर भाजन। आर्तिदाता पतिपुत्रे रति अकारण।।
बड़ आशा करि आइनु तोमार चरणे। कमलनयन हेर प्रसन्नवदने।।

भजनरहस्यवृत्ति—आत्मदर्शन होनेके पश्चात् जीवका लौकिक पति-पुत्रादिसे सम्बन्ध नहीं रह जाता। संसारको असार समझकर स्वाभाविक कृष्ण रतिमें निमज्जित होता है। इस स्थितिमें जीव विधि-निषेधके आधीन न रहकर रागमार्गीय भक्तिमें प्रवृत्त होकर ऐकान्तिक रूपसे श्रीराधाकृष्णका भजन करता है।

इस स्थलमें गोपियाँ श्रीकृष्णसे कह रही हैं—हमलोग पति आदिका सम्बन्ध चिरकालके लिए छोड़कर आपके सम्मुख उपस्थित हुई हैं हमारे हृदयमें प्रेमका अंकुर उदय हुआ है। अब वह आशारूपी लता बृहद्रूप धारणकर चुकी है। हमलोग तो बाल्यावस्थासे ही आपके प्रति अनुरक्त हुई हैं तथा आपके प्रति प्रेमप्रीति निष्कपट है। आप इस प्रीति-लताका छेदन मत कीजिए। अथवा—आपके आरक्तिम कमलनेत्रोंके दर्शनसे हमारा हृदय स्वाभाविक रूपसे अनुरंजित हो गया है तथा हम आपकी बिनामोलकी दासी बन चुकी हैं।

श्लेष वाक्योंके द्वारा ब्रजदेवियाँ कहने लगीं—"हे अरविन्दलोचन कृष्ण! रात्रिकालमें जिस प्रकार कमल बन्द हो जाता है, उसी प्रकार आपके नेत्र भी अर्धमुद्रित हो रहे हैं। इस प्रकार आप हमारे रूपसौन्दर्य तथा यौवनको देख नहीं पा रहे हैं तथा इसके दर्शनसे वंचित हो रहे हैं। अतः आपका नयन धारण करना व्यर्थ है।" अथवा ब्रजदेवियाँ कहने लगीं, "आपके मनोऽभीष्टको हम समझ गई हैं। आपका अनुचित कर्मोंसे विरत होना उचित है। इसलिए हमलोग अधिक समय यहाँ नहीं ठहरेंगी। आपके हृदयमें जो वासनाप्रसून है उसका परित्यागकर दीजिए।"

श्रीराधापदाश्रयकी अपरिहार्यता, यथा श्रीस्वसंकल्प प्रकाशस्तोत्र प्रथम श्लोक—

अनाराध्य राधा–पदाम्भोज रेणु–
मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भाव–गम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिन्धोरसस्यावगाहः।।१०।।

—जिसने श्रीराधापदाम्भोजरेणुकी आराधना नहीं की, उनकी पदाङ्कित विहारस्थली श्रीवृन्दावनका आश्रय नहीं लिया तथा जिसने उनके गम्भीर भावोंमें निमग्न चित्तवृत्तिवाले भक्तोंकी सेवा नहीं की, वह श्याम–रससिन्धुमें कैसे अवगाहन कर सकता है? अर्थात् कभी नहीं।।१०।।

राधापदाम्भोज रेणु नाहि आराधिले। ताहार पदाङ्क–पूत व्रज ना भजिले।।
ना सेविले राधिका–गम्भीरभावभक्त। श्यामसिंधु रसे किसे हवे अनुरक्त?

भजनरहस्यवृत्ति—इस स्तोत्रको स्मरण करके श्रील भक्तिविनोद ठाकुर श्रीश्रीराधामाधवकी विचित्र सेवा प्राप्तिके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं।

श्याम–रससिन्धुमें अवगाहन करनेके लिए ह्लादिनी स्वरूपिणी श्रीराधारानीकी चरणरेणु–सेवा, केलि विलासस्थल श्रीवृन्दावनधाम एवं उनके प्रिय भक्तोंकी आराधना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे श्रीराधामाधवकी सेवा प्राप्त हो जायेगी यह केवल दुराशामात्र है। जो राधादास्य परित्याग करके श्रीकृष्णके संगकी प्राप्तिकी चेष्टा करते हैं, वे पूर्णिमा तिथिके बिना पूर्ण चन्द्रमाको दर्शन करनेकी व्यर्थ ही चेष्टा करते हैं।

यं एकं गोविन्दं भजति कपटी दाम्भिकतया।
तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम्।।

(स्तवावलि स्वनियदशकं–६)

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां बिना कांक्षति।
किञ्च श्यामरतिप्रवाहलहरीबीजं नयेतां विदुः
ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिदुं परं प्राप्नुयुः।।

(राधारससुधानिधि–८०)

यदि श्याम साक्षात रसराजमय श्रृंगारमूर्ति हैं तो श्रीमतीराधिका मदनाख्य महाभाववती। श्रीमतीराधिका श्रृंगाररसके द्वारा कन्दर्परूप मधुका पान श्यामको कराती हैं—

कृष्णके कराय श्याम रस मधुपान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम।।

(चै. च. मध्य ८.१७०)

श्रृंगाररसको श्याम रस कहा जाता है यह विष्णुदैवत मत है। "श्याम वर्ण अयम् विष्णु दैवतः" (साहित्यदर्पण)—

राधिका उज्ज्वल रसेर आचार्य। राधा माधव शुद्ध प्रेम विचार्य।।
ये धरिल राधापद परम यतने। से पाइल कृष्ण पद अमूल्य रतने।।
राधा पद बिना कभु कृष्ण नाहि मिले। राधिका दासीर कृष्ण सर्व वेदे बोले।।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

श्रीराधा माधवकी विभिन्न लीला–विलासोंकी स्थली वृन्दावनधाम है। श्रीयुगलकिशोर यहाँ विहार करते हुए विचरते हैं तथा अपने चरण चिह्नोंसे वृन्दावनकी भूमिको अंकित करते हैं—राधा–पदाङ्कित धाम वृन्दावन याँर नाम।

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः।।

(श्रीमद्भा. १०.३०.२८)

अवश्य ही यह श्रीकृष्णकी 'आराधिका' होगी। इसीलिए इसपर प्रसन्न होकर श्यामसुन्दरने हमें छोड़ दिया है तथा इसे एकान्तमें अपने साथ ले गये हैं।

रासस्थलीसे जब श्रीकृष्ण (राधाको साथ लेकर) अन्तर्धान हो गये, तब कृष्णका अन्वेषण करती गोपियाँ वनमें कृष्णके साथ राधाके चरणचिह्न देखती हैं तथा उनके भाग्यकी प्रशंसा करती हुई कहती हैं—'कस्याः पदानि चैतानि यातया नन्द सूनुना' समस्त वृन्दावन (गोवर्धन राधाकुण्ड पर्यन्त) श्रीराधा कृष्ण केलिविलास स्थलों तथा पदचिह्नोंसे अंकित है। जातरति साधकको वृन्दावनकी कुञ्जलताओंमें राधाकृष्णकी लीला स्फूर्ति होती है। यही तात्पर्य है वृन्दावन धामका आश्रय ग्रहण करनेका कि विभिन्न लीलाओंका स्मरण तथा उन्हीं भावोंमें आवेश हो। किन्तु ऐसी अनुभूति स्वजातीय व्रजरस–रसिक स्निग्ध महतजनोंके संग तथा उनकी कृपासे ही उपलब्ध होती है। श्रील नरोत्तम ठाकुर कहते हैं—

तार भक्त संगे सदा, रस लीला प्रेम कथा,
जे करे से पाय घनश्याम।

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

श्रीश्रीराधा श्यामसुन्दरके लीलारसमाधुर्यका आस्वादन इस अफुरन्त अनन्त माधुर्यके कल्लोल सिंधुमें अवगाहन करनेवाले रसिक महद्गणोंके संग एवं सेवा द्वारा ही प्राप्त होता है।

श्रीराधा दास्याभिमान; यथा गोस्वामीवाक्य—

अभिमानं परित्यज्य प्राकृतवपुरादिषु
श्रीकृष्ण कृपया गोपीदेहे व्रजे वसाम्यहम्।
राधिकानुचरी भूत्वा पारकीयरसे सदा
राधाकृष्ण विलासेषु परिचर्यां करोम्यहम्।।११।।

"मैं प्राकृत देहका अभिमान परित्याग करके श्रीकृष्ण कृपासे गोपीदेह प्राप्त करूँ तथा व्रजमें निवास करूँ। श्रीराधाजीकी अनुचरी होकर सर्वदा पारकीय रसविलासी राधाकृष्णकी परिचर्या करूँ।।"११।।

स्थूल देहादिते आत्म बुद्धि परिहरि। कृष्ण कृपाश्रये नित्य गोपी देह धरि।।
कबे आमि पारकीय रसे निरन्तर। राधाकृष्ण–सेवा–सुख लभिब विस्तर।।

भजनरहस्यवृत्ति—साधकमें जबतक देहात्मबुद्धि है, तबतक वह भजन राज्यमें प्रवेश नहीं कर सकता। समस्त प्रकारके शरीरगत अभिमान अर्थात् मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ आदि एवं मनगत अभिमान अर्थात् मैं गुणी हूँ, धनी हूँ, पण्डित हूँ आदिका परित्यागकर तृणादपि सुनीच होकर अत्यन्त आर्तिपूर्वक प्रार्थना करें तभी कृष्ण कृपाकी प्राप्ति सम्भव है। समस्त प्रकारके अनर्थ अपराध अभिमान केवल सत्संग द्वारा ही दूर हो सकते हैं। रो–रो कर आर्त, दीन स्वरमें प्रार्थना करो कि "हे श्रीकृष्ण! हे श्रीराधे! आपकी ऐसी कृपा कब होगी कि मैं व्रजमें निवासकर राधाजीकी दासीकी दासीकी दासी बनूँ, व्रजमें निवास पाऊँ तथा नित्यकाल पारकीय रससे राधाकृष्णके विलासमें दिनरात परिचर्या करूँ।" 'गोपी देहे व्रजे वसाम्यहम्।'

ऐसी आर्तियुक्त प्रार्थनासे श्रीराधाजीकी सखी नित्य सिद्धा व्रजगोपियोंकी कृपासे हृदयमें गोपीभाव उदित होता है। गोपीभावके बिना राधाकृष्णकी निभृत निकुञ्ज रहकेलि विलास भूमि वृन्दावनधाम प्राप्त नहीं होता। इस भावकी प्राप्ति श्रीराधाजीकी अंतरंगा (खास कमरेकी सहचरी) सखियोंके आनुगत्यसे ही होती है। सखीवृन्दके अतिरिक्त इस लीलामें किसीका प्रवेश नहीं है। वे ही लीलाका विस्तार करती हैं तथा आस्वादन करती हैं। इन्हींकी कृपासे एकादश भाव तथा पंचदशा उत्पन्न होती है।

युगल चरण सेविबो निरन्तर येइ भावो
अनुरागी थाकिबो सदाय।।
साधने भाविवे जहाँ सिद्ध देहे पाइबे तहाँ
राग पथे ये जे उपाय।।

'पारकीया रसे सदा' शास्त्रमें व्रजके पारकीयरसकी सर्वोत्तमता निर्धारित की गयी है। स्वकीय भावसे श्रीराधाकृष्णकी सेवासे गोलोक वृन्दावन प्राप्त होता है तथा पारकीय भावसे श्रीराधाकृष्णकी निकुञ्ज लीला स्थली व्रज वृन्दावनकी प्राप्ति होती है। इनमें उल्लास रतियुक्ता मञ्जरी सखियाँ ही सर्वोत्तम हैं वे निकुञ्ज रसकेलि लीलाविलासमें निसंकोच रूपसे सेवा करती हैं—

ताम्बूलार्पण–पादमर्दन–पयोदानाभिसारादिभि–
वृन्दारण्य महेश्वरीं प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः।
प्राणप्रेष्ठ सखीकुलादपि किलासङ्कोचिता भूमिकाः
केलिभूमिषु रूपमञ्जरि मुखास्ता दासिका संश्रये।।

(श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, व्रजविलास स्तव–३८)

समस्त धर्मोंका परित्याग करके श्रीराधा पददास्यकी अभिलाषा; यथा श्रीराधारससुधानिधि (३३ श्लोक)—

दूरादपास्य स्वजनान् सुखमर्थकोटिं
सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः।
वर्षन्तमेव सहजाद्भुत–सौख्यधारां
श्रीराधिका–चरणरेणुमहं स्मरामि।।१२।।

—आत्मीय स्वजन सम्बन्धीय सुख, चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा कोटि अर्थादिकी आशा ही अनर्थकी जड़ है, यह जानकर मैंने इन सबका परित्याग कर दिया। सहजाद्भुत आनन्दधारा वर्षणकारी श्रीराधाजीकी पदरेणुका भजन करता हूँ तथा उसे सदा अपने मस्तकपर धारण करता हूँ।।१२।।

स्वजन सम्बन्ध सुख चर्तुवर्ग अर्थ। सकल साधन छाड़ि जानिया अनर्थ।।
सहज–अद्भुत–सौख्य–धारा वृष्टि करि। राधापदरेणु भजि शिरे सदा धरि।।

भजनरहस्यवृत्ति—'दूरादपास्य स्वजनान् सुखमर्थकोटि' अर्थात् श्रीराधाके पादपद्मरेणुके स्मरणमें विघ्न डालनेवाले सगे–सम्बन्धियोंके संगका सुख तथा धनकी लालसाका त्याग करना ही उचित है। प्राकृत विषयोंके प्रति स्वाभाविक

अरुचि तथा श्रीराधा चरणरजमें रुचि ही शुद्ध वैराग्य है। राधानिष्ठ साधक केवल श्रीराधाके चरणपद्म सौरभमें ही आसक्त रहते हैं, श्रीराधा बिना वे श्रीकृष्णमें भी रुचि नहीं लेते। ऐसे श्रीराधापादपद्मनिष्ठ साधकोंको विषयसुख तो तुच्छ लगते ही हैं, अन्य किसी पारमार्थिक साध्य-साधनमें भी वे प्रवृत्त नहीं होते। प्रेम-भक्तिके मार्गमें अन्य उत्तमोत्तम साधन भी बाधा है—

पुण्य जे सुखेर धाम, ना लइयो तार नाम, पुण्य मुक्ति दुई त्याग करि।
प्रेम भक्ति सुधानिधि, ताहे डूबे निरवधि, आर जत क्षार निधि प्राय।।

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

प्रेमीभक्तको पुण्य कर्म, मुक्ति आदि राखके ढेरके समान लगते हैं। वह तो प्रेमभक्ति सुधानिधिमें ही निर्बन्ध रूपसे अवगाहन करना चाहता है, फिर जिसका हृदयभ्रमर श्रीराधाकी परम रसमय चरणरज सौरभसे आकृष्ट हो वह भला और कहीं कैसे जायेगा? अति उत्कृष्ट वस्तुके सुखको पाकर क्या कोई क्षुद्र सुखकी ओर आकर्षित होता है? ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा भजनानन्द अधिक सुखकारी तथा अनिर्वचनीय आनन्दमय है। भजनानन्दका ही गाढ़तम स्वरूप प्रेमानन्द है तथा शब्दोंकी अभिव्यक्तिकी सीमासे परे केवल अनुभूतिकी वस्तु है। इस प्रेमानन्दमें विरहाकुला गोपियोंका प्रेम चरमसीमाका अतिक्रमणकर अनिर्वाच्यतम स्थितिको प्राप्त करता है। गोपियोंकी मुकुटमणि श्रीराधाकी चरणरेणुसे इसी अनिर्वाच्यतम आनन्दकी धारा स्मरणकारी साधककी ओर अनवरत रूपमें झरती रहती है। यह ऐश्वर्य-ज्ञान-गन्धशून्य शुद्ध माधुर्यमय आनन्दधारा सहज है तथा अद्भुत चमत्कारितासे पूर्ण है। यही अर्थ 'सहजाद्भुत सौख्यधारा' का।

'श्रीराधिका चरणरेणुमहं स्मरामि'—श्रीराधादास्य निष्ठ साधक श्रीराधाकी परम दुर्लभ पदरजकी साक्षात् प्राप्तिके अभावमें उसे स्मरण करते हैं। इसका वास्तविक तात्पर्य है—श्रीराधाकी विलासकुञ्जमें लीला तथा लीलामें अभीष्ट-सेवा प्राप्तिकी अभिलाषा। यही गौड़ीय वैष्णवोंकी हार्दिक अभिलाषा है, यही उनकी श्रेष्ठतम साधना है।

साधन स्मरण लीला, इहाते ना कर हेला, काय मने करिया सुसार।

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

साधक इस प्रकार श्रीमती राधाकी चरणरेणुका भजन करते हैं, यथा श्रीराधारससुधानिधि (श्लोक १९८)—

आशास्य दास्यं वृषभानुजाया स्तीरे समध्यास्य च भानुजायाः।
कदा नु वृन्दावनकुञ्जवीथिष्वहं नु राधे ह्यतिथिर्भवेयम्॥१३॥

—हे राधे! हे वृषभानुनन्दिनी! तुम्हारा किङ्करीत्व प्राप्त करनेकी आशासे मैं यमुना तीरपर स्थित होकर वृन्दावन कुञ्जपथकी अतिथि कब बनूँगी?
(श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती)

वृषभानु कुमारीर हइब किङ्करी। कलिन्द नन्दिनी तीरे रब वास करि॥
करुणा करिया राधे ए दासीर प्रति। वृन्दाटवी–कुञ्जपथे हइब अतिथि॥

भजनरहस्यवृत्ति—हे वृषभानुनन्दिनी! मेरे मनमें यह आशा उदित हो रही है कि यमुनाके तीरपर वृन्दावनकी कुञ्जवीथियोंमें होकर जब आप अभिसारके लिए गमन करेंगी तब क्या आप मेरे नयनपथकी अतिथि बनेंगी?
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

—श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपादने अत्यन्त अधीर दशामें श्रीस्वामिनीजीकी सेवा स्मरण करते हुए इस श्लोकको रचना की है। लीला–माधुरीकी स्मृति तथा सेवाके अभावमें उनके चित्तमें विपुल आर्ति एवं उत्कण्ठाका उदय हो रहा है। लीलामाधुरीके आस्वादनमें अपनी अयोग्यताकी अनुभूतिके कारण असह्य दुःख एवं वेदनासे उनके प्राण छट–फटा रहे हैं। किन्तु स्वामिनीजीकी सेवा प्राप्तिकी दृढ़ आशाका हृदयमें संचार हो रहा है। जातरति भक्तोंका एक लक्षण आशाबन्ध ही है। आशाबन्धकी चरमावस्था महाभावमें होती है। व्रजदेवियोंका आशाबन्ध अवर्णनीय है, सुदीर्घ कृष्णविरह दशामें भी सेवा–प्राप्तिकी आशामें किस प्रकार प्राण धारण करती हैं, कृष्णके वचनोंपर विश्वास करती हैं—

आयास्ये भवतो गेहमहमार्य समन्वितः।
यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम्॥
(श्रीमद्भा. १०.४१.१७)

पदकर्ता यही आशा लेकर स्वामिनीजीके चरणोंमें प्रार्थना कर रहे हैं—हा राधे! हा वृषभानुनन्दिनी! तुम्हारे किंकरी–पद प्राप्तिकी आशामें मैं कब यमुनाके तटपर कुञ्जपथकी अतिथि बनूँगी?

हा राधे! तुम वृषभानुराजनन्दिनी हो, वृन्दावनकी अधीश्वरी हो तथा विपुल करुणाकी निधि हो, इसलिए मुझ दीन–हीनकी उपेक्षा मत करना।

अपने प्राण प्रियतमके साथ अपनी निकुञ्जलीला-सेवामें मुझ दासीको नियुक्त करो। तुम जब प्रेमानुरागमें भरी अपने प्राणनाथके निकट अभिसारके लिए वृन्दावन निकुञ्जकी ओर गमन करोगी, तब तुम्हारे आगमन पथपर कुञ्जवीथीमें यमुनातटपर तुम्हारी यह अकिंचन अतिथि स्थिर होकर बैठी रहेगी तथा तुम्हारी कृपा प्राप्त किये बिना वहाँसे नहीं हटेगी। अपनी इस दीन अतिथिको कुञ्जवीथीमें इस प्रकार देखकर तुम्हारे मनमें करुणाका संचार अवश्य होगा। हे स्वामिनी! तुम कृष्ण प्रियतमा हो, उनकी आराधिका हो, अपने प्राणप्रियतमकी आराधनामें यत्किंचित मुझे सेवाका अवसर प्रदानकर कृतार्थ करो। मैं अपनी जीवनसन्ध्यामें तुम्हारी कृपायाची भिक्षु हूँ, मुझे अपनी निशुल्क दासीत्व प्रदान करो। यदि मुझे वंचित करोगी, तो तुम्हारे नामपर कलंक लगेगा। इस कलंकको मैं सहन नहीं कर पाऊँगी।

श्रीराधादास्यमें निरन्तर कृष्णान्वेषण संकीर्त्तन; यथा श्रीराधारससुधानिधि-२५९—

ध्यायन्तं शिखिपिच्छमौलिमनिशं तन्नाम संकीर्त्तयन्–
नित्यं तच्चरणाम्बुजं परिचरन्तन्मन्त्रवर्यं जपन्।
श्रीराधापददास्यमेव परमाभीष्टं हृदा धारयन्
कर्हि स्यां तदनुग्रहेण परमाद्भुतानुरागोत्सवः।।१४।।

—अपना अभीष्ट श्रीराधा पद दास्य हृदयमें धारणकर शिखिपिच्छमौलि श्रीकृष्णका सर्वदा ध्यान करूँ, सर्वदा उनका नाम कीर्त्तन करूँ, उनके चरणकमलोंकी नित्य परिचर्या करूँ और उनके श्रेष्ठ मन्त्रका नित्य जप करूँ। वे किसी भी क्षण मुझपर अनुग्रह करके अनुरागोत्सव प्राप्त करायेंगी।।१४।।

निरन्तर कृष्णध्यान, तन्नाम कीर्त्तन। कृष्ण पादपद्मसेवा तन्मंत्रजपन।।
राधापददास्यमात्र अभीष्ट-चिन्तन। कृपाय लभिब राधारागानुभावन।।

भजनरहस्यवृत्ति—पदकर्ता संकीर्त्तनके द्वारा श्रीराधादास्यमें निरन्तर श्रीकृष्ण अन्वेषणकी अभिलाषाको व्यक्त कर रहे हैं। गौड़ीय वैष्णवोंकी एकमात्र कामना एवं अभीष्ट वस्तु श्रीराधादास्यकी प्राप्ति ही है। उनके कृष्णभजनका लक्ष्य इस अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति है। उनके भजनका मूलमंत्र है—'मदीशानाथत्वे व्रजविपिनचन्द्र व्रजवनेश्वरी तां नाथत्वे।' (मनःशिक्षा-९)

आलोच्य श्लोकमें भी परम अभीष्ट सम्पद श्रीराधादास्यको हृदयमें संजोकर शिखिपिच्छमौलि श्रीकृष्णके चिन्तनका वर्णन है—श्रीकृष्णको कुञ्जमें

आनेमें कुछ विलम्ब हो गया, मदीय अभिमानयुक्ता श्रीराधा मानिनी हो गईं। उनकी प्रसन्नताके लिए श्यामसुन्दर अपनी प्रियाके चरणोंमें शीश नवा रहे हैं। उनका शिखिपुच्छ मुकुट श्रीकिशोरीजीके चरणोंमें भू लुण्ठित हो रहा है। "स्मर गरल खण्डनं मम शिरसि मंडनं" ऐसे मेरी स्वामिनीके वशीभूत धीरललित नायक श्रीकृष्णका ध्यान मेरे हृदयमें परम श्रेष्ठ अनुरागोत्सव उत्पन्न करे। इसी परम सु–रसाल कृष्णसंकीर्त्तनमें मैं निमग्न रहूँ।

श्रीदासगोस्वामी प्रार्थना करते हैं—"राधानाम अभिनव सुन्दर अमृतवत् मनोहर है, कृष्णनाम घन दुग्धकी भाँति सुस्वादु है; हे मेरी क्षुधार्त रसने! इन दोनों अपूर्व वस्तुओंको सुगन्धि अनुरागरूपी हिमके द्वारा रमणीयकर सर्वदा पान करो।"

श्रीस्वामिनीजीकी आराधना श्रीकृष्ण चरणकमलकी परिचर्या, श्रीकृष्णके प्रसाद और निर्माल्य द्वारा करूँ। नित्यसखी तथा प्राणसखी श्रीकृष्णकी सेवा इसी भावनासे करती हैं कि श्रीकृष्ण सेवासे प्राप्त उपहार निर्माल्यादिको वे स्वामिनीको अर्पण करें।

प्राणनाथकी व्यवहारित वस्तुएँ प्राप्तकर स्वामिनीजी अत्यन्त प्रसन्न होंगी। मदीय ईश्वरीकी प्रसन्नतासे मेरे हृदयमें श्रीकृष्ण–सेवामें परम अनुराग उत्पन्न होगा।

जन्म–जन्म श्रीराधादास्यकी प्रार्थना; यथा श्रीराधारससुधानिधि–४०—

तस्या अपाररससारविलासमूर्ते–
रानन्दकन्दपरमाद्भुतसौख्यलक्ष्म्याः।
ब्रह्मादि दुर्लभगतेर्वृषभानुजायाः
कैंकर्यमेव मम जन्मनि जन्मनि स्यात्।।१५।।

—जो अपार रससार श्यामसुन्दरकी विलासमूर्ति हैं, श्रीकृष्णकी परमाद्भुत सौख्य लक्ष्मी है तथा ब्रह्मादिके लिए सुदुर्लभ हैं, उन्हीं श्रीवृषभानु राजनन्दिनीका दासीत्व मुझे जन्म–जन्मातरोंतक प्राप्त हो।।१५।।

अपार रसेर सार विलास मूरति। परम अद्भुत–सौख्य–आनन्द निर्वृत्ति।।
ब्रह्मादिर सुदुर्लभ वृषभानुकन्या। जन्मे जन्मे तार दास्ये हइ येन धन्या।।

भजनरहस्यवृत्ति—पदकर्ता अत्यन्त आर्तस्वरसे श्रीराधाके दासीत्व प्राप्तिके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। इस प्रार्थनाकी उपलब्धि स्थूल देहमें कदापि सम्भव नहीं है। गुरु प्रदत्त मंत्र तथा नामके निरन्तर जपसे साधकको अपने स्वरूपकी

प्राप्ति होती है। अपना स्वरूप उपलब्धि करनेपर साधकके हृदयमें श्रीस्वामिनीके प्रति प्रगाढ़ अनुराग उत्पन्न होता है तथा श्रीराधाके माधुर्यकी स्फूर्ति होती है। वे श्यामसुन्दरकी विलासमूर्ति स्वरूप हैं अर्थात् कुञ्जमें श्रीराधाका घनरस-स्वरूप प्रकाशित हो उठता है तथा अखिलरसमूर्ति श्रीश्यामसुन्दर उसका आस्वादन करते हैं। निखिल रसोंका सार श्रीराधा विलासकी मूर्ति हैं। यही माधुर्य अपाररसका सार है। श्रीराधाका मादनाख्य प्रेम आनन्दके घनविग्रह श्रीगोविन्दके चित्तमें छिपे संभोगानन्दको उच्छ्वलित कर उन्हें किसी भी प्रकार अपनी प्रियासे मिलनके लिए विवश एवं व्याकुल कर देता है। इसीलिए वे कभी स्त्रीवेश धारणकर मिलनके लिए प्रयत्नशील होते हैं तो कभी सखियोंके चरणोंमें प्रणत होते हैं। श्रीस्वामिनी भी मिलन सुखमें श्रीगोविन्दको उनकी सम्भावनासे भी अधिक सम्भोगरसानन्दको अनिर्वचनीय रूपमें प्रदान करती हैं—

रात्रिदिन कुञ्ज क्रीड़ा करे राधा संगे।
कैशोर वयस सफल करिल क्रीड़ा रंगे।।

(चै. च. मध्य-८)

श्रीराधा आनन्दकन्द ब्रजचन्द्रकी ह्लादिनी स्वरूप-शक्ति धीराधीरा नायिका हैं, इसीलिए श्रीनन्दनन्दन पूर्ण रूपसे उनके वशीभूत हैं—'निरंतरंवशीकृत प्रतीति नंदनंदने' (श्रीराधाकृपाकटाक्ष) श्रीमतीजी आनन्दकन्द श्रीकृष्णकी परम अद्भुत सौम्य लक्ष्मी हैं। नारायणवक्ष विलासिनी लक्ष्मी चंचला हैं तथा ऐश्वर्य-गर्व पूर्ण हैं, किन्तु व्रजकी प्रेमलक्ष्मी श्रीराधा सौम्य स्वभावयुक्त माधुर्यमयी हैं तथा सौम्य धीर स्वभावा हैं। वे प्रेममें कृष्णमयी, रसमें गौराङ्गी, ऐश्वर्यमें सर्वलक्ष्मीमयी और माधुर्यमें प्रधान-गोपिका हैं।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ब्रह्मादिके लिए दुर्गम गति हैं। ब्रजके मधुर रसको समझनेमें ऐश्वर्यज्ञानयुक्त ब्रह्मा असमर्थ हैं। वे तो श्यामसुन्दरकी पौगण्ड लीलाको भी नहीं समझ सके तथा गोवत्स, गोपबालकोंका अपहरण करके अपराधी बने। फिर परम निगूढ़ कैशोर लीलाके दुर्गम रहस्यको किस प्रकार समझेंगे? इस परम रहस्यमयी निकुञ्ज लीलाके केलि विलासमें सेवाका अधिकार एकमात्र व्रजगोपियोंको ही प्राप्त है। सखियोंके आनुगत्य बिना इस सेवाकी प्राप्ति सर्वथा ही असम्भव है।

सखी बिना एइ लीलाय अन्यरे नाहि गति।
सखी भावे जेई ताँरे करे अनुगति।।
राधाकृष्णेर कुञ्जसेवा–साध्य सेई पाय।
सेई साध्य पाइते आर नाहिक उपाय।।

(चै. च. मध्य–८)

श्रीकिशोरीजीकी किंकरियाँ सदैव सेवामें तत्पर रहती हैं। 'कैंकर्य' शब्दमें सेवाकी उत्कट भावनाकी अभिव्यक्ति है—कैंकर्य अर्थात् 'किं करोमि' मैं क्या करूँ? मैं क्या सेवा करूँ? मैं क्या सेवा कर सकती हूँ? शुद्ध राधादास्य या मंजरीभावकी इसमें अभिव्यंजना है। श्रीवृषभानुनन्दिनीके इसी कैंकर्यकी मुझे जन्म–जन्ममें प्राप्ति हो।

ब्रजदेवियोंके आनुगत्यमें सेवा करना ही तत्तत्भावेच्छामयी कामानुगा भक्ति है यही इस श्लोकका गूढ़ तात्पर्य है।

श्रीराधादास्यमें श्रीराधानाथका अन्वेषण, यथा राधारससुधानिधि–४२—

राधानाम सुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकांक्षितासुचरतं वृन्दाटवीवीथिषु।
तत् कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतां–
तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः।।१६।।

—मेरी जिह्वा सदासर्वदा राधानाम–सुधारस आस्वादनमें विह्वल हो जाये। मेरे पाद उसी वृन्दावन वीथीमें विचरण करे, जिसमें वृषभानुनन्दिनी विचरण करती हैं। मेरे दोनों कर श्रीस्वामिनीजीकी सेवामें नियुक्त रहें, हृदय उनके चरणकमलोंका ध्यान करे। श्रीराधाजीके भावोत्सवसे उनके प्राणनाथ श्रीश्यामसुन्दरके प्रति केवला रति प्रकट हो, यही मेरी ऐकान्तिक प्रार्थना है।।१६।।

जिह्वा हउक सुविह्वल, राधा नाम गाने। वृन्दारण्ये चल पद, राधा अन्वेषणे।।
राधा–सेवा कर–कर, राधा स्मर मने। राधाभावे माति भज राधाप्राणधने।।

—श्रीगोस्वामी पाद दैन्यपूर्वक सर्वेन्द्रियों द्वारा श्रीराधा भजनकी ओर उनके भावोत्सवके द्वारा श्रीराधाके प्राणनाथके चरणोंमें रति प्राप्तिकी प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीराधाके नाम सुधारसका आस्वादनकर कब मेरी जिह्वा भाव विह्वल होगी? जिह्वा द्वारा हार्दिक प्रेम सहित श्रीराधानामके अमृतका जो आस्वादन

सुख प्राप्त होता है वह अतुलनीय है। अपने उपास्यके नाम-संकीर्त्तनसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होकर सुख लाभ होता है। वाग् इन्द्रिय अर्थात् जिह्वापर नामका मुख्यतः आविर्भाव होता है तथा वह नाम उच्चारण करनेवाले तथा श्रवण करनेवाले—दोनोंको ही आनन्द प्रदान करता है।

नामसंकीर्त्तनं प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि।
बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमार्षमन्त्रवत्।।
तदेव मन्यते भक्तेः फलं तद्रसिकैर्जनैः।
भगवद्प्रेम सम्पत्तौ सदैवाव्यभिचारतः।।

(बृ. भा. २.३.१६४-१६५)

—श्रीकृष्णकी प्रेमरूप सम्पत्ति प्राप्तिके लिए नामसंकीर्त्तन ही बलवान तथा श्रेष्ठ साधन कहा गया है, जो परम आकर्षक मन्त्रकी तरह श्रीकृष्णको साधककी ओर खींच लाता है। इसलिए भगवद् रसिकजन संकीर्त्तनको ही भक्तिका फलस्वरूप मानते हैं। भगवत् प्रेम सम्पत्ति प्रदान करनेमें वह सर्वदा अमोघ ही है।

रसकी घनमूर्ति भगवानके रसस्वरूपका आस्वादन उनके नाममें ही निहित है। जिनके नामका ऐसा आस्वादन है, वे नामी श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधाके नामके आस्वादनसे विह्वल हो उठते हैं। प्रणयीके नाममें प्रीति होना प्रेमका स्वभाव है। एक समय जटिलाके कठोर पहरेके कारण श्रीकिशोरीजी श्यामसुन्दरसे नहीं मिल पाईं। उनके विरहमें श्यामसुन्दर मूर्च्छित हो गये। मधुमंगल श्रीकिशोरीजीके पास गये, किन्तु पहरेके कारण वे गृहसे निकल नहीं सकीं। उन्होंने श्रीकृष्णकी विरहज्वाला शान्त करनेके लिए एक पत्रपर 'राधा' अक्षरद्वय लिखकर भेज दिया। उसे पाकर श्रीकृष्णकी मूर्च्छा दूर हो गई और उन्होंने कहा—"सखे! तुम्हारी दी हुई वस्तुसे मैं परितृप्त हो गया।"

द्वितीय चरणमें श्रीपाद प्रार्थना कर रहे हैं—श्रीराधा पदांकित धाम वृन्दावनकी वीथिकाओंमें मेरे चरण विचरण करें तथा भ्रमणके समय हृदयमें यही भावना रहे कि इन्हीं मार्गोंपर मेरी स्वामिनी अपने प्राणनाथसे मिलनेके लिए गमनागमन करती हैं, उनकी चरणरज व्रजके प्रत्येक कणको प्रेम मकरन्दमें विभावित करती है। मेरी ईश्वरीकी विलास-लीला मेरे हृदयपटलपर अनुभूत हो। उनके चरणोंकी स्पर्शित धूलिकणा मेरे अंगोंकी अलंकार स्वरूप हो।

श्रीकृष्णके प्रियपार्षद उद्धवजीने भी इसी धूलिकणकी प्राप्तिकी अभिलाषासे व्रजमें तृण गुल्मादिके रूपमें जन्म लेनेकी इच्छा की थी। हृदयकी इस

लालसाकी पूर्ति व्रजकी वीथियोंमें श्रीकिशोरीजीकी पदरेणु स्मरणसे ही होगी। 'तत्कर्मैव करः करोतु'—मेरे दोनों हस्त श्रीस्वामिनीजीके नाना प्रकारके पुष्प, माल्य, अलंकारादिके ग्रंथन, निर्माणमें नियुक्त रहें। जब स्वामिनी विलास श्रमसे क्लान्त हो जायेंगी, तब मुझे उनके पादमर्दनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो। 'तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रति' श्रीराधाके भावोत्सव अर्थात् उनका श्रीगोविन्दके साथ लीला-विलास; कभी श्रीमतीजीके मानिनी होनेपर गोविन्द चाटुवाक्यसे मेरी प्रार्थना करेंगे—'हे सुन्दरि! हे दयावती! तुम राधाको प्रसन्नकर मेरी विरह-ज्वाला शान्त करो।' उनकी विनती सुनकर मैं उनका हाथ पकड़कर स्वामिनीके पास ले जाऊँगी। अपनी स्वामिनीके साथ उनके प्राणप्रियतमके मिलन करानेमें ही मेरी गति तथा समस्त सौभाग्य हो। श्रीराधाके पादपद्मोंमें आश्रित जानकर गोविन्द मुझपर अवश्य कृपा करें।

श्रीराधापादपद्ममें एकमात्र गतिकी प्रार्थना, यथा विलापकुसुमाञ्जलि (८)—

देवि दुःखकुलसागरोदरे दूयमानमतिदुर्गतं जनम्।
त्वं कृपाप्रबलनौकयाद्भुतं प्रापय स्वपदपंकजालयम्।।१७।।

हे देवि श्रीराधिके! मैं दुःख समूहरूप समुद्रमें असहाय अवस्थामें डूब रहा हूँ। आप अपनी कृपारूप दृढ़ नौकामें चढ़ाकर अपने चरणकमलोंका आश्रय दीजिए।।१७।।

दुःख सिन्धु माझे देवि दुर्गत एजन। कृपा पोते पादपद्मे उठाओ एखन।।

भजनरहस्यवृत्ति—सेवाशून्य अनुभूतिमें श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीपाद अत्यन्त विरहाकुल हो आश्रयरहित होकर मानो गम्भीर दुःख सागरमें डूबने लगते हैं। उक्त श्लोकको स्मरणकर 'देवि' शब्दके द्वारा श्रीस्वामिनीजीकी सम्यक् प्रकारसे स्तुति करने लगे। दिव् धातुका अर्थ है क्रीड़ाशील अर्थात् श्रीकृष्णके साथ प्रेम-क्रीड़ा-लीला। इसीको स्मरण करते हुए श्रीदास गोस्वामीजी देवी शब्दका प्रयोग कर रहे हैं। 'कृष्ण-क्रीड़ा पूजार वसति नगरी' (चै. च. मध्य) 'देवि कही द्योतमाना परमासुन्दरी'।

हे श्रीमती राधिके! मैं आपके चरणकमलोंकी सेवासे वंचित होकर इस दुस्तर संसार सागरमें डूब रहा हूँ, अपनी कृपारूपी नौकामें आश्रय प्रदानकर मुझे अपनी चरण-सेवाका अधिकार प्रदान कीजिए। आपकी चरण-सेवाके अतिरिक्त विरहीकी क्लान्ति दूर करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। संसारमें सभी कुछ दुःखदायक है, केवल आपकी सेवा ही सर्वोपरि आनन्दमय है।

श्रीराधाके अनुचरीत्वके अभिमानमें मञ्जरियोंकी अनन्य भावनिष्ठा है। मञ्जरियाँ श्रीराधाके पदकमल-दास्यमें ही अनन्यचित्त हैं, श्रीहरिके अंग-संगकी वासना उनके सपनेमें भी नहीं आती। श्रीकृष्ण बलपूर्वक उनकी कंचुकी खींचकर कुछ कहने लगते हैं, तो वे ऐंठकर कहती हैं, 'हे नन्दनन्दन! इस देहको स्पर्श करनेकी स्पर्धा मत करना।'

श्रीराधाकिंकरियोंका श्रीस्वामिनीके प्रति जो भाव है, वह इतना विशुद्ध या आत्मेन्द्रिय सुखवासनाशून्य है कि उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपाधि तक नहीं है।

श्रीराधादास्य रतिमें ही केवलानुरक्ति, यथा तत्रैव-१६—

पादाब्जयोस्तव विना वरदास्यमेव
नान्यत्कदापि समये किल देवि याचे।
सख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं
दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्।।१८।।

—हे देवि! आपके चरणकमलोंके सर्वश्रेष्ठ दास्यत्वको छोड़कर मुझे अन्य किसी भावकी अभिलाषा नहीं है। आपके सखीत्वपदको मैं सदा नमस्कार करता हूँ, मेरा दृढ़ अनुराग आपके दासीत्वमें ही रहे—मैं शपथपूर्वक यह कहता हूँ।।१८।।

तव पद दास्य विना किछु नाहि मागि। तव सख्ये नमस्कार आछि दास्य लागि।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोकमें श्रील रघुनाथदास गोस्वामीपाद अपने स्वरूपावेशमें अपनी स्वामिनीके चरणोंमें आर्तिमय प्रार्थना कर रहे हैं—'हे मेरी स्वामिनी! अपने चरणकमलोंकी सौभाग्य सेवा प्रदानकर मुझे अपना दासीत्व प्रदान करो।' यह दास्य 'वर' अर्थात् श्रेष्ठ है क्योंकि श्रीराधाकी दासियाँ सम्भ्रम एवं संकोचभावसे मुक्त हैं, उनकी सेवा संकोच रहित तथा सु-रसाल है। इस दास्यकी अभिलाषा श्रीमन्महाप्रभुकी करुणाका अवदान है तथा यही गौड़ीय वैष्णवोंका हार्दिक अभिप्राय है। मञ्जरियाँ दासी होकर भी मधुर रसकी पात्री हैं, निभृत-निकुञ्जकी रहकेलि-लीलामें उनका असंकोच रूपसे प्रवेश तथा सेवा सम्पादनकी सुदक्ष सुचारुता है। युगलकिशोरको कब किस वस्तुकी आवश्यकता है, इसे भी भलीभाँति जानती हैं। हृदयका मर्म जानकर सेवा करना, यही मञ्जरियोंका वैशिष्ट्य है। मञ्जरियोंकी मनोरम सेवापरिपाटी देखकर स्वयं रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दरके मनमें भी ऐसी

ही सेवाकी अभिलाषा जाग्रत होती है। स्वाधीनभर्तृका श्रीराधा श्यामसुन्दरको आदेश देती हैं—"मेरी अस्तव्यस्त वेशभूषाका संस्कार करें, अन्य सखियाँ देखेंगी तो उपहास करेंगी।" स्वामिनीका मनोभाव समझकर किंकरी वेश–रचनाकी सामग्री ले आई हैं। श्रीमतीजी श्यामसुन्दरको अलता (यावकरस) लगानेका आदेश देती हैं, वे तो चरणयुगलका सौन्दर्य निरखकर प्रेममें विवश हो रहे हैं, सात्त्विक विकारोंसे सारे अंग पुलकित और कम्पित हो रहे हैं, तूलिका पकड़नेमें असमर्थ हो रहे हैं। उनकी दशा देखकर श्रीमतीजी मृदु–मधुर हास्य करती हैं तथा रतिमंजरीको अलता लगानेका आदेश देती हैं। इस तरहकी अनेकों लीला–माधुरियोंका आस्वादन किङ्करियाँ निर्बाधरूपसे करती हैं। श्रीमतीजीसे मिलनका सुयोग प्राप्त करना हो या उनके मान प्रसादनका अवसर हो, श्यामसुन्दरको मञ्जरियोंका ही आश्रय लेना पड़ता है। नन्दालयमें रात्रिभोजन लीलामें श्यामसुन्दर जानेके लिए व्याकुल हैं—'मिलन होगा कि नहीं?' वे दासीके पैरको हाथ लगाकर इशारेसे पूछते हैं। दासी भी उनके हाथको अपने पैरसे दबाकर संकेत देती है कि 'होगा'। इन मञ्जरियोंका अपना कुछ नहीं, सब कुछ युगल–सुखके लिए है।

पद–मर्यादामें प्रियनर्म या प्रेष्ठ सखियोंकी श्रेष्ठता है, किन्तु सेवा–सौभाग्यकी श्रेष्ठता किंकरीवृन्दकी ही है।

ब्रजकी मधुररसयुक्त कामात्मिका भक्ति दो भागोंमें विभाजित है—सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। ब्रज यूथेश्वरी श्रीराधा श्रीचन्द्रावली, श्यामला आदिका श्रीकृष्णके प्रति जो मधुर–भाव है, उसे सम्भोगमयी तथा श्रीरूप, रति आदि मंजरियोंकी श्रीमती राधिकाके प्रति स्नेहाधिक्य युगलसेवाका भाव होता है, उसे तत्तद्भावेच्छात्मिका कहा जाता है। 'इसका नामान्तर ही सखी भाव है—ये सखियाँ तीन प्रकारकी होती हैं'—राधा स्नेहाधिका, कृष्ण स्नेहाधिका तथा उभय स्नेहाधिका। सखियाँ पाँच प्रकारकी हैं—(क) सखी, (ख) नित्यसखी, (ग) प्राणसखी, (घ) प्रियसखी, और (ङ) परमप्रेष्ठ सखी।

प्राणसखी और नित्यसखी राधा स्नेहाधिका हैं तथा मंजरी कहलाती हैं। इनमें सख्य तथा सेवाभावका तादात्म्य रहता है। ये श्रीराधाके चरणकमलोंमें अनन्य चित्त होकर रहती हैं तथा स्वप्नमें भी श्रीकृष्णके अंगसंगकी वाञ्छा नहीं करती हैं।

अनन्य श्रीराधापदकमल दास्यैक रसधी।
हरे संगे रंग समये नापि दधति।।

(वृन्दावनमहिमामृत १८.९४)

मञ्जरियोंकी प्रीतिके विषयालम्बन श्रीयुगलकिशोर हैं। आलिंगित युगलकिशोरका संदर्शन, राधाकृष्णका वार्तालाप (संजल्प), उनके चर्वित ताम्बूलका जिह्वाके द्वारा रसास्वादन, उनके रतिमर्दनसे उत्थित अतुलनीय सुगंध एवं युगलके पाद-सम्वाहन संस्पर्श आदिके द्वारा वे सभी प्रकारकी रतियोंका अनुभव करती हैं। संप्रयोग रूप सम्भोगका आस्वादन भी वे करती हैं, इस विषयमें श्रीकृष्णदास कविराज कहते हैं—

राधारस्वरूप कृष्णप्रेम कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव पुष्प पाता।।
कृष्णलीलामृत यदि लताके सिंचय।
निज सुख हइते पल्लवाद्येर कोटिगुण सुख हय।।

गोविन्दलीलामृत ग्रन्थमें भी इस प्रकारका वर्णन मिलता है कि जब श्रीकृष्ण राधाजीका स्पर्श करते हैं, तब उनकी मंजरियोंके अंगोंमें भी सात्विक भाव उदित होते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा राधाके अधर-रससुधाका पान करनेपर नित्य एवं प्राण सखियोंमें भी वही भाव संक्रमित होते हैं तथा उन्हें उन्मादिनी कर देते हैं। यथा विलापकुसुमाञ्जलि (१)—

त्वम् रूप मञ्जरि सखि! प्रथिता पुरेऽस्मिन्
पुंसः परस्य वदनं नहि पश्यसीति।
बिम्बाधरे क्षतमनागत-भृर्तकाया
यत्ते व्यधायि किमु तच्छुकपुंगवेन।।

श्रीराधाके अनुरूप ही उनकी मञ्जरियोंमें समर्था रति है जो अहैतुकी, अलौकिक अतर्क्य एवं अचिन्त्य रूपमें विराजित है। 'सुनिलेओ भाग्यहीने ना हय प्रतीति' (चै. च.) उक्त प्रार्थनामें श्रीदास गोस्वामी पाल्यदासी भावको पानेकी ही प्रार्थना कर रहे हैं 'रसोऽस्तु' शब्दके द्वारा नवनवायमान रूपमें प्रेमवर्धनकी अभिव्यक्ति करते हैं तथा श्रीस्वामिनीजीसे प्रार्थना करते हैं कि चाटुवाक्य या अन्य वर देकर वंचना न करें।

श्रीराधाजीका दास्य प्राप्तिके लिए निष्कपट काकुति प्रार्थना (स्तवमाला श्रीगांधर्वा संप्रार्थनाष्टक-२)—

हा देवि काकुभरगद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके! निज गणे गणनां विधेहि।।१९।।

—हे देवि गान्धर्विके! मैं विशिष्ट पीड़ासे पीड़ित हूँ, अतः आज भूमिपर दण्डके समान गिरकर, अतिशय कातरतासे भरी हुई गद्गद वाणीसे प्रार्थना करता हूँ कि, मुझ अज्ञानी जनपर कृपा करके, अपने परिकरोंमें मेरी भी गिनती कर लीजिए।।१९।।

भुमे दण्डवत पड़ि बहु आर्ति स्वरे। काकुभरे गद्गद् वचने जोड़ करे।।
प्रार्थना करि गो देवि, ए अवूध जने। तव गणे गणि, कृपा कर अकिञ्चने।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीरूप गोस्वामीपाद स्वामिनीजीके पादपद्मोंमें अत्यन्त आर्तिमय प्रार्थनाकर रहे हैं कि अपनी अंतरंग परिचारिकाओंमें मेरी भी गणना कर लीजिए।

श्रीमन्महाप्रभुके नित्यसिद्ध परिकर होते हुए भी वे अपनेको अजातरति साधक मान रहे हैं। दैन्य और प्रेम कोई बहुत अधिक भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। "परमोन्नत प्रेमकी परिपक्व दशामें स्वाभाविक दैन्य उत्पन्न होता है और दैन्यकी परिपक्वतासे अजस्र प्रेमका विस्तार होता है, अतएव दैन्य और प्रेममें कार्य–कारणता अथवा जन्य–जनकत्व सम्बन्ध देखा जाता है।" (बृ. भा. २.५.२२४–२२५)

'काकुभर गद्गदयाद्य वाचा' के द्वारा प्रेमका बाह्य लक्षण चित्त द्रवित होना सूचित हो रहा है। तथा 'हा' आदिसे उत्कण्ठा व्यक्त हो रही है। गद्गद वाणी अर्थात् काकुति विनतीपूर्वक प्रार्थना कर रही हैं।

ऐसी प्रबल उत्कण्ठाके कारण व्रजदेवियाँ अपने स्वजन, आर्यपथका त्याग करनेमें समर्थ होती हैं। अतिशय ममताके कारण वे विघ्न–बाधाओंका भी उल्लंघन कर लेती हैं। इसी उत्कण्ठामय ममताके वशीभूत हो श्रीकृष्ण अपनेको गोपियोंका चिरऋणी मानते हैं।

'देवि गान्धर्विके' के द्वारा श्रीराधाके सौभाग्यकी महिमा प्रकाशित हो रही है अर्थात् जो माधुर्य एवं सौन्दर्यकी खान हैं तथा मनोहारी नृत्य, गायन, वादन आदि लालित्यपूर्ण कलाओंके द्वारा कृष्णके मनको रिझाती हैं। उत्कण्ठा–प्रधाना दैन्यमयी–रति रागमार्ग साधकोंकी सम्पत्ति है।

दैन्य—"सर्व गुण सम्पन्न होते हुए भी अपनेको अधम अपकृष्ट जानना तथा सामर्थ्यहीन समझना ही दैन्य है।" (श्रील सनातनगोस्वामी)

दैन्य ही भगवत् कृपाको आकर्षित करता है तथा कृष्ण-कृपाका भाजन बनाता है। भक्ति विरुध्द दैन्य सर्वदा वर्जनीय है। दैन्य वस्तुतः बाह्य आचरणके द्वारा नहीं अपितु हृदयसे प्रकट होता है।

अन्तरे बाहिरे सम व्यवहार अमानी मानद हब।
श्रीकृष्ण संकीर्त्तने श्रीकृष्ण स्मरणे सतत मजिया रब।

श्रीकृष्ण मनोमोहिनी राधाके दास्यपद प्राप्तिकी प्रार्थना (श्रीराधारससुधानिधि-३९)—

वेणुं करान्निपतितं स्खलितं शिखण्डं,
भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराजसूनोः।
यस्याः कटाक्ष शरघात-विमूर्च्छितस्य,
तां राधिकां परिचरामि कदा रसेन।।२०।।

—जिनके कटाक्ष-शराघातसे विमूर्च्छित श्रीनन्दनन्दनके हाथोंसे वंशी गिर जाती है, मोर पंखका चूड़ा स्खलित हो जाता है एवं पीताम्बर भ्रष्ट हो जाता है, मैं उन श्रीराधाकी रससहित परिचर्या कब करूँगा?।।२०।।

याँहार कटाक्षशरे, श्रीकृष्ण मूर्च्छित। कर हैते वाँशि खसे, शिखण्ड स्खलित।।
पीतवस्त्र भ्रष्ट हय, से राधा-चरण। कबे आमि रस योगे करिब सेवन।।

भजनरहस्यवृत्ति—"जिस अनुरागसे उद्भूत तृष्णा नवनवरूपमें, विचित्र रूपमें प्रकाशित होती है वही अनुराग असमोर्द्ध चमत्कारिक रूप प्रकाशित करते हुए महाभाव अवस्थामें पहुँचता है। इस प्रकारके भाव प्राप्तिके निमित्त लुब्ध व्यक्ति ही रागमार्गके अधिकारी हैं।"

'तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्'

(भ. र. सिंधु १.२.२९१)

भाव भक्तिमें रुचि प्रधान होती है। मधुर जातीय रागानुगा भजनमें रुचि होनेसे श्रीराधा माधवके रूप, गुण लीलादि (श्रवण कीर्त्तन) आस्वादनका अनुभव होता है। इसी प्रकारके भजनसे नित्यसिद्ध मञ्जरियोंकी सेवा परिपाटी बोधगम्य होती है।

प्रस्तुत श्लोकमें श्रीसरस्वतीपाद कानु-मनोमोहिनी श्रीराधाकी रससहित परिचर्याकी प्रार्थना कर रहे हैं।

मादनाख्य महाभाव अखिलरसामृतमूर्ति श्रीकृष्णके अंतरालमें किस प्रकार प्रभाव करता है—यही इस श्लोकका अंतर्निहित रहस्य है।

पद्मादि सखियाँ किसी प्रकार प्रलोभन देकर श्रीकृष्णको चन्द्रावलीके कुञ्जमें ले गईं। इधर परम विरहावस्थामें श्रीमतीजी कातर हैं। चतुर किंकरी युक्तिपूर्वक उन्हें वहाँसे लाकर श्रीमतीजीके सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। कान्तके आनेसे वामताका संचार हुआ तथा स्पर्श निषेधके साथ कपट कोप प्रदर्शित करते हुए श्रीराधाने कटाक्षपात किया। श्रीराधा महाभावकी प्रतिमूर्ति हैं श्रीकृष्णके हृदयमें सुखका संचार करना ही महाभावका कार्य है। मादनाख्य–महाभावने अखिलरसामृतमूर्ति श्रीकृष्णके अन्तरालमें अनन्त अनिर्वचनीय भावोंका संचारकर उन्हें वाचालसे मूक बना दिया। श्रीमतीजीके कटाक्षपात तथा नयन बाण बेधनसे श्रीकृष्ण आनन्दमूर्च्छामें निमग्न हो गये जैसे कोई वीरपुरुष रणक्षेत्रमें शराघातसे मूर्च्छित होता है, उसका धनुषबाण मुकुट, वस्त्र अलंकार सब अस्तव्यस्त हो जाते हैं। वैसे ही इस कन्दर्परणमें एक नयनबाण लगनेसे अप्राकृत नवीनमदनके हाथकी मुरली, शिरका मोर मुकुट, पीताम्बर स्खलित हो गये और मूर्च्छा आ गई। जिनके कटाक्षपातसे ब्रजसुन्दरियाँ मदनबाणसे जर्जरित होकर धराशायी हो जाती हैं, श्रीराधाके कटाक्षसे वे ही मदनमोही मूर्च्छित हो गये। जिस वेणुके सुमधुर स्वरसे शत–शत ब्रजसुन्दरियाँ बाणबिद्ध हरिणियोंकी तरह पीड़ासे छटपटाती हैं, वही वेणु कम्पित हस्तसे निकलकर धराशायी हो रही है। माधवका शिखिपिच्छ चूड़ा गोप रमणियोंके मनको मुग्ध करता है, जो व्रजके विलासका प्रतीक है, वही श्रीराधाके कटाक्षपातसे धूलमें लोट रहा है। जो पीताम्बर नवजलधर स्थित सौदामिनिकी तरह कनक रेखाके रूपमें परम शोभाका विस्तार करता है, उसे देखकर ब्रजरमणियाँ अपना कुल गौरव पत्यागकर देती हैं, वह पीत उत्तरीय भी भ्रष्ट हो गया है। धीरललित नायककी यह दशा श्रीराधाके कटाक्षपातसे हो रही है।

श्रीराधाके कटाक्ष बाणसे आनन्दरसमूर्ति मूर्छित हैं। इस आन्नदमूर्छाको दूर करनेकी श्रीमतीजी अनेक प्रयत्न कर रही हैं, पर मूर्छा नहीं टूटती। अब रस किंकरीकी सेवा आरम्भ होती है। मधुर स्वरमें किंकरीने मदन रागका आलाप किया। इसकी शिक्षा उसने श्रीस्वामिनीजीसे प्राप्त की है। प्रेम मूर्छित नायककी मूर्छा भंग कराकर किंकरीने श्रीस्वामिनीजीका प्रियतमसे मिलन कराया। यही दासीकी रस परिचर्या है। युगलका मधुर विलास आरम्भ कराया। विलासान्तमें सुशीतल जल, ताम्बूल, माल्य, बीजनादि द्वारा सेवा सौभाग्य प्राप्तिकी कामना करती हैं।

श्रीराधादास्य प्राप्त रतियुक्त साधकका परिचय श्रीमद्भागवत (११.६.४६) में दिया है—

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि।।२१।।

हे प्रभो! हमने आपकी धारण की हुई माला, चन्दन, वस्त्र एवं आभूषणोंको धारण किया। हम आपकी जूठन खानेवाले सेवक हैं। इसलिए हम आपकी मायापर अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेंगे। (अतः प्रभो! हमें आपकी मायाका डर नहीं है, डर है तो केवल आपके वियोगका)।।२१।।

तोमार प्रसाद माला गन्ध अलङ्कार। वस्त्रादि परिया दिन यायत आमार।।
तोमार उच्छिष्टभोजी दास परिचये। तव माया जय करि अनासक्त हये।।

भजनरहस्यवृत्ति—कृष्ण सेवाविमुख जन निजभोगोंमें तत्पर होकर शयन, आसन, भ्रमण, आवास, क्रीड़ा आदि भोग क्रियाओंका अनुष्ठान करते हैं। यदि इसी क्रियाको भगवत सम्बन्धीय बनाकर अनुष्ठान किया जाय तो जीवका नित्य मंगल होता है। श्रीकृष्णके उपभुक्त अवशेष माल्य, गन्ध, वस्त्र, अलंकारादिके सेवनके प्रति यदि जीवका लोभ हो तो वह भवबन्धनमें नहीं बंधता। उद्धवजी श्रीभगवानसे यही कहते हैं कि आपके उच्छिष्ट प्रसादको प्राप्तकर जीव मायाके दासत्वसे मुक्त हो जाता है। हरिभक्तिविलासमें वर्णित है कि विष्णु नैवेद्य आदिमें संशय करनेवालेको अनन्तकालतक नरक वास मिलता है।

महाप्रसादकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। कुत्तेके मुखमें गिरा हुआ महाप्रसाद भी परम पवित्र है तथा ब्राह्मणके लिए भी ग्रहणीय है।

प्राचीन विग्रह अथवा महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित विग्रहोंको निवेदित प्रसाद अत्यन्त पावन है तथा ग्रहणीय है, किन्तु असंयमी व्यक्ति यत्र-तत्र विग्रह-स्थापन करके प्रसाद वितरण करते हैं, वह उचित नहीं है—

श्रुति स्मृति पुराणादि पंचरात्र विधिं बिना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरूत्पातायैव कल्पते।।

(नारदपंचरात्र)

श्रुति, स्मृति, पुराणादि एवं पंचरात्रकी विधिको छोड़कर ऐकान्तिकी हरिभक्तिका जो आचरण करता है, वह केवल उत्पातको ही उदय करनेवाला होता है। श्रीकृष्णके उच्छिष्टका नाम 'महाप्रसाद' है। जब भक्त उस

महाप्रसादको पा लें तब उनके उच्छिष्टको महा–महाप्रसाद कहते हैं। श्रीचैतन्य चरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपाद कहते हैं—

भक्तपद धूलि आर भक्त पद जल।
भक्त भुक्त अवशेष एइ तिन महाबल।।

इन तीनोंके सेवनसे श्रीकृष्णकी प्रेमाभक्ति उदय होती है—इन तीनोंमें महान बल है।

साधक भक्तोंके लिए भी सिद्ध भक्तके आचरणका अनुकरण विधेय नहीं है। किसी समय श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी एवं नरहरि प्रभु श्रीबंशीदास बाबाजीकी भजन कुटीमें दर्शनके लिए उपस्थित हुए। बाबाजी चायका भोग लगाकर वितरण कर रहे थे। विनोदबिहारीजी तथा नरहरि प्रभुको भी चायका प्रसाद मिला। विनोदबिहारीजीने उसे प्रणाम करके रख दिया, ग्रहण नहीं किया। नरहरि प्रभुके जिज्ञासा करनेपर श्रीविनोदबिहारीजीने दार्शनिक युक्ति देते हुए कहा कि, "महाभागवत द्वारा सेवनीय वस्तु हमारे लिए अनुपयुक्त भी हो सकती है। महादेवजीने कालकूट विषका पान किया, वे समर्थ हैं किन्तु साधारण व्यक्ति यदि विषपान करे तो मृत्यु निश्चित है। साधकके लिए तो केवलमात्र भक्ति शास्त्रोक्त विधिका पालन करना ही उचित है।"

अपराह्न नित्यलीलाके विषयमें गोविन्दलीलामृत (१९.१) में वर्णन है—

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमण–कृते क्लृप्तनानोपहारां
सुस्नातां रम्यवेशां प्रियमुखकमलालोकपूर्ण प्रमोदाम्।
श्रीकृष्णञ्चापरान्हे व्रजमनुचलितं धेनुवृन्दैर्वयस्यैः
श्रीराधालोकतृप्तं पितृमुखमिलितं मातृमृष्टं स्मरामि।।२२।।

—मध्याह्न लीलाके उपरान्त अपराह्नकालमें श्रीराधाने अपने घरमें जाकर स्नानकर, वेशभूषा धारणका अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णके लिए श्रीयशोमतीके आदेशानुसार कर्पूरकेलि व अमृतकेलि इत्यादि नाना प्रकारके उपहारोंको प्रस्तुत किया तथा वनसे व्रजको आते हुए प्रियतमके मुखकमलके दर्शनकर पूर्ण प्रमोदको प्राप्त हुईं। उधर श्रीकृष्ण भी गौओं व सखाओंके साथ व्रजको आते समय मार्गमें श्रीराधाके दर्शनसे परितृप्त हो श्रीनन्दादि पितृगणसे मिले तथा मातृगण द्वारा स्नानादिकसे मार्जित हो विराजे। ऐसे श्रीराधाकृष्णका मैं स्मरण करता हूँ।।२२।।

श्रीराधिका गृहे गेला, कृष्ण लागि विरचिला, नानाविध खाद्य उपहार।
स्नात रम्य वेश धरि, प्रिय मुखेक्षण करि, पूर्णानन्द पाइल अपार।।
श्रीकृष्णापराह्नकाले, धेनु मित्र लइया चले, पथे राधा मुख निरखिया।
नन्दादि मिलन करि, यशोदा मार्जित हरि, स्मर मन आनन्दित हइया।।

भजनरहस्यवृत्ति—मध्याह्न लीलामें श्रीराधाकृष्णकी विविध जलक्रीड़ा, पाशा–खेला, दोललीला तथा हासपरिहास लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। नन्दगृहमें श्रीस्वामिनीजी अपने प्रियतमको अपने हस्तकमलसे नहीं खिला पाती हैं। अपनी इस सेवावाञ्छाको वह मध्याह्नमें पूर्ण करती हैं। इधर कृष्ण भी अपने सखाओंके साथ गायोंको चरानेके लिए वनप्रदेशमें प्रवेश करते हैं, वनप्रदेशकी शोभाको निरखते हैं और किसी बहाने उनसे अलग होकर स्वामिनीजीके पास पधारते हैं। स्वामिनीजीके मनोरम, आकर्षक मुखारविन्दको देखकर कृष्णकी जो दशा होती है उसका वर्णन पूर्व श्लोकमें हुआ है। मध्याह्न लीलाके पश्चात् श्रीराधाजी अपनी सखीवृन्दके साथ अपने गृह जावटमें प्रत्यावर्तन करती हैं तथा श्यामसुन्दर भी अपनी गाय बछड़े एवं सखा मण्डलीके साथ वनसे लौटते हैं।

श्रीस्वामिनीजी अपने गृहमें चंचल चित्तसे प्रियतमसे मिलनोत्कण्ठापूर्वक कार्यमें व्यस्त होती हैं। श्रीकृष्ण आगमनके समय सखावृन्द कोलाहल करते, श्रृंगादि बजाते उनके साथ चलते हैं तथा गौओंके खुरसे उड़ती रजको देखकर व्रजवासी अत्यन्त आनन्दित होते हैं। श्रीकृष्णागमन रूपी वर्षाकालके आते ही, आकाशमें गोधूलिरूपी मेघमालाएँ छा गईं, वंशीगानरूपी अमृतकी धारा बरसने लगी और गौओंके रंभानेके रूपमें मेघ गरजने लगे। अतएव व्रजवासी रूपी चातकसमूह अत्यन्त सतृष्ण हो समीप आ पहुँचे। गोचारणके लिए जाते समय कृष्ण आगे चलते हैं तथा लौटते समय बलदेव प्रभु आगे रहते हैं।

श्रीकृष्ण जब जावटग्रामसे होकर निकलते हैं तब श्रीराधा गवाक्ष रन्ध्रोंसे उनके दर्शन करती हैं। श्रीकृष्ण भी अपनी प्रियाके दर्शनको ललकते हुए कभी साक्षात् रूपमें दर्शन करते हैं तो प्रियाजीसे कुछ पानेकी याचना करते हैं। इसके पूर्व कि प्रियाजी दें वे झपटकर चोरकी भाँति उनके चित्तको चुरा लेते हैं। मेरी स्वामिनी भी कम नहीं; वह भी प्रियतमके चित्तको चुरा लेती हैं। अब वे दोनों एक–दूसरेके चित्तसे कार्य करते हैं—

कृष्ण चित्त स्थिता राधा, राधा चित्त स्थितो हरि।
जीवने मरणे नित्यं श्रीराधा कृष्णौ गतिर्मम।।

(श्रीलजीव गोस्वामीपाद)

ऐसे श्रीयुगलकी सेवा करना ही मेरी काम्य वस्तु है। श्रीकृष्ण अपने गृह नन्दालयमें पहुँचते हैं। यशोदाजी अपने लालाके गोरज धूसरित मुखको आँचलसे परिष्कार करती हैं, आरती करती हैं तथा गोदमें बैठाकर स्तनपान कराती हैं। कुछ समय पश्चात् कृष्ण गोदोहनके लिए जाते हैं। लौटकर आनेपर यशोदाजी उन्हें स्नान कराकर अति प्रेमपूर्वक श्रीराधा द्वारा प्रेषित मिष्ठान्न पकवान खिलाती हैं। इन सब लीलाओंका दर्शन श्रीराधाकी किंकरियाँ करती हैं तथा लौटकर सारा वृत्तान्त अपनी व्याकुला आतुरा स्वामिनीको सुनाती हैं। जो इस लीलाका स्मरण चिन्तन करता हुआ हरिनाम करेगा उसे श्रीस्वामिनीजीकी कृपासे इस लीलाकी सेवा प्राप्तिका अधिकार प्राप्त होगा।

।।इति श्रीभजनरहस्ये पंचमयाम साधनम्।।

षष्ठयाम—साधन

सायंकालीन भजन—भाव

(सन्ध्याके पश्चात् छह दण्ड)

सिद्धिके बाह्य लक्षण, शिक्षाष्टकके षष्ठ श्लोकमें वर्णित हैं—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गद रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति।।१।।

—प्रभो! आपका नाम ग्रहण करते समय, मेरे नयन अश्रुधारासे, मेरा मुख गद्गद वाणीसे और मेरा शरीर पुलकावलियोंसे कब व्याप्त होगा?।।१।।

प्रेम धन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन। दास करि वेतन मोरे देह प्रेम धन।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रेम धनके बिना दरिद्र जीवन व्यर्थ है। प्रभो! आप मुझे सेवकके रूपमें ग्रहणकर मुझे वेतनके रूपमें अपना प्रेम-धन प्रदान करें।

भावका स्वरूप बताया गया है—भक्तिरसामृतसिन्धु (१.३.२) में—

प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्यभिधीयते।
सात्विकाः स्वल्पमात्रा स्युरत्तापाश्रुपुलकादयः।।२।।

—प्रेमकी प्रथमावस्थाका नाम भाव है। भावावस्थामें पुलक, अश्रु, कम्पादि सात्विक भाव स्वल्पमात्रामें अर्थात् धूमायित रूपमें उदित होते हैं।।२।।

प्रेमेर प्रथमावस्था भाव नाम तार। पुलकाश्रु स्वल्प हय सात्विक विकार।।

भजनरहस्यवृत्ति—भावको रति भी कहते हैं। इसे पूर्ण विकसित भक्तिरूप प्रेमका अंकुर माना गया है। शुद्धसत्त्व विशेष-स्वरूप प्रेमरूप सूर्यकी किरण-सदृश एवं रुचिके द्वारा चित्तको स्निग्ध अर्थात् आर्द्रकारिणी (कृष्णानुशीलन) को भाव कहते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने उक्त श्लोककी टीकामें इस प्रकार लिखा है—पूर्वोक्त साधन भक्ति रुचि (भगवद् प्राप्तिकी आनुकूल्य अभिलाषा और सौहार्द अभिलाषा) के द्वारा चित्तकी आर्द्रता सम्पादन करनेपर उसे भावभक्ति कहते हैं। उसका स्वरूप

है—शुद्धसत्त्वविशेषात्मा। शुद्धसत्त्व कहनेसे भगवानकी स्वरूपशक्तिकी स्वप्रकाश सम्विद् वृत्तिका बोध होता है। शुद्धसत्त्वविशेष पदसे स्वरूपशक्तिकी दूसरी ह्लादिनी नामक महाशक्तिका बोध होता है, इससे शुद्धसत्त्व विशेषमें उक्त ह्लादिनीकी सर्वोच्चावस्था महाभाव भी अन्तर्भुक्त है, ऐसा समझना होगा। अतएव सम्वित् और ह्लादिनी दोनों शक्तियोंके सम्मिलित सार–स्वरूपमें भगवानके नित्य परिकरोंके हृदयमें तादात्म्यभावसे अवस्थित आनुकूल्य इच्छामय परम–प्रवृत्तिको ही शुद्धसत्त्वविशेषात्मा समझना चाहिए। दूसरे सरल शब्दोंमें श्रीकृष्णके नित्य प्रियजनोंके आधारमें स्थित नित्यसिद्ध भावको ही शुद्धसत्त्वविशेषात्मा कहा जाता है, यह भावभक्ति, प्रेमभक्तिरूप सूर्यकी प्राथमिक किरणोंके समान है, इसलिए इसे प्रेमांकुर भी कहते हैं।

भावका स्वाभाविक कार्य कृष्ण–स्वरूप तथा कृष्ण–लीलाके स्वरूपको प्रकाश करना है। उत्पत्ति भेदसे भाव दो प्रकारका होता है—(१) साधनाभिनिवेशज तथा (२) श्रीकृष्ण और कृष्णभक्त प्रसादज भाव।

महत्संगसे जीव भगवद्भक्ति साधनमें प्रवृत्त होता है तथा उसमें रुचि उत्पन्न होती है, पश्चात् भगवानके प्रति आसक्ति और अंतमें भाव प्राप्ति होती है, यह साधनाभिनिवेशज–भाव है।

बिना किसी साधनके जो भाव अकस्मात् उदय हो जाता है, उसे श्रीकृष्ण प्रसादज भाव या श्रीकृष्णभक्त–प्रसादज भाव कहते हैं। साधारण रूपसे साधनाभिनिवेशज भाव ही लक्षित होता है, प्रसादज भाव विरलोंमें ही देखा जाता है।

श्रीकृष्ण–प्रसादज भाव कृष्णके वरदान, दर्शन अथवा अंतःकरणमें स्फूर्तिसे प्राप्त होता है। आन्तर प्रसादका उदाहरण श्रील शुकदेव गोस्वामी हैं। श्रीमन्महाप्रभुके अवतारमें ये तीनों प्रसादज भाव अनेक स्थानोंपर दिखाई देते हैं। श्रीमन्महाप्रभुको देखकर असंख्य लोगोंको भावोदय हुआ था। जगाई और मधाईने वरदान द्वारा प्राप्त किया तथा श्रीजीव गोस्वामीजीने आन्तर प्रसादज भाव प्राप्त किया था।

श्रीकृष्णभक्त प्रसादज भाव प्राप्ति—श्रीनारद मुनिकी कृपासे ध्रुव और प्रह्लादको भगवद् भाव प्राप्त हुआ था। श्रीरूप सनातन आदि पार्षदोंकी कृपासे असंख्य लोगोंके हृदयमें भक्तिके भाव उदित हुए थे।

स्थायी भावके लक्षण, यथा (भ. र. सि. १.३.२५, २६)—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः।।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने।।३।।

—भाव उदय होनेपर साधकमें क्षान्ति (क्षमा), अव्यर्थकालत्व, विरक्ति मानशून्यता, आशाबन्ध, उत्कण्ठा, नामकीर्त्तनमें रुचि, कृष्णके गुणगानमें आसक्ति और कृष्णकी लीला-स्थलियोंमें प्रीति—ये सब लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।।३।।

क्षोभेर कारण-सत्त्वे क्षोभ नाहि हय। सदा कृष्ण भजे नाहि करे कालक्षय।।
कृष्णेतर-विषये विरक्ति सदा रय। मान थकिले ओ अभिमानी नाहि हय।।
अवश्य पाइबे कृष्णकृपा आशा करे। कृष्ण भजे अहरहः व्याकुल अन्तरे।।
हरे कृष्ण नाम गाने रुचि निरन्तर। श्रीकृष्णेर गुणाख्याने आसक्ति विस्तर।।
प्रीति करे सदा कृष्णवसतिर स्थाने। एइ अनुभाव भावाङ्कुर विद्यमाने।।

(क) **क्षान्ति—**क्रोध या चंचलताका कारण उपस्थित होनेपर भी शान्त रहनेको क्षान्ति कहते हैं। साधकमें स्वतः ही क्षमागुण प्रकाश होता है। उदाहरण स्वरूप परीक्षित महाराजने मुनि बालक श्रृंगीके द्वारा अभिसम्पात पाया तथा आसन्न मृत्यु जानकर भी वे अशांत न हुए, अपितु धीरस्थिर चित्तसे हरिकथा श्रवण करने लगे।

(ख) **अव्यर्थकालत्व—**समय व्यर्थ न जाय, इसलिए निरन्तर हरिभजनमें तत्पर रहनेका नाम अव्यर्थकालत्व है।

(ग) **विरक्ति—**सांसारिक विषय-भोगोंमें स्वाभाविक अरुचिका नाम विरक्ति है।

(घ) **मानशून्यता—**जाति, वर्ण, आश्रम, धन, सौन्दर्य, उच्चपदादिसे अभिमान उत्पन्न होता है। इन सबके रहनेपर भी हृदयमें मान न रहे वही मान शून्यता है।

(ङ) **आशाबन्ध—**श्रीकृष्ण मुझपर अवश्य ही कृपा करेंगे—इस प्रकार दृढ़ विश्वासके साथ भजनमें मनोनिवेश करनेका नाम आशाबन्ध है।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीने विलापकुसुमाञ्जलि (१०२) में अपनी आशाको इस प्रकार व्यक्त किया है—

आशा भरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं में
प्राणैव्रजेन च वरोरु वकरिणापि।।

अर्थात् 'हे वरोरु राधे! मेरी आशा अमृतसमुद्रको प्राप्त करनेकी भाँति—अत्यन्त दुर्लभ है। मैं उसे प्राप्त करनेकी आशामें बड़ी उत्कंठासे जीवनके दिन काट रहा हूँ। अब तुम मुझ दुःखीके ऊपर दया करो। तुम्हारी कृपाके बिना मेरा जीवन, मेरा व्रजवास और तो क्या, कृष्णदास्य—यह सब कुछ व्यर्थ है।'

(च) **समुत्कण्ठा—**अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त प्रगाढ़ लोभ ही समुत्कण्ठा है। वृत्रासुरकी प्रार्थनामें यह उत्कण्ठा दिखाई देती है।

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं पियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

(श्रीमद्भा. ६.११.२६)

(छ) **नाम गाने सदा रुचि—**जितने प्रकारके भजन हैं, उन सबमें श्रीनाम-भजन ही सर्वश्रेष्ठ है, इस विश्वासके साथ निरन्तर हरिनाम लेनेको ही 'नामकीर्त्तन' में रुचि कहा जाता है। श्रीनाममें रुचिका होना परम श्रेय प्राप्तिकी कुञ्जी है। कृष्णनाम साधन और साध्य दोनों ही हैं। 'हरे कृष्ण महामंत्र' ही सर्वोत्तम नाम है, इसी की शिक्षा श्रीगौरसुन्दरने दी है।

वर्तमान कालमें बहुत लोग अभक्तोंके रचित, कल्पित रसाभासयुक्त पदको नाम-मन्त्र समझते हैं; किन्तु ये शास्त्रयुक्त मंत्र नहीं हैं तथा इनका कीर्त्तन करना उचित नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुने आदेश दिया है—

'इहा विना ना बोलिबे आर न बलाइबे।

(ज) **गुणाख्यानमें आसक्ति—**श्रीकृष्णके गुणोंका आख्यान अर्थात् गुणमयी मधुर लीलाओंके वर्णन और श्रवण करनेमें जातभाव भक्तोंकी पिपासा नहीं मिटती और भी सुननेकी इच्छा होती है—आसक्ति बढ़ती जाती है।

(झ) **तद्वसति-स्थलमें प्रीति—**श्रीवृन्दावन, श्रीनवद्वीप आदि भगवद्धामोंमें वास करनेकी अभिलाषाको तद्वसति-स्थलमें प्रीति कहते हैं। धाम वासका लाभ तभी है, जब शुद्ध भक्तोंका संग हो।

गौर आमार ये सब स्थाने करिल भ्रमण रंगे।
से सब स्थान हेरिब आमि प्रणयि भकत संगे।।

अथवा

धाम वासी जने प्रणति करिया मागिब कृपार लेश।।

(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

शरीरके द्वारा यदि धामवास सम्भव न हो तो मन-ही-मन धामवास करे और शुद्ध भक्तके साथ श्रीमद्भागवतादिका श्रवण-कीर्त्तन करे, तो यह भी धामवासके समान है।

भोग और मोक्षकी कामना करनेवाले कर्मी ओर ज्ञानियोंमें यदि उल्लिखित भावका कोई चिह्न दिखाई पड़े तो उसे भावका प्रतिबिम्ब या रत्याभास समझना चाहिए। यदि अज्ञ व्यक्तियोंमें भक्तोंके संगसे भावके चिह्न दिखाई दें तो उसे छायारूप भक्त्याभास कहा जा सकता है।

प्रगाढ़ भावावस्था आनेपर साधकमें जो अनुभाव उदय होते हैं, भक्तिरसामृतसिंधुमें दिये गये हैं (२.२.२)—

नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम्।
हुंकारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता।।
लालास्त्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्कादयोऽपि च।।४।।

—अंतःकरणके भावोंको प्रकट करनेवाले बाहरी विकारोंको अनुभाव कहते हैं; जैसे—नृत्य, विलुंठन (भूमिपर लोटना), गान, जोरसे चिल्लाना, अंगोंका मरोड़न, हुंकार, जंभाई, दीर्घ-स्वाँस, लोकापेक्षा त्याग, लार टपकना, जोरसे हँसना, चक्कर आना और हिचकी।।४।।

नृत्य, गड़ागड़ि, गीत, चीत्कार हुंकार। तनु फोले हाई उठे श्वास वार वार।।
लाकापेक्षा छाड़े, लालास्त्राव अट्टहास। हिक्का घूर्णा बाह्य अनुभाव सुप्रकाश।।

भजनरहस्यवृत्ति—भावोंकी समृद्धि होनेपर श्लोकस्थ भाव प्रकट होते हैं। साधक लोकापेक्षा त्यागकर भगवानके नामका कीर्तन करते हुए, नृत्य करते हैं। भक्तोंकी इन क्रियाओंको बहिर्मुखजन नहीं समझ पाते हैं। भावुक भक्तोंके हावभाव प्राकृत जीवोंसे सम्पूर्ण रूपमें पृथक् होते हैं। कभी-कभी कपटी व्यक्ति लाभ, पूजा प्रतिष्ठाकी आशासे शुद्ध भक्तोंके क्रियाकलापोंका अनुकरण करते हैं। एकबार नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरको सर्पका नृत्य देखकर

श्रीकृष्णकी कालीयदमन लीलाका स्मरण हो आया तथा वे नृत्य करने लगे। अन्यान्य भक्तगण उनकी चरणधूलिको मस्तकपर लगाकर अपनेको धन्यातिधन्य मानने लगे। कोई ईर्ष्या परायण ब्राह्मण हरिदास ठाकुरकी नकल करने लगा। किन्तु कोई भी भक्त उसके प्रति आकृष्ट नहीं हुए बल्कि वह ब्राह्मण सँपेरेके द्वारा प्रताड़ित हुआ।।४।।

भक्तिरसामृतसिंधुमें अष्टसात्विक विकार इस प्रकार वर्णित हैं (२.३.१६)—

ते स्तम्भ–स्वेद–रोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।।५।।

भावके अष्ट–सात्विक विकार हैं—स्तम्भ, घर्म (पसीना), रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय अर्थात् मूर्च्छा।।५।।

स्तम्भ स्वेद रोमाञ्च ओ कम्प स्वर भेद। वैवर्ण्य–प्रलय–अश्रु विकार–प्रभेद।।

भजनरहस्यवृत्ति—जीवके शुद्ध सत्वमें, जो चित्तकी क्रिया है, वह जब विभावित होकर क्रियाकी सहायता करती है, उस समय उसमें एक ऐसा स्वाभाविक वैचित्र उदित होता है जो चित्तको विभिन्न प्रकारसे उत्फुल्ल करता है, इन्हीं बाह्य विकारोंको उद्भास्वर कहते हैं। ये विकार (नृत्यादि) अनेक प्रकारके होते हैं। चित्तके विभावके पोषक जो अनुभाव उदित होते हैं, वे ही उद्भास्वरके रूपमें शरीरमें व्याप्त होते हैं।

जब चित्त साक्षात् रूपमें विभावित होता है, तब उसी चित्तको सत्त्व कहते हैं। इस सत्त्वसे जो भावसमूह उत्पन्न होते हैं, उन्हें सात्त्विक भाव कहते हैं। स्तम्भ कम्पादि सात्त्विक विकारोंके लक्षण हैं। जब साधकका चित्त सत्त्व–भावसे तादात्म प्राप्त करके अपनेको प्राणके निकट समर्पण करता है तब प्राण विकार युक्त होकर शरीरमें प्रचुर क्षोभ उत्पन्न करता है, उसी समय स्तम्भ आदि विकार उदित होते हैं। नृत्य आदिमें सत्त्वसे उत्पन्न भाव साक्षात् क्रिया नहीं करता, बल्कि बुद्धि द्वारा उत्तेजित होकर क्रिया करता है। परन्तु स्तम्भादिमें बुद्धिकी अपेक्षा न कर सात्त्विकभाव साक्षात क्रिया करता है। इसीलिए अनुभाव और सात्विक भावको पृथक्–पृथक् माना गया है।

प्राण किसी अवस्थामें दूसरे चार भूतों (भूमि, जल, तेज और आकाश) के साथ पंचम भूतके रूपमें अवस्थित रहता है। कभी–कभी स्वप्रधान होकर अर्थात् वायुप्रधान होकर जीवके शरीरमें विचरण करता है। जिस समय

वह भूमिस्थ होता है, तब स्तम्भ लक्षित होता है। जलाश्रित होनेपर अश्रु, तेजस्थ होनेपर वैवर्ण और स्वेद लक्षित होता है। जब वह आकाशाश्रित होता है, तब प्रलय या मूर्च्छा होती है तथा जब वह स्वप्रधान (वायुके आश्रित) होता है, तब मन्द, मध्य, तीव्र भेदसे रोमांच, कम्प और स्वर-भेद प्रकाशित होते हैं।

हर्ष, भय, आश्चर्य, विषाद एवं अमर्ष (खेद, क्रोध, ग्लानि) के कारण वाक् आदि रहित जड़ताको 'स्तम्भ' कहा जा सकता है। हर्ष, भय और क्रोधादिके कारण शरीरकी आर्द्रता अर्थात् पसीनेको 'स्वेद' कहते हैं। आश्चर्य, हर्ष, उत्साह और भयसे जो शरीरकी रोमावलि खड़ी हो जाती है, उसे रोमांच कहते हैं। विषाद, विस्मय, क्रोध, हर्ष और भयसे वाणीके गद्‌गद होने आदि पर स्वरभेद उदित होता है। भय, क्रोध और हर्ष आदिसे जो कँपकँपी पैदा होती है, उसे 'वेपथु' कहते हैं। विषाद, रोष और भय आदिसे शरीरका जो वर्ण विकार पैदा होता है उसे 'वैवर्ण' कहते हैं। हर्ष, रोष और विषाद आदि द्वारा जो आँखोंसे जल निकलता है, उसे अश्रु कहते हैं। आनन्दके आँसू शीतल होते हैं तथा क्रोधादिके गर्म होते हैं। सुख और दुःख द्वारा चेष्टाशून्यता, ज्ञानशून्यता, जड़ता एवं भूमिपर गिर जाना आदिको 'प्रलय' कहते हैं।

सात्त्विक भाव सत्त्वके तारतम्यानुसार उत्तरोत्तर धूमायित, ज्वलित, दीप्त, उद्दीप्त तथा सुदीप्त रूपमें प्रकाशित होते हैं। निष्कपट शुद्ध भक्तमें साधन क्रमसे ये सात्त्विक भाव हृदयमें प्रतिफलित होते हैं। किन्तु अभिनयमें तथा संसारमें अपने कार्यकी सिद्धिके लिए बहुतसे लोग इन भावोंका प्रदर्शन करते हैं। वह केवल दिखावामात्र है, शुद्ध भक्तिके भाव नहीं हैं।

सिद्ध-देहमें जीव अप्राकृत कृष्णदास है। दास्य रति उदित होनेपर अपने प्राकृत परिचयको तुच्छ जानने लगता है। यथा, महाप्रभुके वाक्य (पद्यावली-६३)—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुःपदकमलयोर्दासदासानुदासः ।।६।।

—मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या वर्णी नहीं तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी भी नहीं हूँ। मैं स्वतः प्रकाशमान निखिल परमानन्द

स्वरूप पूर्णामृतसिन्धु गोपियोंके भर्त्ता श्रीश्रीराधावल्लभके चरणोंके जो दास वैष्णव हैं, उनके दासोंका भी अनुदास हूँ।।६।।

विप्र, क्षत्र, वैश्य, शूद्र कभु नाहि आमि। गृही, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति, स्वामी।।
प्रभूत परमानन्द–पूर्णामृतावास। श्रीराधावल्लभदास–दासेर अनुदास।।

भजनरहस्यवृत्ति—वस्तुतः जीव अप्राकृत अखिलरसामृतसिन्धु श्रीकृष्णचन्द्रके दास हैं—

अकेला ईश्वर श्रीकृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय तैछे करे नृत्य।।

(चै. च. आदि–५)

जीव मायाबद्ध होकर इस नश्वर जड़ देहाभिमानमें स्वयंका स्त्री, पुरुष एवं नाना प्रकारसे परिचय देते हैं। कलियुग पावनावतारी श्रीगौरसुन्दरने कलिहत मानवोंको अपने मुखारविन्दसे उपदेश दिया है—हमलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण अथवा ब्रह्मचर्यादि आश्रमसे बंधे हुए नहीं हैं। हमलोगोंका शुद्ध परिचय है—'गोपी भर्त्तुपदकमलयोर्दास–दासानुदासः'।

जीव मायाबद्धताके कारण पूर्व जन्मोंकी वासना तथा संस्कारोंके क्रमसे नवीन देहको प्राप्त करता है तथा किसी–न–किसी वर्णाश्रममें जन्म लेता है। मृत्युके पश्चात् अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करता है, यही कर्मचक्र कहलाता है। जीवको अपने शुद्ध स्वरूपकी अनुभूति सद्‌गुरु चरणाश्रय कर, पूर्व–पूर्व महाजनों द्वारा आचरित भजन पथका अवलम्बन करनेसे होती है। नाम–भजन करते–करते जड़ाभिमान दूर होता है, शुद्ध अप्राकृत चिन्मय–भाव प्रकाशित होते हैं तथा शुद्ध कृष्ण–सेवोपयोगी चिन्मय शरीरकी उपलब्धि होती है। जड़ शरीरकी भाँति ही शुद्ध चिन्मय शरीर भी हस्त पदादि समन्वित स्वरूप है।

शुद्ध चित् स्वभावमें केवल मात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं तथा अन्य सभी जीव स्त्री। जीवके चित्के गठनमें वस्तुतः स्त्री–पुरुष चिह्न नहीं होते, किन्तु देहके स्वभाववशतः जीव स्त्री पुरुष अभिमान होता है। साधन भजनके माध्यमसे वे शुद्ध देह प्राप्त करते हैं। जिनकी मधुर रसमें स्पृहा होती है, वह रसिक भक्तोंके आनुगत्यमें साधन भजन करते–करते, अपनी वासना तथा स्वरूपानुसार सिद्ध देह (गोपी देह) प्राप्त करते हैं। योगमाया अघटन घटन पटीयसी शक्ति ही रसकी व्यवस्था करती है।

साधने भाविवे जहाँ सिद्धिते पाइबे ताहाँ
केवल मात्र पक्व अपक्व विचार।।

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

दासानुदास—ब्रज गोपियोंके आनुगत्य बिना श्रीयुगलकिशोरकी मधुर-सेवामें किसीका भी अधिकार नहीं है। उन सखियोंमें भी सखियोंकी अनुगत मञ्जरी सखियोंके आनुगत्यमें भजन करनेसे ही दासी पदकी प्राप्ति होती है। इन व्रजदेवियोंकी भावनानुसार ही श्रीकृष्णकी सेवा-भावना साधनकालमें अभीष्ट है। भावमार्गमें अपनेको किसी व्रजगोपीकी परिचारिका मानकर किसी व्रजदेवी (ललिता सखी) के आनुगत्यमें उनके निर्देशानुसार श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते हैं। शृंगार रसोपासनामें अपनेको परकीया या परोढ़ा अभिमान करते हैं।

कोई-कोई व्यक्ति अपनेको ललिता और विशाखा मानकर, पुरुष देहको स्त्रीका रूप बनाकर सखी बनकर भजन करते हैं। ऐसा करके अपना और दूसरोंका सर्वनाश ही किया करते हैं। 'मैं ललिता हूँ', 'मैं विशाखा हूँ' यह मायावादियोंकी अहंग्रहोपासना हो जाती है। तथा ललिता-विशाखा आदिके चरणोंमें भी वे अपराधी होकर घोर नरकको प्राप्त होते हैं। जीव कदापि श्रीमती राधाकी नित्य किंकरी रूप-मञ्जरी अथवा ललिता आदि नहीं हो सकता है। ये सखियाँ जीवकोटिकी नहीं हैं, ये तो श्रीमती राधाकी कायव्यूह स्वरूपा हैं। जीव साधनकालमें शृंगार रसोपासनामें इन सखियोंके अनुगत होकर ही श्रीराधाकृष्णकी सेवा करें। अपनेमें परकीया या परोढ़ा अभिमान कर ऐसी-भावना करे कि ब्रजगोपी-गृहमें जन्म लेकर किसी विशेष गोपके साथ विवाहित अप्रसूतिका एक गोपकिशोरी है।

यह किशोरी परकीया भावयुक्त, श्रीराधाके आनुगत्यमें श्रीकृष्णसेवाके लिए प्रबल लालसावती साधिका होती है। इसी भावकी सिद्धि होनेपर गोपीभाव प्राप्त होता है।

ब्रजगोपी भाव, हइबे स्वभाव,
आन भाव न रहिबे।।

रागमार्गमें साधक देह और सिद्ध देह दोनों प्रकारकी सेवानिष्ठ भावनाका भक्तिरसामृतसिंधुमें इस प्रकार वर्णन है (१.२.२९५)—

सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः।।७।।

—जिनको रागात्मिका भक्ति पानेकी प्रगाढ़ लालसा है, वे रागमार्ग परायण व्रजवासियोंका अनुसरण करते हैं। साधकरूपसे, बाह्य देहके द्वारा श्रवण कीर्तनका रागानुगा आचरण तथा सिद्धरूपसे अपने गुरु प्रदत्त स्वरूपका चिन्तन करते हुए अन्तश्चिन्तित देहके द्वारा सेवा करें।।७।।

श्रवण कीर्त्तन बाह्ये साधक शरीरे। सिद्ध देह व्रजानुगसेवा अभ्यन्तरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—रागानुगा भक्तिका अनुष्ठान दो प्रकारसे किया जाता है—साधक रूपसे यथावस्थित देह द्वारा और सिद्धरूपसे अर्थात् अपने अभिलषित प्रेम सेवाके लिए उपयोगी अन्तश्चिन्तित देहके द्वारा ब्रजस्थित अपने अभीष्ट श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्णके प्रिय परिकरोंके भाव या श्रीकृष्ण-विषयक रति प्राप्त करनेके लिए लुब्ध होकर उन व्रजके परिकरों, श्रीराधा-ललिता-विशाखा-श्रीरूप मञ्जरी आदि ब्रजवासियोंके अनुसार मानसी-सेवा करनी होगी तथा साधक रूपसे कायिकी सेवा श्रीरूप-सनातनादि ब्रजवासी महानुभावोंके अनुसार करनी होगी। लोकहितके लिए साधक बाह्य देहसे वैधी-भक्तिकी विधियोंका आचरण करते हैं, क्योंकि अनधिकारी व्यक्ति उनकी अप्राकृत क्रिया-मुद्रादिको नहीं समझ पाते हैं तथा उनका अनुकरण करके भजनके माध्यमसे संसार-जालमें फंसनेकी चेष्टा करते हैं। इसीलिए पूर्व-पूर्व भक्ति-आचार्य शुद्धाभक्तिमें प्रवेश करानेके लिए स्वयं विधि आदिका पालनकर अजातरति साधकोंको शिक्षा देते हैं। विधि मार्गका अभिप्राय गुरु-पदाश्रयादि चौंसठ प्रकारके भक्ति अंगोंका पालन करना है। इसी प्रकार विधि मार्गका पालन करते हुए रागमार्गीय भक्तोंके संग प्रभावसे हृदयमें रागानुगा भक्ति प्राप्ति हेतु लोभ उत्पन्न होनेपर अधिकार तथा योग्यता प्राप्त होती है।

विधि मार्ग रत जने, स्वाधीनता रत्न दाने,
राग मार्गे करान प्रवेश।

श्रीगुरुकृपासे स्फुरित अपने सिद्ध-देह दिन-रात व्रजमें श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवा करनी चाहिए। अपने अभिलषित कृष्णके प्रियजनों (जिनकी सेवाके प्रति साधकका लोभ हो) का अनुसरण करते हुए, आविष्ट चित्तसे, युगलकिशोरकी निरन्तर सेवा करनी चाहिए। साधकोंको दास, सखा, माता-पिता और कृष्णप्रेयसियोंमेंसे अपनी भावनाके अनुरूप किसी एकके भावका अनुसरण करनेसे उनके समान ही कृष्णके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न होती है—रागानुगा भक्तिकी यही पद्धति है। रागानुगा भक्तिमें स्मरणांग ही

प्रधान है। स्मरण तथा कीर्त्तनादि निज भावोचित लीला देश, स्वभाव-विशिष्ट कृष्ण एवं उनके प्रियजन सम्बन्धीय होना चाहिये। स्मरणकी प्रधानता होनेके कारण कुछ लोग रागोदय होनेके पूर्व अनर्थ युक्तावस्थामें ही निर्जन-भजनकी छलनाकर तथा अपनेको रागानुगा मानकर अष्टकालीय लीलास्मरण करनेका अभ्यास करते हैं किन्तु—

श्रुति स्मृति पुराणादि-पञ्चरात्रविधिं बिना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरूत्पातायैव कल्पते।।

अर्थात् श्रुति-स्मृति-पुराण और नारदपञ्चरात्रादिमें उल्लिखित विधियोंका अतिक्रमणकर ऐकान्तिकी हरिभक्ति अनुष्ठान भी महाअनर्थोंकी सृष्टि करता है।

रस सम्बन्धमें विशेष जानने योग्य यह है कि ब्रजलीलाके परिकरोंके शृंगारादि भाव-माधुर्य श्रवण करनेपर जिस समय उन भावोंकी प्राप्तिका लोभ उत्पन्न होता है, उस समय शास्त्रोक्त युक्तियोंकी अपेक्षा नहीं होती। लोभोत्पत्तिके अनन्तर लोभनीय ब्रजभाव किस प्रकार प्राप्त हो, ऐसी जिज्ञासा होनेपर शास्त्रकी अवश्य ही अपेक्षा होती है, क्योंकि शास्त्रोंमें ही उसकी प्राप्तिके उपाय लिखे हैं, अन्यत्र कहीं नहीं। वह शास्त्र भी भगवत-भजनकी रीतिका प्रतिपादन करनेवाला श्रीमद्भागवत ही है। रागानुगा भक्तिमें पांच भजनानुष्ठान हैं—

(क) स्वाभीष्टभावमय—दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि दास्यसख्यादि भावमय कीर्त्तन, श्रवण साधकोंके भावी प्रेमतरुका पोषण करते हैं। अतः इन्हें भावमय साधन कहा जाता है। प्रेमके प्रादुर्भाव होनेपर येही भावमय साध्य कहलाते हैं।

(ख) स्वाभीष्टभाव सम्बन्धी—श्रीगुरु पदाश्रयसे लेकर मन्त्र जप ध्यानादि भाव सम्बन्धी कहलाते हैं। भाव सम्बन्धी स्मरणांगमें सहायक होनेके कारण एकादशी और जन्माष्टमी आदि व्रतको भी आंशिक रूपमें भाव सम्बन्धी कहा जाता है।

(ग) स्वाभीष्ट भावानुकूल—तुलसी काष्ठकी माला, तिलक, वैष्णव-चिह्न धारण, तुलसी-सेवा, परिक्रमा और प्रणामादि भावानुकूल हैं।

(घ) स्वाभीष्ट अवरुद्ध—गो, अश्वत्थ, आंवला, ब्राह्मणादिका सम्मान करना ये—अंग-समूह उपकारी होनेके कारण भाव अविरुद्ध कहलाते हैं। उपर्युक्त सभी अनुष्ठान भजनमें ग्रहणीय हैं।

(ङ) स्वाभीष्ट भावविरुद्ध—न्यास, मुद्रा, द्वारका ध्यान निजभिलषित

भावके प्रतिकूल होनेके कारण रागानुगा भक्तिमें वर्जनीय हैं। रागमार्गीय साधक सर्वदा व्रजवासियोंका आनुगत्य स्वीकार करते हैं अर्थात् श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके आनुगत्यमें उनकी बताई भजन–प्रणालीका अनुशीलन करते हैं। रागमार्गीय साधकको सदा ब्रजमें वास करना चाहिए। शक्ति सामर्थ्य रहनेपर सशरीर वृन्दावनमें वास करना चाहिए अन्यथा मनसे व्रज वास करना चाहिए।

सिद्ध रूपेण—श्रीगुरु पादपद्मकी कृपासे साधक एकादश भाव तथा पंच दशा प्राप्त करके मन–ही–मन चिन्तन करते हुए इन भावोंमें विभावित होकर सेवा करते हैं अर्थात् अष्टकालीन लीलाओंके स्मरणमें निमज्जित होते हैं। एकादश भाव हैं—सम्बन्ध, वयः, नाम, रूप, यूथ, वेश, आज्ञा, वास, सेवा, पराकाष्ठा–श्वास और पाल्य दासी भाव। पंच दशाएँ हैं—श्रवणदशा, वरणदशा, स्मरणदशा, भावापन्नदशा और प्रेमसम्पत्तिदशा।

स्वरूप शक्तिकी कृपासे साधक श्रीकृष्ण सेवोपयोगी चिन्मय देह प्राप्त करते हैं। मधुररसके साधक अंतःचिन्तित देहमें सदा आविष्ट रहते हैं। इस सम्बन्धमें पद्मपुराणमें उल्लेख मिलता है—

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्।।
नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन, ततो भोगपराङ्मुखीम्।।
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्।।
प्रीत्यनुदिवसं यत्नात्तयो संगमकारिणीम्।
तत् सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम्।।
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्राह्ममुहूर्तमारभ्य यावत्तुस्यान्महानिशि।।

"सदाशिव नारदजीसे कहने लगे—हे नारद! उसी अप्राकृत वृन्दावन धाममें उन्हीं परकीयाभिमानिनी कृष्णकी प्रियाओंके बीच तुम अपने स्वरूपकी इसप्रकार भावना करो—मैं अतिशय सुन्दर रूप–यौवन–सम्पन्ना आनन्द स्वरूपिणी किशोरी रमणी हूँ, कृष्णको आह्लादित करने वाले विविध प्रकारकी शिल्प कलाओंकी विशेषज्ञा हूँ, श्रीमती राधाकी नित्य अनुचरी हूँ, श्रीकृष्णकी

परम प्रिय बल्लभा श्रीमती राधिकाको श्रीकृष्णके साथ संगम करवाकर सदा सुखी होऊँगी। अतएव सम्भोगके लिए कृष्ण द्वारा प्रार्थना किये जानेपर भी—मैं यह सोचकर वैसे सम्भोगसे दूर रहूँगी कि वास्तवमें यह सम्भोग कृष्णेन्द्रिय प्रीतिकर न होकर आत्मेन्द्रिय प्रीतिकर (अपने सुखके लिए) ही होगा। अतएव कृष्ण-प्रियतमा श्रीमती राधिकाकी अनुचरी और सदाके लिए सेवा परायण रहकर मैं कृष्णकी अपेक्षा भी श्रीमतीके प्रति अधिक प्रेम रखने वाली होऊँ, मैं प्रतिदिन प्रीति और यत्नपूर्वक श्रीराधा और श्रीकृष्णका परस्पर मिलन करानेमें तत्पर तथा उस मिलनके द्वारा दोनोंके सुखवर्द्धन रूप सेवानन्दमें निमग्न होऊँगी।"

इस प्रकार विशेष रूपसे अपने स्वरूपकी भावना करके अप्राकृत वृन्दावनमें ब्राह्ममुहूर्तसे लेकर जबतक महानिशा उपस्थित नहीं होती, तबतक सुष्ठुरूपसे मानस सेवा करनी चाहिए।

'सिद्धरूपेण' के विषयमें श्रील जीवगोस्वामी पाद लिखते हैं—'अंतश्चिन्तिताभीष्ट तत् सेवोपयोगी देहेन' अर्थात् अभीष्ट सेवाकी उपयोगी अंतश्चिन्तित देहसे समझना चाहिए। अतएव अपने भावानुसार श्रीकृष्ण-सेवोपयोगी देह द्वारा व्रजस्थित श्रीकृष्णके निजाभीष्ट प्रिय परिकरके भावसिन्धुमें विभावित होकर सेवामें नियुक्त रहते हैं। भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगुरुदेव साधकके हृदयमें सिद्धदेह स्फुरित कराते हैं। तत्पश्चात् अपने स्निग्ध-शिष्यको उसकी सिद्ध देहका परिचय दिलाते हैं। गुरु-वाक्योंमें विश्वासकर साधक दृढ़ निष्ठाके साथ भजन करते-करते ह्लादिनी शक्तिकी कृपासे अपनी पूर्ण स्थितिका अनुभव करता है। तब साधक सिद्ध देहके साथ तादात्म्य मनन करके उस देहमें अभीष्ट लीला-विलासी श्रीकृष्ण-सेवामें तन्मयता लाभ करता है।

श्रीमन्महाप्रभुने निम्नलिखित शब्दोंमें रागमार्गीय भक्तोंके लोकव्यवहारके विषयमें कहा है—

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तमेवास्वादयत्यन्तर्नवसङ्गरसायनम्।।८।।

—परपुरुषमें आसक्ति रखनेवाली नारी अपने घरके अनेक कामोंमें लगी रहनेपर भी परपुरुषके साथ आस्वादन किये हुए उस नवसङ्गम सुखका मन-ही-मनमें आस्वादन करती रहती है। उसी प्रकार एक भक्त भी चाहे सांसारिक कार्योंमें व्यग्र रहे, किन्तु मन-ही-मन भक्त सङ्गसे प्राप्त कृष्ण रसास्वादका निरन्तर आस्वादन करे।।८।।

परपुरुषेते रत थाके ये रमणी। गृहे व्यस्त थाकियाओ दिवस रजनी।।
गोपने अन्तरे नवसङ्गरसायन। परम उल्लासे करे सदा आस्वादन।।
सेई रूप भक्त व्यग्र थाकियाओ घरे। कृष्ण रसास्वाद कर निःसङ्ग अन्तरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—आलोच्य श्लोकमें श्रीचैतन्य महाप्रभु एक जड़ीय उदाहरणके द्वारा रागमार्गीय साधकके अन्तः और बाह्य लौकिक आचरणको बता रहे हैं। परपुरुषमें आसक्त एक नारी अपने गृहकार्यादिको अत्यन्त सुचारु रूपसे करती रहती है, किन्तु उसका मन हृदय उपपतिके निकट ही रहता है, वह मन-ही-मन उपपतिके साथ हास परिहास विलासादिका स्मरण, नवसंगम सुखका आस्वादन करती है। इसी प्रकार रागमार्गीय साधकको भी नाना प्रकारके सेवाकार्योंमें व्यस्त रहनेपर भी अपने अंतःकरणमें सर्वदा भगवानकी सेवा-सुखका आस्वादन करें। आचार्योंका मत है कि शरीर द्वारा सेवा कार्य करते हुए भी मन-ही-मन कृष्णके रूप, गुण, लीला, परिकरोंका स्मरण करना चाहिए।

गृहे वा वनेते थाके, हा गौराङ्ग बोले डाके,
नरोत्तम मांगे तार संग।

रागमार्ग भजनकी इस स्थितिमें भक्त कृष्णके प्रिय स्थानोंमें रहनेकी आकांक्षा करता है तथा ऐसे स्थानोंके प्रति प्रीति रखता है (भ.र.सि. १.२.१५६)—

कदाहं यमुना तीरे नामानि तव कीर्तयन्।
उदवाष्पः पुण्डरीकाक्ष! रचयिष्यामि ताण्डवम्।।९।।

हे पद्मलोचन कृष्ण! कब मैं आपके प्रेमाश्रुपूरित नेत्रोंसे नामोच्चारण करते-करते यमुना तटपर ताण्डव नृत्य करूँगा।।९।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीजीव गोस्वामी पादके अनुसार उपरोक्त उदाहरण जात रति अर्थात् जिसमें भगवत् भाव उत्पन्न हो ऐसे भक्तका है। वह अपनी लालसामयी विज्ञप्तिमें स्वाभीष्ट सेवा प्राप्तिके लिए प्रार्थना करता है। इसी प्रकार लालसामयी विज्ञप्तिमें भी जातरति साधक भक्तकी प्रार्थना है, किन्तु संप्रार्थनात्मिका विज्ञप्तिमें अनुत्पन्न रति साधकभक्तकी प्रार्थना है। उसमें भी लालसा है, किन्तु भावका अभाव है। उक्त प्रार्थना रागानुगा मार्गीय भक्तकी है।

उपरोक्त श्लोकमें 'पुण्डरीकाक्ष' नामसे भक्तके हृदयमें सम्बन्धित लीलाकी उद्दीपना होती है—अर्थात् यमुना तीरस्थ कुञ्ज कुटीरमें ब्रजदेवियोंके साथ

रात्रिकालमें विलास हेतु, श्रीकृष्णके दोनों नयन, कमल सदृश आरक्तिम हो गये हैं। श्रीकृष्णके रस, रूप सौंदर्यका वर्णन सखी समाजमें अत्यन्त उत्फुल्लित एवं आनन्दित होकर करूँगा, यह भाव प्रकाशित हुआ है। अथवा श्रीकृष्णके साथ संगम सुख हेतु निज प्रियतम सखीका मिलन कराकर आनन्द उत्सवसे नृत्य करूँगा। प्रसन्न होकर मेरी स्वामिनीजी मुझे आशीर्वाद प्रदान करेंगी। अथवा यमुना जलकेलि विहारमें श्रीमती राधिकाकी विजय पताका लेकर रोमाञ्च कम्पाश्रुके साथ ताण्डव नृत्य करूँगा।

जमुना सलिल आहरणे गिया, बुझिब युगल रस।
प्रेम मुग्ध हये पागलिनी प्राय, गाइब राधार यश।।

(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

कृष्ण प्रीतिवाञ्छायुक्त भक्तोंके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियोंका हृदय अपराधोंके कारण मलिन तथा पाषाण सदृश कठोर होता है। ऐसे व्यक्तियोंमें भावोंका प्रदर्शन कृत्रिम होता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार (२.३.२४)—

तदश्मसारं हृदयं व्तेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः।।१०।।

—हरिनाम संकीर्त्तनसे साधकका देह रोमांचित, हर्षित होकर उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। परन्तु जिसके हृदयमें विकार या सात्विक भाव उदित नहीं होते, उसका हृदय, हृदय नहीं; कठोर वज्र है।

हरिनाम संकीर्त्तने रोम-हर्ष हय। दैहिक विकार नेत्रे जल धारा बय।।
से समये नहे यार हृदय विकार। धिक् तार हृदय कठिन वज्रसार।।

भजनरहस्यवृत्ति—अनेक समय श्रीहरिनाम ग्रहण करनेपर भी यदि हृदय द्रवीभूत न हो तब निश्चय ही वह व्यक्ति नामापराधी है। नाम सर्वशक्तिमान है। किन्तु पाषणसदृश कठिन स्थानमें शीघ्र प्रतिफलित नहीं होता। साधुनिन्दादि अपराधसमूह हृदय-विकारमें बाधक हैं। यदि प्रतिबन्धक सामान्य हों तो उच्चरित नाम नामाभास रूपमें प्रकाशित होता है, किन्तु गहन प्रतिबन्धक अर्थात् महत् पुरुषोंके चरणोंमें अपराध होनेसे चित्त लोहेके समान कठिन हो जाता है तथा श्रवण कीर्त्तन आदिसे भी द्रवीभूत नहीं होता।

यद्यपि हरिनामके द्वारा चित्तद्रवताका बाह्य लक्षण अश्रु-पुलकादि हैं परन्तु सब समय अश्रु तथा पुलक ही चित्त क्षोभका लक्षण है, यह भी नहीं कहा जा सकता। श्रील रूपगोस्वामीपाद कहते हैं कि जिन लोगोंका चित्त

स्वभावतः ही पिच्छल है अर्थात् ऊपरसे कोमल तथा अन्दरसे कठोर है तथा जो व्यक्ति सात्त्विक भाव उदय करानेके लिए धारणाके द्वारा अभ्यास करते हैं, ऐसे व्यक्तियोंमें सत्त्वाभासके बिना भी कभी–कभी अश्रु–पुलकादि देखे जाते हैं। सब समय ये भाव भक्तिसे सम्बन्धित नहीं होते।

जिस भाग्यवान व्यक्तिकी सेवोन्मुख जिह्वापर शुद्ध हरिनाम उदित होनेके कारण हृदयमें विकार आ गया है, उसमें क्षान्तिरव्यर्थ कालत्वं इत्यादि नौ लक्षण निश्चय ही देखे जायेंगे। अतः असाधारण क्षान्ति, नामग्रहणमें असाधारण आसक्तिको ही हृदय विकारका लक्षण समझना चाहिये। मत्सरतायुक्त वैष्णव–प्राय साधारण व्यक्तिके चित्तमें अपराध रहनेके कारण अनेक समय 'नाम' (अर्थात् नामापराध) ग्रहण करनेपर भी नाम माधुर्य अनुभवके अभावमें उनका चित्त द्रवित नहीं होता। अतः चित्तकी क्षुब्धताको प्रकाशित करने वाले 'क्षान्ति' प्रभृति नौ प्रकारके लक्षण दिखनेपर भी उनका हृदय अपराधके कारण पाषाण सदृश कठोर होता है। वे निन्दाके योग्य हैं। परन्तु साधुसंगके द्वारा अनर्थ निवृत्तिके पश्चात् इनका चित्त क्रमशः निष्ठा, रुचि आदि पद्धतिपर अग्रसर होकर उचित समयपर द्रवित हो सकता है तथा तभी उनके हृदयका काठिन्य रूपी अपराध दूर हो जाता है। निष्किंचन शुद्ध महाभागवत गुरु वैष्णवोंकी कृपा प्राप्त करके उन्हींके आनुगत्यमें अपराध एवं अनर्थोंसे मुक्त होकर अंतमें रसमय ब्रजभावमें आरूढ़ होकर परम प्रयोजन प्रेम प्राप्त कर सकेंगे।

नाममें रति उदित होनेसे कृष्णकिशोररूप सहजमें ही उदित होने लगता है, यथा कृष्णकर्णामृत (१०७)—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मानधर्मार्थ कामगतयः समय प्रतीक्षा।।११।।

—हे भगवन्! यदि आपके श्रीचरणकमलोंमें दृढ़ भक्ति हो तो आपके परम मनोहर दिव्यकिशोर मूर्तिका दर्शनरूपी फल सहज ही प्राप्त हो जाता है। तदनन्तर मुक्ति तो हाथ जोड़कर सामने खड़ी रहती है। साथ ही धर्म, अर्थ, तथा काम भी भक्तिपूर्ण हृदयवालेकी सेवाके अवसरकी प्रतीक्षा करते रहते हैं।।११।।

भक्ति स्थिरतरा जार ब्रजेन्द्रनन्दन। तोमार कैशोर मूर्ति तार प्राप्य धन।।
कर जोड़ि मुक्ति सेवे ताँहार चरण। धर्म, अर्थ, काम करे आज्ञार पालन।।

भजनरहस्यवृत्ति—शुद्ध भक्तोंके साथ नाम करनेपर चित्तमें शुद्ध-नाम उदित होता है। इस अवस्थामें उसके हृदयमें प्रेमलक्षणा भक्ति लीला स्फूर्तिके रूपमें प्रकट होती है। प्रेम लक्षणा भक्ति जब स्थिरताको प्राप्त होती है, तब श्रीकृष्णकी दिव्यकिशोरमूर्ति स्वतः ही हृदयमें आविर्भूत होती है। स्वयं मुक्तिदेवी अवहेलित होनेपर भी अञ्जलिबद्ध हो साधकसे प्रार्थना करती है कि मेरी सेवा स्वीकार करें। धर्म, अर्थ, काम भी भक्तके निकट कुछ सेवा-प्रार्थनाके लिए समयकी प्रतीक्षा करते हैं।

मधुर जातरति भक्त श्रीकृष्णकी दिव्यकिशोरमूर्तिसे प्रलुब्ध होते हैं, श्रीकृष्णका सर्वोच्च शृंगार रसविलास इसी आयुमें प्रकाशित होता है।

रात्रिदिने कुञ्जे कीड़ा करे राधा-सङ्गे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा रङ्गे।।

(चै. च. म. ८.१८८)

विदग्धादि गुणोंसे युक्त रति-कला किशोरवयसमें ही मधुरतम रूपमें व्यक्त होती है। भक्तिरसामृतसिन्धुके अनुसार, "पूर्वरात्रि कालके रति-कौशल-औद्धत्यके प्रकाशक वचनोंसे सखियोंके सम्मुख श्रीराधाको लज्जावश संकुचित करके, उनके उरोजयुगलमें विचित्र केलि-मकरीका निर्माण करनेके कौशलकी पराकाष्ठा दिखाते हुए कुञ्जोंमें विहार करते-करते श्रीकृष्ण अपनी कैशोर-अवस्थाको सफल करते हैं।"

रतिलक्षणा भक्तिसे शुद्ध भक्तके संगमें नामानुशीलन, यथा श्रीभागवत—

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः।।
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्।।१२।।

(श्रीमद्भा. ११.३.३०-३१)

—भगवानका यश परम पावन है। भक्तजन परस्पर भगवानके उसी परमपावन यशका गुणगान करते हैं, जिससे भक्तोंको परस्पर प्रीति, सन्तुष्टि तथा संसारसे निवृत्ति हो जाती है। अघासुरका वध करनेवाले श्रीहरिका स्मरण करते हुए तथा स्मरण कराते हुए साधन भक्तिका आचरण करनेसे उनके हृदयमें पराभक्ति (प्रेमाभक्ति) का उदय होता है, जिससे वे पुलकित हो जाते हैं।।१२।।

भक्तगण परस्पर कृष्ण कथा गाय। ताहे रति तुष्टि सुख परस्पर पाय।।
हरिस्मृति निजे करे, अन्येरे कराय। साधने उदित भावे पुलकाश्रु पाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्ण पापराशिको एकक्षणमें भस्म कर देते हैं। सभी उन्हींका स्मरण करें और एक दूसरेको स्मरण करावें। इस प्रकार साधन भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेमा भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित शरीर धारण करते हैं।

स्वजातीय भगवद्भक्तोंके साथ प्रणयवर्धन, उनका सुख विधान, भक्ति प्रतिकूल विषय त्याग आदि साधकके कर्त्तव्य हैं। स्वजातीय निर्मल हृदय सम्पन्न भक्त श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्त्तन करके आत्म पवित्रता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार कृष्णकथा आदि द्वारा भक्ति अनुशीलन करते-करते हृदयमें भाव उदय होते हैं तथा समस्त प्रकारके अमंगल विनाशकारी हरिकथाका स्मरण कीर्त्तन करते-करते साधक सिद्धावस्थामें प्रवेश करता है।

श्लोकका विशेष तात्पर्य है कि स्वजातीय अर्थात् समान भावना विशिष्ट व्रजरसिक भक्तोंके संगके प्रभावसे भक्तिदेवी हृदयमें संक्रमित होती हैं। नवीन साधक निर्मल चित्तमें हरिकथा श्रवणसे अपने संस्कारोंको परिपक्व करते हैं।

साधने भाविवे जहाँ, सिद्धिते पाइवे ताहाँ।
केवल पक्व अपक्व विचार।

सद्गुरुकी कृपासे अपना सिद्ध स्वरूप जानकर साधक भजन-प्रणालीकी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

स्वजातीय शुद्धभक्त परस्पर मिलनेपर केवल कृष्णकथा ही कहते हैं तथा कृष्णके रूप गुणादिके वर्णनमें विभोर हो जाते हैं। कृष्णचर्चाके अतिरिक्त उनका कोई अन्य वार्तालाप नहीं होता। श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामी टेर कदम्ब स्थली आदि स्थानोंमें अपने-अपने भजनका अनुभव परस्पर वर्णनकर अष्टसात्त्विक भावोंमें निमज्जित हो जाते थे।

भगवद् कथाके छलसे इन्द्रिय तर्पणमूलक भोग विषय आदि न आ जायें, इसके लिए सावधान रहना चाहिए अर्थात् योषित्संग या लाभ पूजा प्रतिष्ठा आदि साधकको प्रभावित न करें। साधक अत्यन्त सतर्कतापूर्वक कृष्णानुशीलन करें अन्यथा पथभ्रष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभुके प्रेम-धनसे वंचित हो जायेंगे।

कभी-कभी शुद्ध भक्त अभिमानशून्य होकर जगतमें कीर्त्तन द्वारा नाम-प्रेमका प्रचार करते हैं, यथा भागवत (१.६.२७)—

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन्।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः।।१३।।

—श्रीनारदजी आत्म चरित वर्णन प्रसंगमें कहते हैं—“लज्जा और संकोचका परित्याग करके मैं भगवानके अत्यन्त रहस्यमय और मंगलमय मधुर नामों एवं लीलाओंका कीर्त्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा”।।१३।।

लज्जा छाड़ि कृष्णनाम सदा पाठ करे। कृष्णेर मधुर लीला सदा चित्ते स्मरे।।
तुष्टमन स्पृहा-मदशून्य-विमत्सर। जीवन यापन करे कृष्णेच्छातत्पर।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीनारदजी भगवानके नाम संकीर्त्तन एवं रहस्यमयी लीलाओंके स्मरण कार्यमें व्रती होकर वस्तु सिद्धिकी अपेक्षा कर रहे हैं। शुद्ध भक्त निष्कपट रूपसे तन्मय होकर हरिनाम संकीर्त्तन करते हैं तथा अनेकानेक समालोचकोंकी बातें कर्णप्रवेश नहीं होने देते। स्वजातीय स्निग्ध भक्तोंके निकट रहस्यमय तथा अत्यन्त गूढ़ प्रेम विलासमय लीलाओंको प्रकाश करते हैं। श्रीराधागोविन्दकी परम रहस्यमयी लीला कथाका कीर्त्तन वे अधिकारीजनोंके निकट ही करते हैं।

कीर्त्तन प्रभावे स्मरण हइबे।
सेई काले निर्जन भजन सम्भव।।

(श्रील प्रभुपाद)

नाम तथा नामी अभिन्न हैं भावकी उपलब्धि होनेपर प्राकृत भाव नष्ट हो जाते हैं। उस समय भक्त अमानी मानद होकर, लज्जा त्यागकर नाम संकीर्त्तन करते हैं। श्रीनारदजी इसी स्थितिका वर्णन प्रस्तुत श्लोकमें कर रहे हैं। समस्त अहंकार, लज्जा परित्यागकर वे सर्वत्र हरिनाम संकीर्त्तनका प्रचार करते थे। परम भागवतजन लोक कल्याणके लिए सर्वत्र हरिनाम प्रचार करते हैं—प्राण आछे जार से हेतु प्रचार। (श्रील प्रभुपाद)

स्मरणाङ्गभक्ति श्रवण कीर्त्तनके अधीन है। श्रील जीवगोस्वामीपादके अनुसार—

भगवानकी सर्वोत्तम रहस्यमयी गूढ़ क्रिया अर्थात् निज प्रेयसियोंके साथ

प्रेमविलास लीला साधारण जनोंके समक्ष प्रकाश न करके अपने अधिकारानुसार ही स्मरण एवं कीर्त्तन करना चाहिए।

मने मने सिद्ध देह करिया भावन।
रात्रि दिने करे ब्रजे कृष्णेर सेवन।।
निजाभीष्ठ कृष्णप्रेष्ठ पाछे लागिया।
निरन्तर सेवा करे अंतर्मनः हइया।।

(चै. च. म. २३)

श्रीमद्भागवत (११.३.३२)—

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः।।१४।।

—लोकातीत महाभागवतोंकी विलक्षण स्थिति होती है। कभी-कभी वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अब तक भगवान नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति करा सकते हैं? इस तरह सोचते-सोचत वे रोने लगते हैं, तो कभी भगवानकी माधुर्यमयी लीलाओंकी स्फूर्ति हो जानेसे ऐसा देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान गोपियोंके डरसे छिपे हुए हैं, खिलखिलाकर हँसने लगते हैं। कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्द मग्न हो जाते हैं तो कभी सिद्ध देहमें स्थित होकर भगवानके साथ बातचीत करने लगते हैं, 'हे प्रभो! मैंने आपको इतने दिन बाद प्राप्त किया है। प्रभुके गुणोंका गान करने लगते हैं। कभी उनके स्नेहको प्राप्तकर नृत्य करने लगते हैं और कभी परम पुरुषको प्राप्तकर परम शान्तिका अनुभव करते हैं और चुप हो जाते हैं।।१४।।

भावोदये कभु कांदे कृष्णचिन्ता फले। हासे आनन्दित हय, अलौकिक बले।।
नाचे गाय कृष्ण आलोचने सुख पाय। लीला अनुभवे हय, तूष्णीम्भूत प्राय।।

भजनरहस्यवृत्ति—भावोदय होनेपर साधककी बाह्य एवं आन्तरिक चेष्टायें अलौकिक रूपमें प्रकाशित होती हैं। भगवत् कथा स्मरणके प्रभावसे कभी वे रोते हैं, कभी हंसते हैं, कभी नृत्य करते हैं, कभी हर्ष प्रकाश करते हैं, कभी गम्भीर होकर मौन धारण करते हैं और कभी अपने लोकातीत प्रेमपूर्ण अनुभवोंका स्वजातीय भक्तोंके समीप वर्णन करते हैं। गम्भीरामें श्रीमन्महाप्रभु अनेक भावोंमें निमग्न होकर स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्दके

निकट अपने भाव प्रकाश करते थे। प्रभुका मन श्रीराधाके भावरूपी समुद्रमें निमग्न होकर उन्मत्त हो जाता था। कभी भाव समुद्रकी तरंगोंमें डूबकर वे बाह्यज्ञान खो बैठते तो कभी अर्धबाह्य दशामें मनके किञ्चित् भावोंको व्यक्त करते। स्वप्नावेशमें गर-गर मौनावस्था अर्थात् अर्धबाह्य दशामें अभी कृष्णको देखा और अभी खो बैठे। बाह्य दशामें विरहदुःख रूपी प्राप्त रत्नको खो दिया। कभी उन्मत्तकी भाँति पशु-पक्षी, लोगोंसे कृष्णका पता पूछते, कहीं देखा कृष्णको? रात्रिमें धैर्य नहीं बँधता, शांत वातावरण तथा अभिसारका समय, स्मृतिसे रासका स्मरण होता तब भावाविष्ट होकर गान-नृत्य करते।

अंतर्दशामें मिलन ही मिलन, आनन्द ही आनन्द है। पुनः बाह्यदशा प्राप्त होनेपर प्रभु संतापयुक्त विरह वेदनासे विलाप करते, कृष्णके गुणोंका स्मरणकर राय रामानन्द तथा स्वरूप दामोदरके गलेमें हाथ डालकर अधीर होकर रोदन करते थे। ऐसा प्रतिदिन होता था। कभी आवेशमें कहते 'आज कृष्ण-सखियोंसे परिवेष्टित होकर राधाकुण्डमें विलास कर रहे थे, किसी सखीने मुझे दूरसे इस विलास माधुरीका दर्शन कराया।' कभी कहते, 'स्वरूप! मैंने आपसे कुछ कहा? क्या? मैं ही चैतन्य हूँ।'

भावदशामें साधक कभी क्रन्दन करता है, 'हाय! हाय! मैंने व्यर्थ ही इन प्राणोंको धारण कर रखा है, कृष्ण-प्रेम प्राप्त करना मेरे लिए सम्भव नहीं।' कभी किसी लीलाका स्मरण कर हँसता है, 'गोप वधू चोर श्रीकृष्णने सारी रात्रि प्रांगणमें वृक्षके नीचे बिताई, नानाविध स्वरभंगी आदिके द्वारा भी गोपियोंका संग प्राप्त नहीं कर सका। जटिला कुटिलाकी चौकीदारी तथा प्रश्नोत्तरोंके द्वारा वे पराजित हो गये।' कभी कभी साधक परम प्रेम-धनको हृदयमें गोपन कर मौन धारणकर शान्त हो जाते हैं। कभी हरिलीलाका अनुकरण करते हुए नृत्य करते हैं। कभी अलौकिक वाक्यालाप करते हैं।

श्रीमूर्ति दर्शनमें रूपानुराग, यथा भागवत (१०.२३.२२)—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह धातुप्रवालनटवेशमनुव्रतांसे।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोल्मुखाब्जहासम्।।१५।।

—नवजलधरके समान साँवली उनकी अंगकान्ति है, उसपर स्वर्णकी आभाको पराभूत करने वाला पीताम्बर झिलमिला रहा है, मस्तकपर मयूरका पंख सुशोभित हो रहा है, अंग-अंगमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रखी है, नये-नये कोंपलोंके गुच्छोंको अंगोंपर धारणकर नवकिशोर-नटवरका वेश

धारण किया है, गलेमें पंचरंगी वनमाला बड़ी मनोहर लग रही है, एक हाथ अपने सखाके कन्धेपर रखे हुए हैं तथा दूसरे हाथसे लीलाकमल नचा रहे हैं, कानोंमें कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुंघराली अलकें लहरा रही हैं तथा मुखकमल मन्द–मन्द मुसकानसे प्रफुल्लित हो रहा है।।१५।।

क्षणे–क्षणे देखे श्याम हिरण्य वलित। वनमाला–शिखिपिच्छ–धात्वादिमण्डित।।
नटवेश, सङ्गी–स्कन्धे न्यस्तपद्मकर। कर्ण भूषा–अलका–कपोलस्मिताधर।।

भजनरहस्यवृत्ति—रति अवस्था उपस्थित होनेपर श्रीमूर्तिके दर्शनकर साधकके हृदयमें अनुराग उत्पन्न होता है तथा वह श्लोकस्थ भावमें श्रीकृष्णकी रूप छटाका अनुभव करता है। मस्तकपर मोर मुकुट सुशोभित है। गल देशमें व्रजदेवियों द्वारा पत्र पुष्पोंसे ग्रंथित वनमाला शोभा पा रही है। काम्यवनसे प्राप्त सुगन्धित धातुओंसे श्रीअंग चित्रित हैं। सर्वाकर्षक स्वहास्य वदन श्रीकृष्ण किसी प्रियनर्म सखाके स्कन्ध देशमें आलिंगन परिपाटी द्वारा वाम्य हस्त रखे हैं तथा दक्षिण हस्त द्वारा सुन्दर लीला कमल घुमा रहे हैं। लीला कमल घुमानेका तात्पर्य आचार्यपाद इस प्रकार वर्णन करते हैं—कृष्णका मन भक्तोंको देखकर ऐसे ही नाचता है जैसे यह कमल नाच रहा है अथवा भक्तोंका मन कृष्णको देखकर ऐसा नाचता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण अपने भावोंको व्यक्त कर रहे हैं—हे भाग्यवती ब्राह्मणियों! आपके हृदयकमलको मैंने हस्तमें धारणकर रखा है अर्थात् मेरे दर्शनसे तुम्हारा हृदय इस कमलकी भाँति नाच रहा है अथवा आप लोगोंके हृदयको धारणकर आत्मसात् करूँगा।

श्रीकृष्ण रूप माधुर्यके द्वारा समस्त जीवोंको आकर्षणकर अमृतपान कराते हैं। इस कृपासे साधकके हृदयमें नाना प्रकारकी लीलायें स्फुरित होती हैं तथा वे लीला आस्वादन सुख अनुभव करते हैं।

पुनः श्रीमद्भागवतसे ही (१०.२१.५)—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै–
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः।।१६।।

पूर्वरागवती गोपियाँ अपने भाव नेत्रोंसे कृष्णके सौन्दर्यका वर्णनकर रही हैं—श्यामसुन्दर अपने सखा गोप बालकोंके साथ वृन्दारण्यमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूर पुच्छ, कानोंमें कनेरका फूल, सुवर्ण जैसा चमकता

पीला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे ग्रथित घुटनों तक लंबी मनोहर वनमाला विराजमान है। रंगमंचपर सुन्दर अभिनय करने वाले नटवरके समान सुंदर वेश है। वेणुके छिद्रोंसे अपना अधरामृत प्रवाहित कर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनके कीर्त्तनका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी अति रमणीय यह वृन्दावन धाम उनके शंख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त चरणकमलोंके चिह्नोंसे अंकित होकर और भी सुशोभित हो गया है।।१६।।

शिखिचूड़ नटवर कर्णे कर्णिकार। पीतवास वैजयन्तीमाला गलहार।।
वेणुरन्ध्रे अधर पीयूष पूर्ण करि। सखा संगे वृदारण्य प्रवेशिल हरि।।

भजनरहस्यवृत्ति—परमहंस शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने 'बर्हापीडं नटवरवपुः' श्लोकके माध्यमसे व्रजाङ्गनाओंके हृदयमें श्रीकृष्णके वेणुनाद श्रवणसे स्फुरित कृष्णकी रूप माधुरीका अद्भुत चित्रांकन किया है। कृष्णानुरागिणी व्रजरमणियाँ श्रीकृष्णके मधुर वेणुनादको श्रवणकर आत्म विभोर हो गईं। वे परस्पर वेणुनादकी आश्चर्यजनक माधुरीका वर्णन करने लगीं, किन्तु ज्योंही वर्णन करना आरम्भ किया त्योंही कृष्णकी त्रिभंग ललित रूप राशि, उनकी गमन भंगी, बंकिम दृष्टि, मन्द-मन्द मधुर मुस्कान आदि हृदयमें स्फुरित होनेके कारण प्रेमावेशमें विभोर हो गईं।

बर्हापीडं—कृष्णके काले-काले कुञ्चित केशकलापके मध्य मयूर पुच्छोंका चूड़ा नवीन मेघपर इन्द्रधनुषकी भाँति सुशोभित हो रहा है। ये मोरपंख नृत्यसे आनन्दित मयूरगणकी कृष्णको भेंट है, इसे शीशपर धारणकर धीरललित नायक कृष्ण अपनी प्रेयसीके हाव भावादिको अभिनव रूपमें प्रकाशित कर रहे हैं। मयूर पुच्छमें अंकित नख चन्द्रिका प्रेम विदग्ध रस कलाकी मुहर है, इसे शिरोदेशमें धारण करके कृष्ण अपनी प्रियतमा राधाकी गतरात्रि कुञ्जविहार रतिलीलाकी विजयका उद्‍घोष कर रहे हैं।

नटवर वपुः—कृष्णकी गमनभंगी नृत्य विलासको भी पराभूत करनेवाली है। नटवर श्यामसुन्दर अनुपम महामाधुर्यके मूर्तिमान श्रीविग्रह हैं। वे जिस समय अपने सखाओंके साथ गौओंके पीछे-पीछे वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं; उस समय उनकी नृत्य-कला विनिन्दित स्वाभाविक नृत्य भंगीसे दोनों चरण नृत्य करते हैं। चरणोंके मणिमय नूपुर, सुवर्ण वर्ण पीताम्बर,

कटिकिंकिणी, वक्षःस्थलपर स्थित वैजयन्तीमाला भी नृत्य करते हैं। वेणुरन्ध्रोंपर दसों अंगुलियाँ भी विचित्र गतिसे नृत्य करती हैं। खञ्जन एवं मृगशावकोंकी शोभाको पराभूत करनेवाले उनके नयनयुगल नाना प्रकारकी भंगिमाओंके साथ नृत्य करने लगते हैं। दोनों कानोंके मकराकृत कुण्डल, काली–काली अलकें तथा चूड़ेपर विराजित मयूरपंख भी नृत्य करने लगते हैं। वे अनुपम नटवर हैं उनके अंग–प्रत्यंग सभी नटवर हैं।

कर्णयोः कर्णिकारं—वनमें प्रवेश करते समय कानोंमें कर्णिकर अर्थात् कनेरका पीला फूल धारण करनेसे नटवरवपु श्यामसुन्दरका निरुपम कैशोर माधुर्य और भी वर्द्धित हो जाता है। रसिकशेखर श्रीकृष्ण कनेरके एक पुष्पको कभी दाहिने और कभी बाएँ कानपर धारण करते हैं इससे कृष्णके किशोर वयसका अल्हड़पन तथा यौवनकी मत्तता सूचित होती है। अट्टलिकाओंके ऊपर जिस दिशामें अनुरागवती गोपियाँ होती हैं, उसी ओरके कानपर उस पुष्पको धारणकर कृष्ण ब्रजरमणियोंके प्रति प्रगाढ़ प्रीति प्रदर्शित करते हैं।

विभ्रद वासः कनक कपिशं—नटवर श्यामसुन्दरके नवजलधर विनिन्दित श्याम अंगपर कनकवर्ण पीतवसन मेघमें विद्युतकी भाँति सुशोभित हो रहा है। साथ ही ब्रज गोपियोंकी पीत कान्तिके अनुरूप पीताम्बरसे देह आच्छादितकर उनके द्वारा आलिंगित भावको व्यक्त करते हुए प्रगाढ़ प्रीति प्रकट कर रहे हैं। उनके सुविस्तृत वक्षःस्थलपर पाँच प्रकारके पुष्पोंकी ग्रथित वैजयन्ती माला मृदु मधुर रूपसे आन्दोलित हो रही है—जिसे देखकर गोपियोंके हृदयमें भी नये–नये नित्य–नूतन भावोंकी हिलोरें उठ रही हैं। पाँच पुष्प समन्वित माला मानों गोपियों द्वारा छोड़े पाँच बाण हैं जो कृष्णके अंग प्रत्यंगको जर्जरित कर रहे हैं।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन्—श्रीकृष्ण जब अपनी अंगुलियों द्वारा वेणुके छिद्रोंको रुद्धकर पके हुए बिम्बफलके शोभाको पराजित करने वाले अपने अधर पल्लवोंपर रखकर फुत्कार प्रदान करते हैं, उस समय वेणुके छिद्रोंसे भुवनमोहन नादमाधुरी निकलकर स्थावर जंगम सबको मोहितकर देती है। निष्प्राण वेणु प्राणवन्त होकर गोपियोंके हृदयको आन्दोलितकर काम उत्तेजित कर रहा है। साथ ही यह देखकर कि वेणु पुरुष होकर भी गोपियोंके अधरसुधा धनको उनके सामने ही आस्वादन कर रहा है, गोपियोंके हृदयमें ईर्ष्या नामक संचारी भाव उदित हो रहा है।

इस प्रकार श्यामसुन्दर वेणुवादन करते हुए परम सुहावने वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। महाभाववती व्रजरमणियोंके हृदयमें जिस समय कानोंके माध्यमसे वेणुकी मधुर अमृतधारा प्रवेश करती है, उस समय उनकी विचित्रदशा उपस्थित हो जाती है।

वे कृष्ण मिलनकी उत्कण्ठासे बेचैन हो जाती हैं, किन्तु अपने भावोंको गोपन करनेकी वे चेष्टा करती तो हैं, परन्तु सफल नहीं हो पाती हैं। गोपियोंके कृष्ण प्रेमको लक्ष्य कर साधक अपनी साधना गुरुके आनुगत्यमें करता है तो उसके भी भाव माधुर्यमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है तथा भावदशा उपस्थित होनेपर साधकके हृदयमें श्रीकृष्णके विग्रहकी स्फूर्ति होती है। इस अवस्थामें साधक गोपियोंके भावोंका समानाधिकरण करता है, अपनेको एक किशोरी समझकर नित्यसिद्ध गोपियोंकी आनुगत्यमयी सेवामें तन्मय हो जाता है।

श्रीनामके प्रस्फुटित होनेपर हृदयमें स्वविस्मापक श्रीमूर्तिके मुग्धकारी भावोदय होते हैं। श्रीमद्भागवत (३.२.१२) में श्रीउद्धव विदुरजीसे कहते हैं—

यन्मर्त्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।।१७।।

—भगवानने अपनी योगमायाके द्वारा मानव लीलाओंके योग्य जो दिव्य श्रीविग्रह अवतीर्ण किया था, वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर सारा जगत तो मोहित हो ही जाता है, वे स्वयं भी विस्मित हो जाते हैं। वह रूप सौभाग्य और सौन्दर्यकी अन्तिम पराकाष्ठा है। उस सुन्दर अंग-कान्तिमें आभूषण भी सुशोभित हो जाते थे।।१७।।

मर्त्त्यलीला-उपयोगी सविस्मयकारी। प्रकटिल वपु कृष्ण चिच्छक्ति विस्तारि।।
सुभग ऋद्धिर पर पद चमत्कार। भूषण भूषण रूप तुलनार पार।।

भजनरहस्यवृत्ति—मर्त्यलीला उपयोगी अपने अत्यन्त मनोरम श्रीविग्रहको भगवान श्रीकृष्ण अपनी चित् शक्तिके प्रभावके द्वारा इस जगतमें प्रकट करते हैं। इस श्रीविग्रहका अनुपम सौन्दर्य स्वयं श्रीकृष्णको भी विस्मित कर देता है। श्रीकृष्णकी अनन्त लीलाएँ एवं अनन्त अवतार हैं। इन स्वयं प्रकाश वासुदेव तथा संकर्षण, विलास मूर्ति श्रीनारायण तथा स्वांश रूप पुरुषावतार, गुणावतार, आवेशावतारमें स्वयंरूप गोकुलके श्रीकृष्णका वेणुधारी नवकिशोर नटवर गोपवेश विग्रह ही सर्वोत्तम तथा सर्वमनोहारी

है। अपनी इस रूप माधुरीके एक कणसे गोकुल, मथुरा, द्वारका यहाँ तक कि देवी धामको भी निमज्जित कर देते हैं। इसी असमोर्द्ध स्वरूपको लेकर वे अपनी योगमायाके द्वारा अत्यन्त गोपनीय रत्न नित्य गोलोक वृन्दावनकी लीला सहित इस धराधाममें प्रकट होते हैं। यह चमत्कारिता स्वयं कृष्णको भी विस्मित कर अपनी ही माधुरीका आस्वादन करनेके लिए उन्हें भी विवश करती है। समग्र ऐश्वर्य, समग्र सौन्दर्य, समस्त यश, समस्त वीर्य, समस्त ज्ञान एवं समस्त वैराग्य, षडैश्वर्य पूर्ण श्रीकृष्ण अपनी चरम सीमामें विद्यमान हैं। वे ही षडैश्वर्य ब्रजेन्द्रन्दन श्रीकृष्णमें माधुर्य द्वारा मण्डित होकर एक अपूर्व अलौकिकताका रूप धारण करते हैं।

साधारणतः अलंकार अंगके भूषण होते हैं; किन्तु श्रीकृष्णके अंग-धारण किये अलंकारोंका सौन्दर्य वर्धित करते हैं। श्रीकृष्णकी त्रिभंग ललित मुद्रा अंगोंकी शोभामें अपूर्व माधुरीका विस्तार करती है तथा सभीका चित्त आकर्षण करती है। उनकी तिर्यक अपाङ्ग दृष्टिबाण भ्रूधनुषमें संयुक्त होकर राधा तथा अन्य व्रजदेवियोंका मन मथित कर देती है। वेदोंमें उद्घोषित साध्वी पतिव्रता लक्ष्मियाँ भी श्रीकृष्णके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो उनकी पद नख ज्योतिकी परिचर्या करनेकी अभिलाषा करती हैं। ब्रजमें श्रीराधा तथा उनकी सखियाँ श्रीकृष्णकी पदनख कोटि प्राणोंसे चन्द्रिकाका निरमच्छन करनेपर भी मुखचन्द्रमाको ही अपनी हृदय-कन्दरामें सदासर्वदा अधिष्ठित करती हैं।

भगवान कृष्णचन्द्र स्वरूपभूत चिद् शक्तिके प्रभावसे प्रापंचिक भौम लीलामें अपूर्व स्वरूप प्रकट करते हैं तथा अपने विलास विग्रह नारायणको भी विस्मय उत्पादन करा देते हैं। स्वयं-कृष्ण भी अपने ही माधुर्यके आस्वादनके लिए उन्मत्त हो जाते हैं। कृष्णेर माधुर्ये कृष्णेर उपजय लोभ। (चै. च.)

कृष्णका माधुर्य सर्वचित्ताकर्षक है, इस रूपमाधुर्यका पान करनेमें बाधक निमेषकारी विधाताके प्रति क्या व्रजजनोंका कोप श्रीमद्भागवत (२.२४.६५) में वर्णित है—

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥१८॥

—श्रीकृष्णके कर्णद्वयमें दोलायमान मकराकृति कुण्डल, गण्डरूपी सरोवरमें विहार कर रहे हैं। इस आभासे कपोलोंका सौंदर्य और भी खिल

उठता है। जब वे विलासके साथ हँस देते हैं, तो उनके मुखपर निरन्तर रहने वाले आनन्दमें मानो बाढ़ सी आ जाती हैं। सभी नर-नारी अपने नेत्रोंके प्यालोंसे उनके मुखारविन्दकी पीयूष माधुरीका निरन्तर पान करते रहते हैं, परन्तु तृप्त नहीं होते। इस रूप माधुरीका पान करनेमें बाधक पलकें गिरनेसे निमेषकारी ब्रह्मापर खीझते हैं।।१८।।

सुभग कपोल हरि मकर कुण्डल। सविलास-हास्य मुख-चन्द्र निरमल।।
नरनारीगण नित्य उत्सवे मातिल। निमेषकारीर प्रति कुपित हइल।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रील शुकदेव गोस्वामी हर्षोत्फुल्ल हो, श्रीकृष्णके रूप सौन्दर्यकी माधुरीका, महाराज परीक्षितके निकट वर्णन करने लगे। समस्त ब्रजवासीजन श्रीकृष्णकी उस रूपमाधुरीका दर्शनकर प्रेममें अत्यन्त विह्वल हो जाते हैं। ब्रजवासियोंका अनुराग असीम रूपमें परिवर्द्धित हो एक अनिर्वचनीय माधुर्यको प्राप्त होता है। महाभाववती ब्रजसुन्दरियाँ अपने प्रगाढ़ अनुरागके कारण कृष्णके रूपमाधुर्यका पूर्णतमरूपमें रसास्वदन करती हैं। उनके भावसमूह अपनी चरम पराकाष्ठाकी अवस्थामें आगे बढ़नेका स्थान न रहनेपर भी बढ़ते हैं तथा यावदाश्रय वृत्ति लाभ करते हैं। अनुरागकी ऐसी अनिर्वचनीय अवस्था जिसमें वे केवल रसका अनुभव करती हैं तथा स्वसंवेद्य दशाको प्राप्त होती हैं, जो महाभावकी चरम विकास अवस्था है तथा वह केवल ब्रजसुंदरियोंकी ही सम्पत्ति है।

कुंचित अलकावलीसे आवृत्त श्रीकृष्णके गण्डस्थलपर दिव्य कुण्डल शोभायमान हो रहे हैं। ललित हास्ययुक्त वदनकमल अपूर्व शोभासे नित्योत्सवमें परिव्याप्त हो रहा है। नित्योत्सवकी केन्द्रभूमि, मृदु मंद हास्यामृत, सर्व महामाधुर्यकी मधुरिमाके चक्रवर्त्ती रूपमें विराजमान है। पौगण्ड एवं किशोरकी वयःसंधिके कारण हर्ष, औत्सुक्य, चापल्य आदि श्रीकृष्णके मुखमण्डलपर उदय होकर अस्थिरता दर्शा रहे हैं। ताम्बूल चर्वणके द्वारा रंजित शुभ्र दन्त राशि तथा मंजु हास्य युक्त अधर लालिमा अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही है।

ऐसा प्रतीत होता है मानो पूर्णमासीकी रात्रिमें उदित चन्द्रमा अपनी किरण प्रभाके द्वारा समस्त जीवोंके ताप, कष्टको दूर कर रहा है तथा भक्तरूपी चकोर-चकोरियोंके हृदयमें लोभ उत्पन्न करा रहा है। श्रीकृष्णकी इस अनुपम सौन्दर्य माधुरीका दर्शनकर ब्रजदेवियोंमें कामाम्बुधि वर्धित होकर उनके कुल,

जाति, धर्म, धैर्य आदिका ध्वंसकर मोह उत्पन्न कर रहा है तथा वे आनन्दसमुद्रमें निमज्जित हो रही हैं। श्रीकृष्णके मृदु–मन्द हास्ययुक्त मनोहर कपोलोंपर दोदुल्यमान मकराकृति कुण्डल नृत्य कर रहे हैं तथा कपोलोंका आलिङ्गन, चुम्बन कर रहे हैं। यह देखकर गोपियोंके हृदयमें श्रीकृष्ण धीरललित रूपमें उदित हो रहे हैं। गण्डस्थलका आलिङ्गन स्पर्श करते कुण्डल ब्रजसुंदरियोंके स्तनोंको आलिङ्गन–चुम्बन करनेका अभिप्राय व्यक्त कर रहे हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णके माधुर्योत्सवको निहारकर गोपियाँ परितृप्त नहीं हो रही हैं तथा पलकों द्वारा दर्शनमें व्यवधान पड़नेके कारण कुपित होकर ब्रह्माको अभिसम्पात दे रही हैं, कोस रही हैं कि ब्रह्मा सृष्टि करने योग्य नहीं है। इतने सुन्दर दर्शनके लिए केवल दो ही आँखें दीं और उनपर भी पलक रूपी कपाट लगा दिये हैं। मरकर हम दूसरे जन्में ब्रह्मा बनेंगी तब इसे सृष्टि करना सिखायेंगी। ऐसे सौन्दर्यके दर्शनके लिए केवल दो आँखें पर्याप्त नहीं हैं। समस्त शरीरमें बिना पलकके आँखें–ही आँखें हों जिससे हम अपलक प्रचुर दर्शन कर सकें।

श्लोकमें 'नार्य्य' शब्द राधादि गोपियोंके लिए तथा 'नरा' शब्द सुबलादि प्रियनर्म सखाओंके लिए व्यवहृत हुआ है।

श्रीकृष्णकी प्रेम माधुरी, लीला माधुरी, रूप माधुरी तथा वेणु माधुरी अपने परिपूर्णतम रूपमें केवल ब्रजमें ही विराजमान है। इसी कारण अन्य–अन्य धामोंसे ब्रजधामका, अन्य–अन्य श्रीकृष्ण–स्वरूपों तथा अवतारोंसे ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीराधारमणका तथा ब्रजगोपिकाओंका विशेष महत्व तथा वैशिष्ट्य है।

श्रीकृष्णका रूप विधाताने अपूर्व बनाया है इसीका वर्णन श्रीमद्भागवत (३.२.१३) में इस प्रकार है—

यद्धर्मसूनोर्वत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः।
कात्स्न्र्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत।।१९।।

—धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जब भगवान कृष्णके उस नयनाभिराम रूपपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी, तब त्रिलोकीने यही माना था कि मानव सृष्टिकी रचनामें विधाताकी जितनी चतुराई है, सब इसी रूपमें पूरी हो गई है।।१९।।

युधिष्ठिर राजसूये नयनमङ्गल। कृष्णरूप लोकत्रय-निवासी सकल।।
जगतेर सृष्टि मध्ये अति चमत्कार। विधातार कौशल ए करिल निर्धार।।

भजनरहस्यवृत्ति—उद्धवजी श्रीकृष्ण प्रेममें विह्वल होकर विदुरजीके सम्मुख श्रीकृष्णके रूप सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं। कहते हैं—जिन लोगोंने युधिष्ठिर महाराजके राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन किया, वे विधाताकी सृष्टि रचना-कौशलकी सराहना करने लगे। नीलोत्पल अथवा इन्द्र नीलमणिकी आभाको भी पराजित करने वाली कमनीय अंग कांतिके दर्शनकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं। इस श्लोकमें विधाताके रचना-कौशलकी प्रशंसा की गई है, किन्तु श्रीकृष्ण विग्रह नित्य अनादि हैं तथापि लौकिक दृष्टिसे सृष्टि आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है। श्रीकृष्णका स्वरूप अनादि-सिद्ध नित्य नरवपु है, अर्थात् मनुष्यकी भाँति है। उनका यही स्वरूप वृन्दावनमें प्रकाशित होता है तथा नरलीलाके उपयुक्त है। श्रीकृष्णकी वैकुण्ठादि धामोंमें भिन्न-भिन्न स्वरूपोंसे जितनी भी लीलायें हैं, उन सबमें उनकी नरवत्-लीला जो उन्होंने ब्रजमें एक साधारण मनुष्यकी भाँति की है, सर्वश्रेष्ठ है। गुणोंके प्रकाशके तारतम्यानुसार श्रेष्ठ मध्यमादिके भेदसे श्रीकृष्णका पूर्णतम, पूर्णतर एवं पूर्ण इन तीन प्रकारसे कीर्त्तन हुआ है। उनके सर्वगुण प्रकाशक स्वरूपको अर्थात् जिसमें उनके समस्त गुण पूर्णतम रूपसे अभिव्यक्त हुए हैं उसे पूर्णतम कहते हैं। श्रीकृष्णकी पूर्णतमता वृन्दावनमें है। केवल वृन्दावनमें ही श्रीकृष्ण पूर्णतम भगवान स्वरूपसे प्रकाशित होते हैं, क्योंकि व्रजके परिकरोंमें प्रेमकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है—अतः श्रीकृष्णका सौन्दर्य-माधुर्य ऐश्वर्य पूर्णतम रूपमें प्रकाशित होता है। अन्यान्य सब स्थानोंपर वहाँके परिकरोंके प्रेम विकासके तारतम्यानुसार श्रीकृष्ण पूर्णतर एवं पूर्ण स्वरूपोंसे प्रकाशित होते हैं।

ब्रजमें पूर्णतम प्रकाशित श्रीकृष्णका ब्रजवासियोंके साथ दास्य, सख्य तथा वात्सल्य इन तीन भावोंमें कोई एक सम्बन्ध रहता है। इन तीनों भावोंमें हर एकमें एक सम्बन्धकी अपेक्षा है तथा सेवामें सम्बन्धकी मर्यादा है। किन्तु कान्ता भाववती ब्रज गोपियोंका श्रीकृष्णके साथ कांत-कान्ताका सम्बन्ध है तथा इनका सम्बन्ध सेवा, वासनाके अनुगत है। कृष्णके सुख तथा सेवाके लिए आर्यपथ तथा मर्यादाका उल्लंघन करनेमें भी इन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। अतः कान्ता-प्रेमका उत्कर्ष सर्वातिशायी है। इन

समस्त कान्ताओंमें भी श्रीराधाजी सर्वशिरोमणि हैं। श्रीराधाके प्रेमने श्रीकृष्णको सम्यक्‌रूपसे वशीभूत कर रखा है। श्रीराधा प्रेमके प्रभावसे श्रीकृष्णचन्द्रका पूर्णतम सौन्दर्य एवं माधुर्य उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त करता है।

अनुरागमें श्रीमूर्ति दर्शनका फल यथा श्रीमद्भागवत (३.२.१४)—

यस्यानुरागप्लुतहासरास–लीलावलोकप्रतिलब्धमानाः।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः।।२०।।

—श्रीकृष्णके अनुरागयुक्त हास्य-विनोद और लीलामय चितवनसे सम्मानित होनेपर ब्रजबालाओंकी आँखें उन्हींकी ओर लग जाती थीं। उनका चित्त ऐसा तादात्म्य हो जाता था कि वे देह-गेहकी सुध बिसराकर जड़ पुतलियोंकी भाँति खड़ी रह जाती थीं।।२०।।

अनुराग हास-रास लीलावलोकने। सम्पूजित-ब्रजगोपी नित्य दरशने।।
सर्वकृत्य समाधान अन्तरे मानिया। कृष्णरूपे मुग्धनेत्रे रहे दाड़ाइया।।

—प्रेममें वशीभूत श्रीकृष्ण अनुरागयुक्त हास-विलाससे गोपियोंपर अपाङ्ग दृष्टि निक्षेप करते हैं, तो उनके हृदयमें प्रेमका वर्धन होता है तथा उनमें श्रीकृष्ण-सुख वर्धनकी इच्छा जाग्रत होती है। वे विविध प्रकारके हास-परिहास तथा मान-अभिमानके द्वारा श्रीकृष्णको उत्कण्ठित करती हैं। इस उत्कण्ठित हृदयके साथ प्रेमके प्रतिदान स्वरूप श्रीकृष्ण गोपियोंके मान प्रशमनके लिए धावित होते हैं। गोपियोंकी प्रगाढ़ अनुरागमय प्रेमके वशीभूत हो श्रीकृष्ण अपनेको गोपियोंका चिर ऋणी स्वीकारकर कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

महाभाववती ब्रजरमणियोंके भावसिंधुमें अनंत तरंगें उच्छ्वलित होती हैं तथा वे सदासर्वदा, गृह मार्जन, अनुलेपन, दधिमन्थनादि गृहकार्य करते कृष्णकी विविध लीलाओंका स्मरण करते-करते तन्मय हो जाती हैं। ब्रजरमणियोंके चित्त एवं इंद्रियाँ श्रीकृष्णकी अनुगामी होती हैं तथा श्रीकृष्णके चित्तमें उनका मन आरोहित हो जाता है। उनकी चेष्टाएँ देखकर अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या स्वयं श्रीकृष्ण भी विस्मित हो जाते हैं।

गोपियोंमें अतिशय अनुरक्त श्रीकृष्ण अनेकों प्रकारसे उनकी प्रार्थना आदि करते हैं, मानिनियोंको मनानेकी चेष्टामें उनसे विताड़ित होते हैं तथा कुञ्ज द्वारपर प्रवेशकरनेकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं। उस समय गोपियाँ भी अंतरमें अपनेको कृतकृत्य मानकर, श्रीकृष्णकी उस सौन्दर्य छटाका पानकर निश्चेष्ट हो जड़ताको प्राप्त हो जाती हैं।

माधुर्य रूपमें सर्वेश्वर्य भाव, यथा तत्रैव (३.२.२१)—

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोटीड़ितपादपीठः।।२१।।

—स्वयं श्रीकृष्ण त्रिशक्तिके अधीश्वर हैं। उनके समान भी कोई नहीं है, उनसे बढ़कर तो कौन होगा? वे अपनी चिद्‌राज्यलक्ष्मी सेवित पूर्णकाम हैं। इन्द्रादि असंख्य लोकपालगण नाना प्रकारकी भेंटें ला-लाकर अपने-अपने मुकुटोंके अग्रभागसे उनके चरण रखनेकी चौकीको प्रणाम किया करते हैं।।२१।।

समाधिक शून्य कृष्ण त्रिशक्ति ईश्वर। स्वरूप-ऐश्वर्ये पूर्णकाम निरन्तर।।
सोपायन-लोकपाल किरीट निचय। लग्नपादपीठ स्तवनीय अतिशय।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्णका स्वरूप अनन्त है तथा उनके अवतारादि भी अनन्त असंख्य हैं। श्रीकृष्णका अपार ऐश्वर्य है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव—ये तीनों सृष्टिके ईश्वर हैं, किन्तु ये तीनों श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं, श्रीकृष्ण सबके अधीश्वर हैं। यह अर्थ सामान्य है। तीन पुरुषावतार कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी श्रीकृष्णके अंशके अंश कला हैं। अतः श्रीकृष्ण सबके अधीश्वर हैं, त्रयधीश्वरका यह अर्थ भी मध्यम है। एक और सार अर्थ इस प्रकार है—शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके तीन निवास स्थानोंकी प्रसिद्धि वर्णित है एक तो श्रीकृष्णका अंतःपुर गोलोक-श्रीवृन्दावन है, जहाँ श्रीकृष्ण नित्य अपने माता-पिता-बन्धुगण और कान्ताओंके साथ विराजमान हैं। जहाँ योगमाया दासी होकर उनकी सेवा करती है। इस गोलोक धामके नीचे परव्योम है, जिसका दूसरा नाम विष्णुलोक है। यहाँ श्रीकृष्णकी विलासमूर्ति श्रीनारायणादि अनन्त स्वरूप निवास करते हैं। यह श्रीकृष्णका मध्यम निवास स्थान है। उस परव्योमके नीचे श्रीकृष्णका तीसरा निवास स्थान है जिसे बाह्यावास कहते हैं—यह विरजा नदीके इस पार प्राकृत राज्यमें अवस्थित है, इसमें अनन्त ब्रह्माण्ड मानो कोठरियोंकी भाँति वर्तमान हैं। इसे देवीधाम अर्थात् माया देवीका धाम भी कहते हैं। इसमें मायाबद्ध जीव रहते हैं तथा जगत्‌लक्ष्मी जो चिद्‌राज्य लक्ष्मीकी छाया है, इस जगतकी सम्पत्तिकी रक्षा करती है। श्रीकृष्ण इन तीनों (गोलोक, परव्योम तथा प्राकृत ब्रह्माण्ड) लोकोंके अधीश्वर हैं। गोलोक तथा परव्योम दोनों चिन्मय तथा चिद्‌शक्तिकी विभूति हैं अतः इन्हें 'त्रिपादैश्वर्य' नामसे

पुकारा जाता है। मायाकी विभूति प्राकृत ब्रह्माण्डको एकपाद-ऐश्वर्य कहा जाता है। श्रीकृष्णके चिन्मय धामोंका ऐश्वर्य परिमाण मायिक जगतसे तीन गुना अधिक होता है।

श्रीकृष्णकी त्रिपाद विभूतिकी महिमा तो वाक्यसे अगोचर है। एकपाद विभूतिके अनन्त ब्रह्माण्डोंके जितने ब्रह्मा एवं शिव हैं—उन्हें चिर लोकपाल कहते हैं। एकबार द्वारकामें श्रीकृष्ण दर्शनके लिए ब्रह्माजी आये। द्वारपालने भीतर जाकर भगवानको सूचना दी कि ब्रह्माजी उनसे मिलने आये हैं। श्रीकृष्णने पूछा—"कौन-सा ब्रह्मा आया है? क्या नाम है? पूछकर आओ।" द्वारपालने आकर तदनुसार जिज्ञासा की। यह सुनकर ब्रह्माजी विस्मित रह गये और बोले, "सनकादिका पिता चतुर्मुख ब्रह्माजी आये हैं, ऐसा जाकर कहिये।"

ब्रह्माजी सुधर्मा-सभाकी देहलीपर पहुँचते ही स्तब्ध रह गये। वहाँ लोगोंकी इतनी भीड़ लगी थी कि वे भीतर प्रवेश ही नहीं कर सके—अष्टमुखसे लेकर सहस्रों मुखवाले करोड़ों-करोड़ों इन्द्र, ब्रह्मा, शिव आदि लोकपाल श्रीकृष्णके पादपीठके सामने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। उस समय उनके रत्नजड़ित मुकुटोंके पृथ्वीपर लगनेसे बड़े जोरसे झंकार ध्वनि उठ रही थी, जो लोकपालों द्वारा की गयी जयध्वनिके साथ मिलकर दिग्दिगन्तमें गूँज रही थी। उस समय चतुर्मुख ब्रह्माकी दशा करोड़ों सूर्योंके बीच एक खद्योत जैसी हुई। सहसा सबकुछ अन्तर्हित हो गया। अकेले चतुर्मुख ब्रह्माजी स्तब्ध होकर खड़े थे। वे इस श्रीकृष्णके महैश्वर्यको देखकर चमत्कृत हो उठे। उनका सारा अभिमान दूर हो गया। अपने अपरा धके लिए लज्जित होकर क्षमा-प्रार्थनाके लिए स्तव-स्तुतियाँ करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको विदा किया।

त्रयधीश्वर शब्दका एक और गूढ़ अर्थ भी है। त्रि शब्दसे श्रीकृष्णके तीन लोकोंका अभिप्राय है। गोकुल, मथुरा और द्वारका—इनका दूसरा नाम 'गोलोक' भी है। इन तीनों लोकोंमें श्रीकृष्णकी सहज नित्य अवस्थिति है। इन तीनों धामोंके अधीश्वर श्रीकृष्ण स्वयं ही हैं। अतः उन्हें त्रयधीश्वर कहा जाता है। ऊपर कहे गये अनन्त प्राकृत ब्रह्माण्डोंके जितने भी दिक्पाल हैं तथा अनन्त वैकुण्ठोंके आवरणोंमें रहनेवाले जितने चिरलोकपाल हैं—वे सभी श्रीकृष्णकी पादपीठमें दण्डवत प्रणाम करते हैं। स्वराज्य

लक्ष्म्याप्तसमस्तकामः—स्वराज्य लक्ष्मी अर्थात् चिद् राज्यलक्ष्मी श्रीकृष्णकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करती हैं। श्रीकृष्णकी इन वैकुण्ठादि धामोंमें जितनी भी लीलाएँ हैं, उन सबमें उनकी नरवत् लीला ही सर्वश्रेष्ठ है तथा उनका अंतःपुर श्रीगोलोक वृन्दावनका माधुर्य परिमण्डित ऐश्वर्य वैकुण्ठादिके अनंत कोटि ऐश्वर्यसे अधिक है।

श्रीकृष्णकी कृपा अचिन्त्य और अहैतुकी है, यथा तत्रैव (१०.१६.३६)—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता।।२२।।

—नागपत्नियाँ श्रीकृष्णकी स्तुति करती हुई कहती हैं—भगवन्! हम नहीं समझ पातीं कि यह इसकी किस साधनाका फल है, जो यह आपके चरणकमलोंकी रजका स्पर्श पानेका अधिकारी हुआ है। आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिए आपकी अर्द्धांगिनी लक्ष्मीजीको भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोंका त्याग करके नियमोंका पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी।।२२।।

की पुण्ये कालिय पाय पदरेणु तव। बुझिते ना पारि कृष्ण कृपार सम्भव।।
जाहा लागि लक्ष्मीदेवी तप आचरिल। बहुकाल धृतव्रता कामादि छाड़िल।।

भजनरहस्यवृत्ति—कालिय नागकी पत्नियाँ अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगीं—“हे गोकुलेश्वर! इस नीच कालियने किस सुकृतिके फलस्वरूप आपकी दुर्लभ चरणरेणुको प्राप्त किया, यह हमारी समझसे अतीत है। श्रीनारायण वक्षविलासिनी, परम सुकोमला, अत्यन्त सुन्दरी श्रीलक्ष्मी देवीने पति संग परित्यागकर, कठोर व्रत पालन करके आपकी चरणरज प्राप्तिके लिए घोर तपस्या की, किन्तु प्राप्त नहीं कर सकीं। प्रभो! जिस प्रकार कालियने आपके चरणद्वयका साक्षात् स्पर्श पाया वैसा सौभाग्य श्रीलक्ष्मीजीके लिए भी सम्भवपर नहीं है।”

आलोच्य श्लोकमें कालियका सौभाग्य वर्णन है। श्रीलक्ष्मीजी लक्ष्मी देहसे ही नन्दनन्दन श्रीकृष्णका संग चाहती थीं, किन्तु नन्दनन्दन कृष्ण किसी देवी, स्त्री या रमणीको स्वीकार नहीं करते। उनकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है व्रजदेवियोंका आनुगत्य करके गोपीदेह और गोपीभाव पाना। श्रीलक्ष्मीके लिए ऐसा सम्भव नहीं था, इसीलिए उनको श्रीकृष्ण संगम प्राप्त नहीं हुआ।

श्रीजीव गोस्वामीपाद कहते हैं कि श्रीलक्ष्मीमें गोपियोंकी भाँति अनन्यताका अभाव था—'अप्राप्तिकारणञ्च गोपीवत् तदनन्यताभाव ऐवति च।'

कालिय द्वारा श्रीकृष्ण चरणोंकी प्राप्तिके दो कारण हो सकते हैं—एक तो परमभक्तिमती पत्नियोंका संग तथा दूसरा वृन्दावनके अंतर्वर्ती स्थान श्रीयमुनामें वास। कालियको पूर्वजन्मके संस्कारवश यह दोनों लाभ-प्राप्त हुए, किन्तु अपनी अपराधी प्रवृत्तिके कारण वह इनकी अवहेलना करता था। अपराधीजनोंके निकट धाम आदि चिन्मय वस्तु समूह अतिशीघ्र क्रिया प्रकाश नहीं करते। श्रीकृष्ण जब कालियके फणोंको नृत्यशील पदोंके प्रहार द्वारा विदीर्ण कर रहे थे, उस समय वह अपने मुखोंसे रक्त उगलने लगा। उसे अपनी पत्नियोंकी बातोंपर विश्वास हुआ कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं। तब वह शरणागत हुआ। फिर तो कृष्ण कृपा करनेके लिए प्रतीक्षा कर ही रहे थे।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद अपनी टीकामें वर्णन करते हैं कि अपनी भक्तिमति पत्नियोंके संगके कारण भक्तिबीज कालियके हृदयमें था, किन्तु अपराध एवं क्रूरताके कारण वह उसके ऊसर भूमि रूपकठोर हृदयमें अंकुरित नहीं हो रहा था। श्रीकृष्णके चरण स्पर्शके द्वारा अपराधयुक्त ऊसर भूमि भक्ति लता बीजके लिए उपजाऊ हो गई तथा बीज अंकुरित हो गया।

व्रजगोपियोंकी भक्ति ही सर्वोत्तम है यथा श्रीमद्भागवत (१०.४७.६०)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीतकण्ठ–
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्।।२३।।

—रासोत्सवमें भगवान श्रीकृष्णकी भुजलताओं द्वारा आलिंगित कण्ठ होकर अपने मनोरथोंको पूर्ण करती हुई व्रजसुन्दरियोंने जिस कृपाको प्राप्त किया है, उस कृपाको श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें निरन्तर निवास करनेवाली लक्ष्मीजी भी प्राप्त न कर सकीं। कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तियुक्त देवाङ्गनाएं भी जब उस कृपाको प्राप्त न कर सकीं तो फिर अन्यान्य रमणियोंकी तो बात ही क्या?।।२३।।

रासे ब्रजगोपी-स्कन्धे भुजार्पण करि। जे प्रसाद कैल कृष्ण कहिते न पारि।।
लक्ष्मी ना पाइल सेइ कृपा अनुभव। अन्य देवी किसे पावे से कृपा-वैभव।।

भजनरहस्यवृत्ति—ब्रजभाव लोभित श्रीउद्धव अत्यन्त धैर्य, विनम्रता तथा दैन्यपूर्वक, भगवद्‌भक्तोंकी मुकुटमणि श्रीकृष्ण प्रियाओं (व्रजगोपियों) के चरणकमलोंमें उक्त श्लोकके द्वारा महार्घपुष्पाञ्जलि प्रदान कर रहे हैं। इन शब्दोंके द्वारा व्रजसुन्दरियोंकी प्रेम-महिमा प्रदर्शित हो रही है। व्रजदेवियोंकी जगत् पूज्याके रूपमें घोषणा करते हुए उद्धवजी कहते हैं कि ऐसा अपूर्व तथा अदृष्टपूर्व भगवद् प्रसाद अन्य किसीने प्राप्त नहीं किया। श्लोकमें 'उ' शब्दके द्वारा उद्धवजीका विस्मय प्रकट होता है। रासोत्सवमें श्रीकृष्णने उल्लसित होकर व्रजगोपियोंके जिस प्रकार कण्ठ देशका आलिंगनकर उनका मनोरथ पूर्ण किया, वह सौभाग्य वक्षःस्थित लक्ष्मीको भी प्राप्त नहीं हुआ। पद्मसुगंध और कांति-विशिष्टा स्वर्गकी रमणियाँ भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकीं, तो अन्यान्य रमणियोंके लिए यह कहाँ सम्भव है?

श्रील जीव गोस्वामीपाद अपनी टीकामें पूर्वपक्ष उठाते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण और नारायण तो तत्त्वतः अभिन्न हैं तथा वक्षःविलासिनी, निरतिशय प्रेमयुक्ता लक्ष्मीदेवी नारायणकी स्वरूपशक्ति हैं। श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें विराजमान हैं। श्रीकृष्णसे उनका कभी विच्छेद नहीं है, तो लक्ष्मीजीके भावोंकी प्रशंसा न कर गोपियोंके भावोंकी प्रशंसा क्यों की गई है?

यह इसलिए कि तत्त्वतः कृष्ण तथा नारायणमें अभेद होनेपर भी श्रीकृष्णका रस-चमत्कारितापूर्ण लीला-वैशिष्ट्य अति उज्ज्वल रूपमें सुशोभित होता है। लक्ष्मीजी केवल सम्भोग रसमें स्थित हैं, किन्तु गोपियाँ कभी मिलन तथा कभी विरह युक्ता होती हैं। लक्ष्मीजी नारायणकी वक्षःविलासिनी प्रेयसी हैं, किन्तु गोपियाँ श्रीकृष्णकी केवल प्रेयसी ही नहीं, वे पारकीयभाव सम्पन्ना रास-रसरङ्गिणी भी हैं तथा श्रीकृष्णकी प्रेम-माधुरीका विस्तार अपूर्वरूपमें करती हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरका ऐश्वर्य एवं माधुर्य सर्वोत्तम रूपमें व्रजदेवियोंके निकट ही प्रकाशित होता है इसी माधुर्यकी लालसासे उत्कण्ठित होकर लक्ष्मीजी कृष्ण-संगमकी अभिलाषिनी होती हैं। गोपियोंके समान ऐकान्तिक निष्ठाका भी लक्ष्मीजीमें अभाव है। श्रीकृष्ण गोपजातिके हैं—नरलीलामें अपनेमें गोप अभिमान रखते हैं, इसलिए उनकी प्रेयसियाँ भी स्वाभाविक गोप कन्याएँ—गोपियाँ ही हो सकती हैं। श्रीलक्ष्मीजी

गोपीदेह धारण नहीं करना चाहती थीं इसके लिए गोप गृहमें जन्म, पारकीय भावके लिए अन्य गोपसे विवाह, नित्यसिद्धा गोपियोंका संग तथा अपने ब्राह्मणी–अभिमानका परित्याग आदि कार्य वे नहीं कर सकीं। इसलिए कृष्णसे उनका मिलन नहीं हुआ। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे। (श्रीमद्भागवत १०.४७.३५) अर्थात् दूरवर्तिनी प्रियामें प्रियतमका चित्त जितना अधिक आकर्षित होता है, उतना निकट वास करने वाली प्रियतमामें नहीं होता। इस कारण भी सर्वदा वक्षःविलासिनी लक्ष्मीजीकी सौभाग्य महिमा कम है।

श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंकी मुकुटमणि रासलीला है। श्रीसनातन गोस्वामीपाद कहते हैं—'रासः परम रस कदम्बमय रति यौगिकार्थ' रास परम रस है, परम रस वह है, जिसका सम्बन्ध परम वस्तुके साथ है। रासक्रीड़ा न तो इस जगतमें है, न स्वर्गमें। द्वारकामें सोलह हजार एक सौ आठ महिषियाँ हैं वहाँ इसकी संभावना हो सकती है किन्तु वहाँ भी नहीं है। अन्यान्य भगवत् धामोंमें यहाँ तक कि वैकुण्ठमें भी नहीं है। केवलमात्र वृन्दावनमें ही रासकी अभिव्यक्ति है तथा इसमें सहयोगिनी हैं ब्रजरमणियाँ। इस परमरस कदम्बमय लीलाकी मूल उत्स हैं—श्रीवृषभानुनन्दिनी। रासलीला महोत्सवमें श्रीश्यामसुन्दर अत्यन्त आनन्दपूर्वक प्रेमार्णवकी तरंगोंमें डूब और उबर रहे हैं। उस प्रेमरूपी उत्ताल समुद्रमें गोपियोंके हाव–भाव कटाक्षरूपी सुउच्च लहरियोंसे अपनेको संरक्षित करनेके लिए ब्रजदेवियोंके कण्ठको धारणकर उनके तटप्रान्तमें स्थित हो रहे हैं।

उद्धवजीने ज्ञान–दृष्टिसे कृष्ण रुक्मिणीके भावी विवाहका दर्शन किया है तथापि ब्रजगोपियोंके सौभाग्यकी गंध भी वह रुक्मिणी प्राप्त नहीं कर सकीं, जो जगत् विख्यात हरिप्रिया हैं; फिर अन्यान्य महिषियों तथा स्वर्गदेवियों की क्या गिनती है? ब्रजदेवियाँ श्रीकृष्णको वशीभूत करनेमें सम्पूर्ण रूपसे समर्था हैं। समर्था रतियुक्त महाभावका चूड़ान्त मादनाख्य भाव एकमात्र श्रीराधाका ही भाव है। वे मधुररसकी मूल विलास हैं; अन्य समस्त गोपियाँ रस उपकरणके रूपमें रहती हैं। श्लोकमें 'ब्रजसुंदरीणाम्'–पदसे श्रीराधाके प्रेम, सौन्दर्य, सुशीलता, नृत्य, गान–चातुरी, गुणावली, रूप–सम्पत्ति तथा पांडित्यसे अभिप्राय है।

अन्य सभी प्रकारके भक्त गोपीभावकी आकांक्षा करते हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१०.४७.६१)—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।२४।।

—अहो! जिन ब्रजदेवियोंने दुस्त्यज्य पुत्रादि रूप स्वजन एवं आर्यपथ मर्यादाका परित्यागकर श्रुतिगण द्वारा अन्वेषणीय अति दुर्लभ, श्रीकृष्णमें प्रेमभक्ति मार्गीय भजनका आश्रय लिया है, उनकी चरण रेणुको सेवन या प्राप्त करनेवाले श्रीवृन्दावनके गुल्म, लता व औषधियोंमेंसे कोई एकरूप मैं प्राप्त कर सकूँ—यही मेरी प्रार्थना है।

दुस्त्यज्य आर्यपथ-स्वजन छाड़ि दिया। श्रुतिमृग्य कृष्णपद भजे गोपी गिया।।
आहा! ब्रजे गुल्म लता-वृक्ष देह धरि। गोपी पद रेणु कि सेविब भक्ति करि।।

भजनरहस्यवृत्ति—पूर्व श्लोकमें श्रीउद्धवने गोपियोंकी प्रेम माधुरीकी सर्वोत्कर्षताका वर्णन किया है। वे अपने हृदयमें अपनी तुच्छता एवं दीनताकी गम्भीर रूपमें उपलब्धि कर रहे हैं। उनके हृदयमें भी गोपियोंकी भाँति प्रेम लालसा जाग्रत होने लगी। जो प्रेम लक्ष्मी एवं महिषियोंके लिए भी दुर्लभ है उसकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है, महाभाववती गोपियोंकी चरण रजमें अभिषिक्त होना। यह प्रेम अत्यन्त दुर्लभ है, इस भावको वे अहो! शब्दके द्वारा व्यक्त कर रहे हैं। नित्यसिद्धा गोपियोंका कृष्णानुराग स्वाभाविक रूपमें है। इसी गाढ़ अनुरागके कारण वे दुर्लंघ्य लोक-धर्म आदिका परित्याग करनेमें समर्थ हुईं। गोपियोंका जैसा कृष्णानुराग प्राप्त करनेके लिए गोपालतापनी आदि उपनिषद्, श्रुतियाँ भी लालसान्वित होकर उसका अन्वेषण करती हैं। उद्धवजी चिन्ता करने लगे कि, "महाभाववती गोपियों जैसा सौभाग्य प्राप्त करना मेरे लिए संभव नहीं। यदि किसी प्रकार उनके चरणोंकी रज पाऊँ, यही एक उपाय है।" उसके लिए अपनेको अति नीच, तुच्छ जानकर वृन्दावनमें गुल्म, लता, औषधि आदि किसी योनिमें जन्मकी प्रार्थना कर रहे हैं।

ब्रजदेवियाँ परम अनुरागवशतः लोक-लज्जा, धैर्यादिका परित्यागकर, श्रीश्यामसुन्दरसे मिलनेके लिए रात्रिमें अभिसार हेतु गमन करती हैं, तब

उन्हें प्रेम वैवश्यके कारण पथ–अपथका विचार भी नहीं रहता है। श्रीश्यामसुन्दरकी वंशीध्वनि श्रवणमात्रसे कामबाण बिद्ध हो उन्मादिनीकी भाँति वनकी पगडण्डीको छोड़ झाड़ी, काँटा, कुशादिकी परवाह न कर हिरणियोंकी भाँति चलती हैं। उस समय उनकी चरणधूलि तृण, गुल्म आदिपर पड़ती है। इस चरण धूलिको मैं केवल तृण, लता, गुल्मादि बनकर ही प्राप्तकर सकता हूँ। यदि मैं काकुस्वरमें प्रार्थना कर उनसे उस धूलिकी याचना करूँ तो वे मुझे प्रदान नहीं करेंगी। (सारार्थदर्शिनीटीका श्रीविश्वनाथ–चक्रवर्तीपाद)

उद्धवजीके मनमें यह शंका भी है कि, 'मेरा जन्म एवं भाव, ब्रजभावसे भिन्न है, इसलिए गोपियाँ मुझपर क्यों कृपा करेंगी?' श्लोकमें 'चरणरेणु' एक वचनमें है अर्थात् यह गोपियोंकी चूड़ामणि श्रीमती राधिकाको ही लक्षित करता है।

'मुकुन्द पदवी' अर्थात् कृष्णकी प्राप्ति। गोपियोंको यह सेवा सदैव ही प्राप्त है। श्रीजीव गोस्वामीजी कहते हैं—मुकुन्द, 'मुक्तिं ददाति' अर्थात् वेणी और नीवी बंधनसे मुक्तिदाता। श्रीसनातन गोस्वामीजी 'मुकुन्द पदवी' का तात्पर्य वर्णन करते हैं 'तदनुरक्ति भजन' गोपियाँ गोचारणके पूर्व, पश्चात्, पूर्वाह्न तथा अपराह्नमें कृष्णके गमन, आगमनको बड़ी उत्कण्ठापूर्वक निहारती हैं, प्रतीक्षामें रत रहती हैं, अपाङ्ग–भंगी, हाव–भावके द्वारा कृष्णके हृदय तथा मनका हरण करती हैं। यह विशिष्ट सेवा केवल गोपियाँ ही कर सकती हैं। वास्तविक रूपमें गोपियों द्वारा अपनाया गया कृष्ण–सेवाका मार्ग ही आर्यपथ या शास्त्र निर्दिष्ट है। श्रीकृष्णके लिए समस्त लौकिक पारलौकिक विधियोंका सम्पूर्ण त्यागकर ऐकान्तिक रूपसे निरुपाधिक प्रेम ही वेद–विहित व्यवस्था है। कृष्ण प्राप्तिके लिए आर्यपथ उल्लंघनमें भी दोष नहीं है।

एक अर्थके अनुसार 'मुकुन्द पदवी' का अर्थ है जो भक्तोंमें, भक्ति मार्गमें सर्वश्रेष्ठ हो और वह एकमात्र गोपियाँ ही हैं।

श्रील सनातन गोस्वामीपादने बृहद्भागवतामृत ग्रंथमें प्रश्न उठाया है कि, रुक्मिणीदेवीने भी श्रीकृष्ण प्राप्तिके लिए, पिता आदि द्वारा व्यवस्थित पाणिग्रहणका परित्याग किया, एवं कुलीन कन्या–धर्मकी लज्जाका परित्यागकर, स्वयं पत्रिका रचनाकर, निज पुरोहित पुत्रके द्वारा श्रीकृष्णके निकट आत्मसमर्पण किया था। ब्रजदेवियोंका कृष्णके लिए लज्जा परित्याग तथा रुक्मिणीके कुलीन धर्म परित्यागमें क्या विशेष वैशिष्ट्य है? गोपियोंकी

कृष्णरतिमें कोई हेतु नहीं है, जबकि रुक्मिणीने कृष्णका नाम, रूप, गुण आदि श्रवणकर उनसे प्रेम किया। गोपियोंका कृष्णके प्रति परमानुराग जन्मसे स्वाभाविक रूपमें है तथा कृष्ण मिलनकी परम उत्कण्ठा ही उनसे स्वजन, आर्यपथका उल्लंघन कराती है। श्रीजीव गोस्वामी प्रीति संदर्भमें कहते हैं कि इसी उत्कण्ठासे ही प्रेमकी परमोत्कर्षता प्रकटित होती है। गोपियोंकी परम उत्कण्ठा एक अद्भुत प्रभावका विस्तार करती है, जिससे आर्यपथका त्याग स्वाभाविक रूपसे हो जाता है।

श्लोकस्थ 'मुकुन्द' शब्दका तात्पर्य है—कुन्द पुष्पकी भाँति जिनका अत्यन्त मनोहर मुखारविन्द है तथा धीर ललित नायक श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंकी सभामें अपना माधुर्य प्रकाशित करते हैं।

गोपियोंका भाव देखकर ब्रह्माको भी क्षोभ होता है यथा श्रीमद्भागवत (१०.४७.५८)—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रुढभावाः।
वाञ्छति यद्भवभियो मुनयो वयञ्च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य।।२५।।

निखिल जीवोंके आत्मस्वरूप श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंका अनन्य रूढ़भाव है। इसीसे उनका शरीर धारण करना सार्थक है। यही कृष्णप्रेमकी सर्वोत्तम स्थिति है। संसारभयसे भयभीत मुमुक्षु ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े महापुरुष तथा हम जैसे भक्त भी उस भावको पानेकी वाञ्छा करते हैं। किन्तु प्राप्त नहीं कर पाते। जिनका मन कृष्णकथामें लग चुका है, उन्हें शौक्र, सावित्र एवं याज्ञिक, इन तीनों जन्मोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिनको कृष्णकथामें रुचि नहीं है, तो महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्माका जन्म लेनेसे भी क्या लाभ?

भवभीत मुनिगण आर देव गण। याँहार चरणवाञ्छा करे अनुक्षण।।
से गोविन्दे रुढ़भावापन्न गोपी धन्य। कृष्ण रस आगे ब्रह्म जन्म नहे गण्य।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीमान उद्धव 'एताः' आदि श्लोकों द्वारा सर्वलोक पूजित, भक्तोंकी मुकुटमणि गोपियोंकी वन्दना कर रहे हैं। उद्धवजी कृष्णके प्रिय अन्यतम सखा हैं, वे गोपियोंके विलक्षण प्रेमको देखकर विस्मित हो रहे हैं तथा विचार कर रहे हैं—ब्रह्माजी कृष्णके पुत्र हैं, किन्तु उनमें पुत्रत्वका

अभिमान है। शंकर कृष्णसे एकात्मा हैं, किन्तु उनमें स्वरूपका भाव अधिक और भक्तिका भाव कम है। संकर्षण भ्राताके भावमें तथा लक्ष्मीजीमें पत्नीत्व अधिक और प्रेमभाव कम है। किन्तु गोपियाँ कृष्णको प्राण प्रियतमके रूपमें निरुपाधिक प्रेम करती हैं, जो प्रेमकी उच्चतम अवस्थाको प्राप्त है। उनका गोकुलेन्द्रनन्दन गोविन्दके प्रति रूढ़ भाव है। रूढ़ भाव अर्थात् मधुर भावयुक्त, गौरव सम्भ्रम रहित प्रेम, कृष्णके प्रति निरुपाधिक प्रीति, सर्व निरपेक्ष जार भाव। महाभाव जब कुछ ऊपर उठता है तब रूढ़ भाव होता है। गोपियोंका रूढ़भाव अर्थात् आरूढ़ भाव। गोपियाँ महाभावकी अंतिम सीमा तक आरूढ़ हैं। केवल रूढ़भाव कहनेसे उनका भाव संकुचित हो जायेगा। आरूढ़ अर्थात् मादन, मोदन आदि सभी भाव, इन भावोंसे सम्पन्न ब्रजदेवियाँ गोविन्दकी आत्मस्वरूपा हैं, यही अर्थ है 'निखिलात्मनि रूढ़भावा'का।

उद्धवजी विचार करने लगे, "स्वयं–भगवान परमेश्वरकी घनमूर्ति ही गोविन्द हैं। सर्वशास्त्र कहते हैं, अखण्ड, अद्वयतत्व गोविन्द आदिपुरुष हैं। गोविन्द अपनी रूप माधुरीसे ब्रजवासियोंको आनन्द प्रदान करते हैं। गो विन्दयति इति गोविन्द अर्थात् गोप, गोपी, ग्वालबाल, गायोंका आनन्द विधान करते हैं। गो अर्थात् इन्द्रियोंमें व्याप्त गोपियाँ गोविन्दकी इन्द्रियोंमें व्याप्त हैं। ऐसी ब्रजदेवियोंके प्रति साधारण नारीत्व भाव रखना घोर अपराध है। वे प्रेमकी घनमूर्तियाँ हैं, साधारण नारी नहीं।

'वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयंच' मुमुक्षु, मुनिगण आदि जिन्हें मुक्ति प्राप्त हो गई है, आत्माराम यहाँतक कि गोविन्दके साथ रहनेवाले उद्धव, पाण्डव, यादवगण (चतुर्मुख–ब्रह्मा) आदि भी गोपियोंके महाभावके द्वारा आकर्षित होते हैं, इसकी लालसा करते हैं। जिनको अनन्तकी कथामें रुचि नहीं हुई तो उसका ब्रह्माका जन्म भी व्यर्थ है। ब्रह्माका जन्म लेकर सृष्टि कार्य करके या ब्राह्मण जन्म पाकर वेद, उपनिषद् शास्त्र पढ़कर, व्रत, तपस्या आदि करके भी कोई लाभ नहीं। श्रीलजीव गोस्वामीपाद कहते हैं, **जिनकी श्रीकृष्णकी प्रेम–माधुर्य कथामें रुचि नहीं, उनका जन्ममृत्यु तुच्छ एवं निरर्थक है।** यदि गोपी अनुरूप भाव न रहे तो कृष्ण ग्रहण नहीं करते, मथुरावासिनी ब्राह्मण पत्नियोंको उन्होंने लौटा दिया।

'भुवि' अर्थात् पृथ्वी, स्वर्गसे गोलोक पर्यन्त तीनों लोकोंमें केवल गोपियोंका ही शरीर धारण करना सफल है।

'तनुभृतो भुवि'—समस्त जीवोंका यहाँतक कि पृथ्वीके नीच क्षुद्र जीवोंका भी संसारसे उद्धारकर कृष्ण अपने हृदयस्थित गोपियोंके प्रेमसे यथोचित सबका पालन-पोषण करते हैं, प्रेम प्रचार करते हैं, प्रेम विशेषका आस्वादन करते और कराते हैं तथा विस्तार करते हैं, उसी शक्तिका नाम गोपी है। इस श्लोकमें उद्धवजी ब्रजदेवियोंके माहात्म्यमें उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तथा गोपवधुओंके जार भावको दाम्पत्य भावसे अधिक श्रेष्ठ ठहराते हैं। यह जार भाव, व्रजके अतिरिक्त अन्यत्र सम्भव नहीं है। पारकीय भावमें रस एक अपूर्व चमत्कारितासे निष्पादित होता है।

श्रीभगवानके ऐश्वर्य-प्रिय भक्त भी गोपी भावको पानेकी लालसा करते हैं, यथा तत्रैव (१०.४४.१४)—

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्।
दृग्भि पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य।।२६।।

—सखि! पता नहीं गोपियोंने कौनसी तपस्या की थी, जो नेत्रोंसे सदासर्वदा इनकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, लावण्यका सार! संसारमें या उसके परे किसीका भी रूप इनके समान नहीं, तो फिर बढ़कर होनेकी तो बात ही क्या है? जो किसीके सँवारने-सजानेसे नहीं, गहने कपड़ेसे नहीं निखरता बल्कि स्वयंसिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती, क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जाता है। समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं। इनका दर्शन अन्य किसीके भाग्यमें नहीं केवल गोपियोंके भाग्यमें ही लिखा है।।२६।।

यशः श्री ऐश्वर्य धाम दुर्लभ एकान्त। अतीव लावण्यसार स्वतःसिद्ध कान्त।।
कि तप करिल गोपी याहे अनुक्षण। नयनेते श्याम रस करे आस्वादन।।

भजनरहस्यवृत्ति—कंसके रंगस्थलमें श्रीकृष्णके अपूर्व रूपलावण्यका दर्शनकर विस्मित होकर एवं उसके आस्वादन करनेमें लालायित होकर मथुराकी रमणियाँ उक्त श्लोक कहती हैं। वे कहती हैं—हे सखि! गोपियोंने कौन-सी तपस्या की है? कि जिसके फलस्वरूप वे श्रीकृष्ण रूपमाधुरीको नेत्र भर-भर कर पान करती हैं। उन्होंने अपने जन्म, तन एवं मनको सफल कर लिया है। वह मधुरिमा कैसी है? जिससे बढ़कर और जिसके

समान और कोई रूपमाधुरी नहीं है। परव्योममें जितने भगवत्स्वरूप हैं, यहाँ तक कि श्रीकृष्णके विलास मूर्ति स्वरूप—नारायणमें भी ऐसी रूपमाधुरी नहीं है—औरोंकी तो बात ही क्या है?

श्रीकृष्णका माधुर्य ही सर्वश्रेष्ठ है, वह अनन्यसिद्ध तथा स्वाभाविक है, किसी अन्य अलंकारादि वस्तुओंसे साधित नहीं है। अतः वह समस्त सौन्दर्य माधुर्यादि गुणोंका उद्गमस्थान है—या खान है। ऐसा सर्वोपरि माधुर्यमय श्रीकृष्ण स्वरूप केवल वृन्दावनमें ही विराजमान है। व्रजभूमि धन्य है जिसमें पुराण पुरुष निगूढ़ वेषमें लीला करते हैं। उस व्रजभूमिकी व्रजदेवियाँ भी धन्य हैं जो सर्वमाधुर्य मण्डित धीर-ललित नायक श्रीकृष्णका दर्शन व्रजमें करती हैं। 'अमुष्य' शब्दसे अंगुलि द्वारा निर्देश करके माथुर रमणियाँ कहने लगीं कि, "हमारे अल्प पुण्योंसे आज हम इस रंगभूमिमें श्रीकृष्णका दर्शन कर रही हैं, किन्तु गोपियोंका पुण्य पूर्णतम है।

अहो सर्वज्ञ मुनिजन! हमें निर्देश करें कि हम गोपियोंकी भाँति किस प्रकार तपस्या करें, कि हम भी श्रीकृष्णके व्रज-माधुर्य-रूपको निहार सकें।

कोई माथुर रमणी विस्मयके साथ कहने लगी, "अरी सखि! ब्रजदेवियोंका सौभाग्य किसी तपस्याका फल नहीं। उनका प्रेम निर्हेतुक एवं निर्वाच्य है। यदि कहो हम भी व्रजमें चलकर गोपियोंकी भाँति कृष्णकी रूपसुधाका पान करें" तो दूसरी बोली—'दुरापं' यह तो हमारे लिए अत्यन्त दुर्लभ है। परम प्रेमी गोपियोंकी कृपा द्वारा ही वह सुधापान सम्भव है। अन्य कोई कहने लगी, "अरी! व्रजगोपियोंके आगे श्रीकृष्णका माधुर्य क्षण-प्रतिक्षण नव-नवायमान रूपमें प्रकाशित होता है।"

मथुराकी नागरियाँ व्रजदेवियोंके सौभाग्यकी महिमाका वर्णनकर उन जैसी सेवाकी लालसा करती हैं। श्रीकृष्णके साथ व्रजदेवियोंका प्रेम-विलास, लीलामाधुर्य आदि व्रजसे आनेवाली फल-विक्रयिणी आदिसे श्रवण करती हैं। इस श्रवणसे उनके हृदयमें भी गोपियों जैसी सेवाका लोभ उत्पन्न हुआ।

सायंकालीन लीला-सूचना, यथा गोविन्दलीलामृत (२०.१)—

सायं राधां स्वसख्या निजरमणकृते प्रेषितानेकभोज्यां
सख्यानीतेश-शेषाशन-मुदितहृदं तां च तं च व्रजेन्दुम्।
सुस्नातं रम्यवेशं गृहमनुजननी-लालितं प्राप्तगोष्ठं
निर्व्यूढ़ोऽस्रालिदोहं स्वगृहमनु पुनर्भुक्तवन्तं स्मरामि।।२७।।

—जो सायंकालमें अपनी सखीद्वारा अपने रमण श्रीकृष्णके लिए नानाविध भोजन व्यंजन भेजती हैं और सखियों द्वारा वहाँसे लाये हुए श्रीकृष्णके उच्छिष्ट व्यंजनोंको भोजन कर आनन्दित होती हैं, उन श्रीराधाजीका मैं स्मरण करती हूँ। जो गोष्ठमें आकर स्नान करके, सुन्दर वेषभूषा धारण करते हैं और घरमें माता यशोदा द्वारा अनेक प्रकारसे लालित होते हैं, गोष्ठमें जाकर जो गोदोहन करनेके बाद घरमें आकर पुनः भोजन करते हैं, मैं उन श्रीकृष्णका स्मरण करता हूँ।।२७।।

श्रीराधिका सायं काले, कृष्ण लागि पाठाइले,
सखी हस्ते विविध मिष्ठान्न।
कृष्णभुक्त शेष आनि, सखी दिल सुख मानि,
पाञा राधा हइल प्रसन्न।।
स्नात रम्यवेश धरि, यशोदा लालित हरि,
सखासह गोदोहन करे।
नानाविध पक्व अन्न, पाइया हैल परसन्न,
स्मरि आमि परम आदरे।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधा सायंकाल आया जानकर हृदयमें अति उत्कण्ठित हैं कि कृष्ण अब गोचारण कर आते ही होंगे। शुक्ल वस्त्र धारणकर सखियों सहित रसोईघरमें उन्होंने अमृतकेलि, कर्पूरकेलि, चन्द्रकान्ति, मोदक आदि अनेक मिष्ठान्न तैयार किये। उन सबको नये मिट्टीके पात्रोंमें रखा तथा एक सुन्दर शुक्ल वस्त्रसे ढककर प्राणसखी, नित्य सखियोंके हाथ, अपने प्रियतमके लिए नन्दभवनमें भिजवा दिया। सखियाँ तो गयीं, किन्तु श्रीराधाका मन भी साथ गया, वे चिन्तन कर रही हैं, "जब मेरी सखी नन्दालय पहुँचेंगी तो मैया उसे हृदयसे लगाकर मेरी याद करेंगी तथा मुझे आशीर्वाद देंगी। बाबा और सखाओंसे घिरे हुए मेरे प्राणनाथ इन पकवानोंको खायेंगे। पता नहीं उन्हें क्या अच्छा लगेगा और क्या नहीं।" इस प्रकार श्रीराधाजी भाव नेत्रोंसे सन्ध्याकालीन भोजनका दर्शन करती हैं। सखियोंने उन सब भोज्य पदार्थोंको ब्रजेश्वरीको अर्पित किया। ब्रजेश्वरीने बड़े प्रेम पूर्वक वे सब वस्तुएँ श्रीकृष्ण, बलराम तथा सखाओंको परोसीं। छल-कौशलसे धनिष्ठाने श्रीकृष्णका भुक्तशेष, श्रीराधाके पास, सखीके हाथ भिजवा दिया। साथ ही अभिसारके स्थानकी सूचना भी दी। इधर श्रीराधा बड़ी व्यग्रतासे

सखीके नन्दभवनसे लौटनेकी प्रतीक्षा कर रही हैं। सखी आकर वहाँके सब वार्तालापोंका वर्णन करती हैं। कृष्णने कौनसी वस्तु किस स्वादसे खाई। श्रीराधा भी उसी स्वादसे श्रीकृष्ण भुक्तावशेषका आस्वादन करती हैं। सखियाँ भी श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाके उच्छिष्ट प्रसादको पाकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं।

।।इति श्रीभजनरहस्ये षष्ठयाम साधनम्।।

सप्तमयाम—साधन

प्रदोषकालीय भजन—विप्रलम्भ प्रेम

(छह दण्डरात्रिसे मध्यरात्रि पर्यन्त)

सिद्धि या साध्यभक्तिका अन्तर्लक्षण, विप्रलम्भ रसमें कृष्णभजन—यथा शिक्षाष्टक सप्तम श्लोक—

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे।।१।।

—हे सखि! गोविन्दके विरहमें मेरा निमेषमात्र काल भी युगके समान प्रतीत होता है; मेरी आँखोंसे वर्षाकालीन वर्षाधाराकी भाँति आँसुओंकी वर्षा होने लगती है और यह सारा संसार मुझे शून्यसा प्रतीत होता है।।१।।

उद्वेगे दिवस ना याय, क्षण हैल युगसम। वर्षार मेघप्राय अश्रु वर्षे दुनयन।।
गोविन्द विरहे शून्य हइल त्रिभुवन। तुषानले पोड़े येन ना जाय जीवन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्ण विरह कातरा राधाजीके भावमें आविष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभुजी कह रहे हैं—सखि! श्रीनन्दनन्दनके बिना, उद्वेगके कारण मेरे दिन नहीं बीतते; एक-एक क्षणका समय भी एक-एक युगके समान प्रतीत होता है। जैसे बादलोंसे वर्षा होती है, वैसे ही मेरी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी वर्षा हो रही है। गोविन्दका विरह अब सहा नहीं जाता, सारा संसार शून्यसा प्रतीत हो रहा है; इस तुषानल रूपी विरहाग्निमें सदासर्वदा शरीर जल रहा है, परन्तु प्राण नहीं निकल रहे हैं। अब मैं क्या करूँ?

विप्रलम्भ भावमें पूर्वराग तथा प्रवास भजनमें अनुकूल हैं। मिलनके पूर्व उत्कण्ठामयी रतिको 'पूर्वराग' कहते हैं। गाढ़ भावसे अनुरक्त गोपियोंके हृदयमें श्रीकृष्णके रूप, गुण आदिकी प्रशंसा सुनकर नाना प्रकारके भावोंकी उद्दीपना होती है, जिससे उनके हृदयमें एक अद्भुत अवर्णनीय व्यग्रता उपस्थित होती है, उस व्यग्रताको ही रसशास्त्रवेत्ता मनीषिगण पूर्वराग कहते हैं। इस पूर्वरागकी दशामें लालसा, उद्वेग, जागरण आदि नाना प्रकारके संचारी भावोंका उद्गम होता है। अगले पाँच श्रीमद्भागवतीय श्लोकोंमें गोपियोंके पूर्वरागका वर्णन है।

गोपियों द्वारा श्रीकृष्णके अधरसुधाका पान करनेवाले वेणुकी प्रशंसा, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२१.९)—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु–
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः।।२।।

—अरी गोपियों! इस वेणुने ऐसी कौनसा पुण्याचरण किया है कि यह गोपियोंके प्राप्य कृष्णाधर–सुधाका पान करता है। उसका अवशिष्ट रस भी सम्पूर्णरूपसे पान कर लेता है—हमलोगोंके लिए तनिक भी नहीं छोड़ता। सखी री! यमुना, मानसीगंगा आदि नदियाँ और सरोवर भी वेणुके सौभाग्य दर्शनकर कमल आदि पुष्पोंके रूपमें रोमांचित हो रही हैं तथा वृक्षगण प्रेमसे अश्रुमोचन करते हैं। वे वृक्ष मन–ही–मन सोचते हैं कि हमारे वंशमें एक ऐसा ही वंशधर पैदा हुआ है, जैसे आर्य पुरुषोंके कुलमें एक वैष्णव संतान पैदा होनेपर वे प्रसन्न होते हैं।।२।।

अरे सखि! किवा तप कैल कृष्ण वेणु। गोपी प्राप्य मुखामृत पिये पुनः पुनः।।
अवशेषजल देय तरु अश्रुछले। साधुपुत्र–प्राप्ते येन पितृ–अश्रु गले।।

भजनरहस्यवृत्ति—एक गोपी दूसरी गोपीसे कह रही है—हे सखि! इस नीरस काष्ठके वेणुने कौनसे महापुण्यका अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप एकमात्र गोपियोंके उपभोग्य श्रीकृष्णके अधरामृतका यथेच्छ एवं स्वतंत्ररूपसे प्रचुर मात्रामें आस्वादन करता है, हमारे लिए अल्पमात्र भी नहीं छोड़ता है। इस वेणुका यह सौभाग्य देखकर मानसी गंगा आदि सरोवर कमलविकासके छलसे पुलकित हो रहे हैं। अपने वंशमें किसी भगवत्प्रेमी सन्तानको देखकर कुलवृद्ध जैसे अश्रु प्रवाहित करते हैं वैसे ही सभी वृक्ष इसके साथ सम्बन्ध जोड़कर मधुधारा क्षरणके बहाने मानो नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित कर रहे हैं। कृष्णके साथ मिलनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित व्रजरमणियाँ अत्यन्त अधीर हो उठीं। कृष्णकी रूपमाधुरीकी स्फूर्ति होनेके साथ–ही–साथ अधरोंपर विराजित वेणुको देखकर वेणुके दुर्लभ सौभाग्यकी भावना करने लगीं। वे कहने लगीं, "अरी सखि! यह वेणु महासौभाग्यवान् है, इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं, क्योंकि यह सदासर्वदा कृष्णके संग–सुधाका रसास्वादन करता है। किन्तु यह इस दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्तकर

इतना दुर्विनीत और अहंकारी हो गया है कि हमारे लिए अत्यन्त असहनीय हो उठा है। क्योंकि यह गोपिकाओंके भोग्य दामोदरके अधरामृतको अपनी ही भोग्य सम्पत्ति मान बैठा है। दामोदर गोपवंशमें पैदा हुये हैं। हम भी उसी कुलमें जन्मीं हैं। बचपनसे ही हममें परस्पर प्रेम है। ये हमारे प्रियतम हैं, इसलिए इनके अधरामृतमें हमारा ही पूर्ण अधिकार है। किन्तु यह धृष्ट और निर्लज्ज वेणु हम गोपिकाओंको हमारे जन्मसिद्ध अधिकारसे वञ्चितकर यथेच्छ रूपसे इनके अधरामृतका पान कर रहा है। गोपवंशमें जन्म ग्रहणकर हम भी गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके अधरामृत पानसे वञ्चित हैं, किन्तु वेणु स्थावर वृक्ष-वंशमें जन्म लेकर भी निरन्तर कृष्ण-अधरामृतका पान करता है, वह भी पुरुषरूपसे हमें अगूँठा दिखाकर यशोदा मैयाने जिस दिन कृष्णका रज्जु द्वारा बन्धन किया था, उसी दिनसे कृष्णका दामोदर नाम प्रसिद्ध हुआ और उसी समयसे हम गोपिकाओंके साथ कृष्णकी प्रीति है। उस समय व्रजमें वेणुका नाम-गन्ध भी कोई नहीं जानता था। तत्पश्चात् जब कृष्णने गोचारण करना आरम्भ किया, उसी समयसे वेणुके साथ कृष्णका सम्बन्ध हुआ। इस किंचिन्मात्र सम्बन्धसे ही कृष्ण-अधरामृतका पूर्ण उत्तराधिकारी बन गया और हम गोपिकाएँ बचपनसे ही कृष्णको प्यार करनेपर भी इस अधिकारसे वञ्चित रहीं। इसीलिए कहती हूँ, सखि री! गोपी-जन्मसे वेणु-जन्म ही श्रेष्ठ है और धन्य है।"

"इस वेणुका ऐसा सौभाग्य देखकर वृक्ष फूले नहीं समाते। वे फूलों और फलोंसे भर जाते हैं। उनसे मधु झरने लगता है। मानो वे अपनी संतानका ऐसा परम सौभाग्य दर्शनकर रोमाञ्चित हो रहे हैं और गर्वसे प्रेमाश्रु विसर्जन कर रहे हैं। ऐसा क्यों न हो वेणु बाँससे बना है तथा बांस वृक्षोंकी श्रेणीमें ही आता है। बाँस नदियों और सरोवरोंके जलसे पुष्ट होता है। उनका जल, जल नहीं, बल्कि उसके लिए दूध है। अतः नदियाँ एवं सरोवर बाँसकी माताएँ हैं। ये माताएँ अर्थात् यमुना, मानसगंगा, पावनसरोवर, मानसरोवर, कुसुमसरोवर आदि अपने पुत्रका यह दुर्लभ सौभाग्य देखकर खिले हुए पुष्पोंके बहाने कभी हँस रही हैं और कभी अपनी ऊँची-नीची तरंगोंके माध्यमसे बड़े उल्लाससे आह्लादित हो रही हैं तो कभी आनन्दाश्रु बहा रही हैं।"

महाभाववती गोपियाँ इस प्रकार वेणुके सुसौभाग्य और अपने दुर्भाग्यका विचारकर ईर्ष्या, असूया आदि सञ्चारी भावोंसे विभावित हो रही हैं। वे

कहती हैं, 'इस वेणुने पूर्व जन्ममें कोई कठिन तपस्या या पुण्यकार्य किया होगा। यदि हम इसे जानतीं, तो हम भी ऐसी तपस्या या पुण्यकार्य कर ऐसे दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्त करतीं। पौर्णमासीजी भूत, भविष्यत् और वर्तमानको जानने वाली सिद्धा तपस्विनी हैं, चलो उनसे पूछकर उनके उपदेशानुसार आचरणकर ऐसे दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्त करेंगी।"

श्रील सनातन गोस्वामीपादके अनुसार यह श्लोक स्वयं वृषभानुनन्दिनीका उद्गार है। वे अपनी प्रिय ललिता सखीसे अपने भावोंको प्रकटकर रही हैं। विभिन्न उक्तियों और अनुभावोंका विश्लेषण करनेपर यह सुस्पष्ट होता है कि यह प्रेम अधिरूढ़ महाभावके स्तरका है।

वेणुनाद श्रवणसे सनाथ हरिणियोंका अहोभाग्य, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२१.११)—

धन्याः स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः।।३।।

–अरी सखि! जब नन्दनन्दन श्यामसुन्दर विचित्र वेष धारण करके अपनी वेणुपर मधुर तान छेड़ते हैं, तब अज्ञानतम पशुयोनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण मूढ़ बुद्धिवाली ये हिरणियाँ भी उसे सुनते ही अपने पति कृष्णसार हिरणोंके साथ उनकी ओर दौड़ती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निहारने लगती हैं। निहारती क्या हैं, सखि! अपनी कमल जैसी बड़ी-बड़ी आँखोंके तिरछे कटाक्षोंके द्वारा वे उनका अर्चन करती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभरी चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं। वास्तवमें उनका जीवन धन्य है। सखि! हम वृन्दावनकी गोपियाँ होनेपर भी इस प्रकार स्वयंको समर्पित नहीं कर सकती हैं। हमारे घरवाले कुढ़ने लगते हैं। कितनी विडम्बना है?।।३।।

कृष्णचित्र-वेश स्वीय चक्षेते हेरिया। ताँहार वाँशरी-ध्वनि कर्णेते शुनिया।।
पूजार विधान कैल प्रणय-नयने। कृष्णसारसह आज धन्य मृगीगणे।।

भजनरहस्यवृत्ति—महाभाववती व्रजरमणियाँ अपने प्रेमस्वभाव सुलभ अतृप्तिके कारण कृष्णसे मिलनके लिए सर्वदा बेचैन हैं। वे किसी प्रकार भी अपने चित्तको स्थिर नहीं कर पा रही हैं। कृष्णके साथ जिनका किसी

प्रकारसे तनिक भी सम्बन्ध देखती हैं, उसीको परम सौभाग्यशाली मानती हैं। वृन्दावनमें प्रविष्ट सर्वभूत मनोहर गोविन्दका वेणुनाद श्रवण करके गृहमें बैठी गोपियाँ प्रेमरसमें निमग्न हो रही हैं तथा भाव-नेत्रोंसे वनकी हिरणियोंको देख रहीं हैं। ये हिरणियाँ वेणुवादन सुनकर, चरना छोड़कर तथा बच्चोंका लालन-पालन सब कुछ परित्यागकर बड़े तीव्र वेगसे दौड़ती हुई कृष्णके समीप उपस्थित हो जाती हैं। वे कृष्णके इतनी समीप खड़ी हो जाती हैं कि कृष्ण उन्हें हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं। गोपियाँ अवहित्था भावसे अपने भावोंकी अभिव्यक्ति करने लगीं। कोई सखी कहने लगी, अरी सखि! इन पशु जातिकी हिरणियोंका कृष्णके प्रति अनुराग तो देखो। ये हिरणियाँ ही धन्य हैं, हम मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर भी मनुष्योचित दर्शन एवं सेवासे वंचित हैं। यही तो हमारी विडम्बना है।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जब शरत्कालमें वनविहारके लिए उपयोगी विचित्रवेशमें सुसज्जित होकर गोचारणके लिए वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं तथा आनन्दके साथ मनोहर वेणी ध्वनि करते हैं, तब हिरणियाँ भुवन मनोहर श्यामसुन्दरके रूप माधुर्यका दर्शन एवं वेणुनाद श्रवणकर कृतकृतार्थ हो जाती हैं। कोई सखी इस प्रकार कहने लगी—'प्राणनाथ श्यामसुन्दरकी वेणुनादको श्रवणकर जब हिरणियाँ बेसुध होकर स्खलित गतिसे कृष्णके प्रति अग्रसर होती हैं, तब उनके पीछे उनके पति कृष्णसार मृग भी उनका अनुसरण करते हैं। ये हिरण अपनी पत्नियोंका आनुगत्य स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार हिरणियोंको कृष्णके साथ मिलनमें कोई बाधा नहीं पड़ती। कृष्णसारका तात्पर्य है कृष्ण ही एकमात्र उनके जीवनके सार हैं। यह सुनकर एक अन्य सखी कहने लगी, 'सत्य ही है सखी! इन हिरणियोंकी तरह हमारा सौभाग्य कहाँ। हम तो स्त्री जातिकी, परवधू होनेके कारण लोक लज्जाका परित्याग नहीं कर सकतीं। यदि किसी दिन श्यामसुन्दर गोचारणके लिए हमलोगोंके गृहके निकटवर्ती मार्गसे गमन करते हैं, तो उस समय हम किसी प्रकार गवाक्ष रंध्रसे उनका दर्शनकर पाती हैं, उसपर ही हमारे सगे सम्बन्धी भर्त्सना एवं बाधा उत्पन्न करते हैं। हमारे पति भी प्रतिकूल हैं, इससे तो मानव जन्मकी अपेक्षा मृग जन्म ही सार्थक है।

व्रजदेवियोंकी कृष्ण मिलनकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। कृष्ण मिलनमें उत्कण्ठा तथा लालसा ही साधकके लिए बहुत सहायक है।

'प्रणयावलोकैः पूजां दधौ' का यह तात्पर्य है कि हिरणियाँ कृष्णकी ओर अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखोंसे प्रणयपूर्वक अवलोकन कर रही हैं। वे नयनरूपी प्रदीपके द्वारा कृष्णकी आरती उतार रही हैं। कृष्ण भी उनकी पूजाको स्वीकार कर रहे हैं।

श्रील रूपगोस्वामी उज्ज्वलनीलमणि ग्रंथमें प्रणयकी परिभाषा देते हुए कहते हैं कि 'नायक और नायिका दोनोंके हृदय जब अभिन्न हो जायं तब वह प्रणय है।' आज हिरणियोंका हृदय कृष्णसे अभिन्न हैं इसीलिए गोपियोंने 'प्रणयावलोकैः' शब्दका व्यवहार किया है। हिरणियाँ इस अवलोकन द्वारा भावरूपी कुसुम आदि विचित्र पूजा-सामग्री कृष्णको अर्पण कर रही हैं। इस श्लोकमें व्रजदेवियोंका परकीया प्रेम-माधुर्य उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

वेणुध्वनि श्रवणकर समस्त नदियोंमें गतिरोध हो जाता है तथा वे कमल पुष्पोंसे कृष्णके चरणोंकी पूजा करती हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२१.१५)—

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः।।४।।

—यमुना, मानसी गंगा प्रभृति नदियाँ श्रीकृष्णका वेणुगीत सुनकर मदनसे (कामसे) मोहित हो जाती हैं। उनके अंदर प्रणयकी इच्छासे आवर्तसमूह उठने लगते हैं। वे गति विहीन होकर तरङ्गरूपी बाहुओंके द्वारा कमल-उपहार लेकर मदनमोहनका आलिंगन करती हुई उनके चरण युगलको अपने वक्षःस्थलपर धारण करती हैं।।४।।

आहा नदी कृष्णगीत श्रवण करिया। स्त्रोतोवेग फिराइल मोहित हइया।।
उर्मिछले कृष्णपद आलिङ्गन कैल। ओ पदयुगले पद्म उपहार दिल।।

भजनरहस्यवृत्ति—कृष्णानुरागिनी व्रजदेवियाँ कृष्णके मधुर वेणुनादको सुनकर प्रेममें विवश हो गईं। वे अपनी सजातीय सखियोंके समीप वेणुनादके प्रभाव आदिके विषयमें तरह-तरहकी बातें करने लगीं। उत्प्रेक्षाके द्वारा यह वर्णन करना आरम्भ किया कि कृष्णके मधुर वेणुनादसे अचेतन जलमयी नदियोंमें भी कैसे-कैसे प्रेम विकार उत्पन्न होते हैं। यद्यपि नदियोंमें किसी प्रकारके भाव विकारकी सम्भावना नहीं है, तब भी महाभाववती व्रजरमणियाँ अपने-अपने महाभावके अपूर्व स्वभावके वशीभूत होकर चेतन-अचेतनका विचार न कर सर्वत्र ही अपने-अपने भावोंका आरोप करती हैं। उत्तमाधिकारी

भक्तगण अपने इष्टदेव श्रीभगवानके प्रति जिस भाव और सम्बन्धसे आबद्ध रहते हैं, समस्त प्राणियोंमें भी अपने उसी भाव और सम्बन्धको देखते हैं—

महाभागवत देखे स्थावर जङ्गम। ताहाँ ताहाँ हय तार श्रीकृष्ण स्फुरण।।
स्थावर-जङ्गम देखे ना देखे तार मूर्ति। सर्वत्र हय ताँर इष्टदेव स्फूर्ति।।

(चै. च. म. ८.२७२-३)

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मनोरम वृन्दावनमें विचरण करते हुए जब यमुना अथवा मानस गंगाके तटप्रदेशमें उपस्थित होकर उनके कल-कल निनादको श्रवण करते हैं, उनके उत्ताल तरंगोंपर तरंगायित सुन्दर कमलके फूलोंको देखते हैं, उनके कूलपर रहनेवाले कोकिलकी कुहु-कुहूध्वनिको श्रवण करते हैं तथा सुरभित मन्द-मन्द समीरका सुखद स्पर्श पाते हैं, तो परमानन्दमें विभोर होकर मुरलीकी मधुर तान छेड़ देते हैं। मुरलीके उस मधुर संगीतको सुनकर नदियोंका प्रवाह स्थगित हो जाता है, उनके वक्षःस्थलपर अगणित भँवर (आवर्त) प्रकट हो पड़ते हैं, जलराशि स्तब्ध और स्फीत होकर क्रमशः कृष्णके वक्षःस्थल तक पहुँच जाती है। उनके तरंगोंके पुनः पुनः आघातसे कमलके पुष्प मृणालसे अलग होकर कृष्णके चरणोंमें उपस्थित हो जाते हैं।

नदियोंमें पड़ रहे भँवरको देखकर गोपिकाएँ अपने भावोंको गोपन नहीं रख सकीं। कोई सखि कहने लगी, 'अरी सखि! हमारे प्राणकान्तकी वेणुध्वनि सुनकर यह नदी बेसुध एवं कामविकार ग्रस्त हो गई है। प्राणकान्तका सर्वमनोहर मुख कुन्दकुसुमकी भाँति प्रफुल्लित, सुरभित, कोमल, मधुर एवं चित्ताकर्षक है, इसीलिए वे मुकुन्द हैं। उस सुकोमल मुखारविन्दसे वे चुम्बन, अधरदंशन आदि सम्भोगरसका आस्वादन करते हैं। सम्भोग रसास्वादनके समय सभी प्रकारके बंधन खुल जाते हैं तथा काम विकार उद्रेकके कारण उदभ्रान्त चित्तसे गोपियोंके भंवर रूपी नाभिकमलका दर्शन करते हैं।

कोई व्रजदेवि कहने लगी—'मुकुन्दकी भुवनमोहन रूप माधुरीके दर्शन और वेणुनादके आरोह-अवरोहपूर्ण स्वरलहरियोंको सुनकर इनका हृदय कामविकारसे ग्रस्त हो चुका है। वे अब अपने पति समुद्रके बदले प्रबल वेगसे उलटकर कृष्णकी ओर प्रवाहित हो रही हैं। कुछ ऊपर उठकर उन्हीं तरंगरूपी बाहुओंसे मुरारिके वक्षःस्थलका आलिंगनकर रही हैं। कृष्णको

मुरारि कहनेका गोपियोंका एक तात्पर्य है—हम मुर दैत्यका विनाश करने वाले नारायणके समान गुणशाली श्रीनन्दनन्दनके आश्रित हैं, किन्तु बड़े दुःखकी बात है कि काम (मदन) हमें सदासर्वदा सता रहा है, यह देखते हुए भी मुरहर मार (काम या मदन) के प्रति कोई भी दण्ड विधान नहीं कर रहे हैं। श्रीनारायण जिस प्रकार मुर दैत्यका विनाशकर देवताओंको निर्भयकर मुरारि नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी यदि 'मार' अर्थात् कामका विनाशकर 'मुरारि' नामसे प्रसिद्ध हों, तभी इनका नारायणके समान गुणशाली होनेका परिचय पाया जायेगा, अन्यथा नहीं। मारके विनाश होनेसे हम व्रजरमणियाँ भी चैनकी साँस ले सकेंगी।

'आलिङ्गनस्थगित'—जब इन नदियोंकी तरङ्गें उच्छ्वलित होकर कृष्णके वक्षःस्थलतक पहुँचकर पुनः उनके श्रीचरणकमलोंपर तरङ्गायित होने लगती हैं, तो इसे देखकर अनुरागवती गोपियाँ कहने लगती हैं, सखी री! देखो, देखो, ये अनुरागी नदियाँ पहले श्यामसुन्दरको अपने आलिंगनपाशमें बाँधनेकी चेष्टा कर रही हैं; किन्तु उन्हें निर्विकार देखकर लज्जित हो रही हैं तथा आलिंगनसे विरत होकर पुनः अपनी तरङ्गोंरूपी अपने हाथोंसे कमलपुष्पोंका उपहार उनके चरणकमलोंमें अर्पित कर रही हैं।

महाभाववती व्रजरमणियाँ यमुना आदि नदियोंकी भावभंगिमा लक्ष्यकर नाना प्रकारके भावोंको व्यक्त कर रही हैं। श्रीयमुना और मानसगंगाके साथ गोप रमणियोंके भावतादात्म्यका यह अनोखा दर्शन है।

श्रीराम कृष्णके चरणस्पर्शसे गिरि गोवर्धन आनन्दित होते हैं तथा नाना उपचारोंसे वे उनकी पूजा करते हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२१.१८)—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः।।५।।

—अरी सखियों! यह गोवर्धन पर्वत हरिदास चूड़ामणि हैं। धन्य हैं इनका भाग्य! क्योंकि यह हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण तथा नयनाभिराम बलदेव प्रभुके चरणस्पर्शसे हर्षोत्फुल्ल होकर स्वच्छ जल, सुकोमल तृण, विचित्र गुहा एवं नानाविध कंदमूल आदिके द्वारा गोप बालकों और गायोंसे परिवेष्टित श्रीकृष्ण-बलरामकी सेवा द्वारा बड़ा ही सम्मान करते हैं।।५।।

हरिदास वर्य एइ गिरि गोवर्धन। राम कृष्ण-पद स्पर्श सुखे अचेतन।।
सखा धेनु सह कृष्णे आतिथ्य करिल। पानीय-कन्दर-कन्दमूल निवेदिल।।

भजनरहस्यवृत्ति—महाभाव स्वरूपिणी व्रजदेवियाँ कह रही हैं—"भक्तोंमें यदि कोई श्रेष्ठ हैं तो केवल ये गिरिराज ही हैं, जो हमारे प्राणवल्लभ एवं उनके संगी गोपबालकों और गायोंकी सब प्रकारसे सेवा करते हैं। हम तो अबला हैं, हममें कृष्णप्रेम रूपी बल नहीं है। ये गिरिराज कृष्णप्रेमके धनी हैं, चलो सखी हम मानस गंगामें स्नानकर, गिरिराजजीकी परिक्रमाकर उनके अधिष्ठातृ देव श्रीहरिदेवजीका दर्शन कर उनकी पूजा आराधना करें। ऐसा करनेसे हमारी चिरवांछित महादुर्लभ मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। गिरिराजजी हमें कुछ प्रेमधन दे देंगे। देखो बहन! हम चाहती हैं कि प्रियतम श्यामसुन्दरका चिबुक स्पर्शकर उनसे वार्तालाप करें; किन्तु यह कितनी विडम्बनाकी बात है कि साक्षात् सेवाकी तो बात ही दूर रहे, हम तो उनसे वार्तालाप भी नहीं कर सकतीं।

देखो तो कृष्ण इन गिरिराजके अंगोंपर चढ़ जाते हैं। गिरिराजजी इनके अंगोंका स्पर्श पाकर परमानन्दित हो जाते हैं। परमानन्दके कारण उनमें अश्रु, पुलक, रोमाञ्च, स्वेद आदि अष्टसात्त्विक प्रेमके विकारोंको सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। तृणोंका उद्‌गम ही रोमाञ्च है, आर्द्रता ही स्वेद और निर्झर ही अश्रु रूपमें प्रकाशित होते हैं, साथ ही कृष्ण भी गोवर्धनके अंगोंपर क्रीड़ा कौतुककर नाना प्रकारसे परमानन्दित होते हैं। इसे देखकर गिरिराज गोवर्धनको हरिदासवर्य कहे बिना रहा नहीं जाता।"

जिस दासकी सेवासे श्रीहरि आनन्दित होते हैं और जो दास श्रीहरिकी सेवासे परमानन्दित होते हैं, वे दास ही श्रीहरिके दासोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीमद्भागवतमें तीन महत् पुरुषोंको हरिदास कहा गया है। ये तीन हरिदास हैं—महाराज युधिष्ठिर, श्रीउद्धव एवं श्रीगिरिराज गोवर्द्धन। महाराज युधिष्ठिरने परब्रह्म, परतत्त्व, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र श्रीकृष्णको लौकिक सदबन्धुकी भाँति अपना लिया है तथा प्रीतियुक्त दास्य, सख्य, वात्सल्य भावसे वे सेवा करते हैं।

दूसरे हरिदास हैं श्रीउद्धव। जो श्रीकृष्णके दूत बनकर माता-पिता, व्रजरमणियों तथा अन्यान्य व्रजवासियोंको सान्त्वना देनेके लिए व्रजमें आये। वे गोपियोंके उच्चतम प्रेम विकारको लक्ष्यकर चमत्कृत हो गये। वहींपर उन्होंने गोपियोंके पदरजकी महिमाकी उपलब्धि की। यही नहीं उन्होंने व्रजमें तृण, गुल्म, औषधि आदिके रूपमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा प्रकट की। इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिए उन्होंने व्रजस्थित महावदान्य गिरिराज गोवर्द्धन या उनके अंकमें स्थित कुसुम सरोवरके समीप स्थलका चयन

किया और वहीं तृणके रूपमें जन्म ग्रहण किया। किन्तु गिरिराजजीकी भाँति वे व्रजवासियोंकी सेवा नहीं कर सके। गिरिराजजी हरिदासवर्य हैं, सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं, क्यों? क्योंकि कृष्णके साथ प्रत्येक व्रजवासियोंकी आवश्यकता पूर्ण करते हैं। तन, मन, धन, प्राणादि सर्वस्व न्योछावरकर कृष्ण और उनके सहचर गोप बालकों एवं गायोंकी सब प्रकारसे मनोऽभीष्ट सेवा करते हैं। उन्हें पीनेके लिए मानसगंगा आदि सरोवरोंका स्वच्छ, सुशीतल, मधुरजल, भोजनके लिए मीठे-मीठे फल, मूल, कन्द, शृंगारके लिए तरह-तरहके पुष्प, गैरिक धातु तथा विश्राम और विहारके लिए रत्नपीठ, रत्नपर्यंक, मणि प्रदीप, मणिदर्पण, सुशोभित कन्दराएँ तथा कुञ्ज और गायोंके लिए पुष्टिवर्धक तृण आदि समर्पण करते हैं। कृष्ण अपनी प्रेयसियोंके साथ अति रहस्यमय लीलाओंका गिरिराजजीकी सुसज्जित कन्दराओं और गुफाओंमें ही आस्वादन करते हैं। शृंगाररसकी चूड़ान्त सेवामें ये निष्णात हैं। राधाकृष्णकी निभृत निकुञ्ज लीला उनके श्रीअंगोंमें या ऊपरमें होती है; इसलिए उन्होंने पत्थर जैसा स्थावर स्वरूप धारण कर रखा है।

इस प्रकार कृष्णानुरागिनी गोपियाँ गिरिराज गोवर्द्धनकी कृष्णके प्रति अनेक प्रकारकी प्रेममयी सेवाओंको देखकर भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं।

वंशीध्वनि श्रवणकर जङ्गम स्थावरका तथा स्थावर जङ्गमका धर्म प्राप्त कर लेते हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२१.१९)–

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥६॥

—हे सखियों! हमारे श्यामसुन्दर तथा गौरसुन्दर बलराम इन दोनों भाइयोंकी अदा ही कुछ अनोखी-सी है। अपने सखा ग्वालबालोंके साथ श्यामसुन्दर जब मधुर संगीत द्वारा अपने वेणुपर तान छेड़ते हुए अपनी गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, तब अपने सिरपर नोवना बाँध (पगड़ीके ऊपर) लेते हैं तथा कंधोंपर गो-पाश (पीताम्बरकी भाँति) रख लेते हैं। उस अनुपम रूपमाधुरीको देखकर तथा वेणुध्वनिको सुनकर मानवयोनिकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियोंमें भी चलनेवाले चेतन पशु-पक्षी और नदियाँ आदि पत्थरकी भाँति स्थिर हो जाती हैं तथा अचल वृक्षोंमें भी पुलक-रोमाञ्च हो जाता है। इस जादूभरी वेणु-ध्वनिका सखि, और किस प्रकारसे वर्णन करूँ?॥६॥

सखा धेनु सङ्गे कृष्ण उदार स्वभाव। मुरलीर गाने सवे देय सख्यभाव।।
जङ्गमे करिल स्पन्दहीन तरुगणे। पुलकित कैल अहो! विचित्र लक्षणे।।
हेन कृष्ण ना पाइया प्राण फेटे जाय। कबे सखि! विधि कृष्ण दिवेन आमाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—महाभाववती व्रजाङ्गनाएँ भावना कर रही हैं, कि वृन्दावनके चर-अचर सभी प्राणी धन्य हैं। वे किसी-न-किसी रूपमें कृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्तकर अथवा कोई-न-कोई सम्बन्ध प्राप्तकर जीवनको कृतार्थ करते हैं। पूरे व्रजमें केवल हम ही दुर्भागिनी हैं। उसी समय व्रजरमणियोंके हृदयमें गोचारणके लिए कृष्णका वनगमन तथा मधुर वेणुनादकी लीला स्फुरित हुई। उस समय मानो साक्षात् कृष्णका दर्शन लाभकर वे परमानन्दमें विभोर हो गईं तथा प्रेममें विह्वल होकर कहने लगीं, "देखो सखि! कैसी मधुर भंगिमाके साथ नटवर श्यामसुन्दर ललित गतिसे एक वनसे दूसरे वनमें विचरण करते हुए गमन कर रहे हैं। उनके मधुर वेणुनादसे स्थावर-जङ्गम प्राणिमात्र प्रेमानन्दमें विभोर हो रहे हैं। उनमें अष्ट सात्त्विक विकार आदि स्पष्ट रूपमें परिलक्षित हो रहे हैं।" वे और भी कहने लगीं, "निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्—अहो! वन-गमनके समय राम-कृष्ण दोनों भाई निर्योग और पाशको अपने अंगोंपर धारणकर कैसे सुन्दर दिखाई दे हैं।" गायोंका दोहन करते समय चञ्चल बछड़ोंको माताके मुखके समीप रखनेके लिए, खूँटेके साथ जिस रस्सी द्वारा बाँधा जाता है, उसे निर्योग कहते हैं तथा चञ्चल गायोंको दोहनके समय उनको स्थिर रखनेके लिए जिस रज्जुका व्यवहार किया जाता है, उसे पाश कहते हैं। श्रीकृष्ण जिस निर्योग और पाशका व्यवहार करते हैं, वह पीले रंगके पटुएके कोमल तन्तुओंसे बना होता है और उनके दोनों अन्तिम सिरोंपर मुक्ताकी झालरें गुथी होती हैं। कृष्ण अन्य गोपोंकी भाँति अपनी पागके ऊपर निर्योगको बाँध लेते तथा पाशको अपने दोनों कंधोंसे वक्षःस्थलकी ओर झुला लेते हैं। उनका यह वेश इतना मनोरम होता है कि कोई भी उनका वह वेश देखकर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। प्रेमवती गोपरमणियाँ उस मनोहर वेशको देखकर बेसुध हो जाती हैं।

वे पुनः कहने लगीं, "सखि री! विधाताकी सृष्टिमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो राम-कृष्णकी इस भुवनमोहिनी रूप माधुरीको देखकर मुग्ध न हो जाय। जब वे दूरस्थित गायोंको एकत्रित करनेके लिए मोहन मुरलीकी तान छेड़ते हैं, तब उस समय जो अवस्था होती है उसका वर्णन करना

दुःसाध्य है। कृष्णकी इस मोहन मुरलीके अव्यक्त मधुर नादके साथ उनके चरणोंके नूपुरोंका रुन-झुन स्वर मिलकर माधुर्यको और भी वर्द्धित कर देता है। उसे सुनकर ऐसा कौन है जो धैर्य धारण कर सके?

व्रजरमणियाँ प्रेममें विवश होकर कृष्णके परम मोहन गोपबालकोचित वेश और वेणुनादकी बातें करते-करते कहने लगीं, "सखि! कृष्णके निर्योग और पाशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह सचमुच निर्योग पाश है, जिसके द्वारा निश्चित और अविच्छिन्न रूपसे चिरजीवनके लिए योग अर्थात् मिलन होता है, अथवा निर्विकल्प समाधियोग भी जिसके समीप अत्यन्त तुच्छ हो जाता है, वैसे प्रेम पाशको कृष्णने निर्योगपाशके रूपमें धारण कर रखा है। व्रजवासियों तथा वनवासी प्राणियोंको उसके द्वारा विवशकर उस प्रेमपाशका अद्भुत महाप्रभाव प्रदर्शितकर रहे हैं। इस प्रकार गोपियाँ श्रीकृष्णके निर्योगपाशको वैसा ही प्रेमका फंदा मान रही हैं।

कृष्णके वेणुनादसे वनके हिरण, पक्षी आदि सारे चर-जीव प्रेममें विभोर होकर जड़वत् हो जाते हैं। वृक्ष, लता आदि अचर प्राणी अपने स्वभावको छोड़कर जङ्गमका स्वभाव धारण कर लेते हैं। वे हर्षित, रोमाञ्चित एवं पुलकित हो उठते हैं। केवल यही नहीं, कृष्णके वेणुनादसे यमुना, मानसगंगा आदि नदियोंका प्रवाह स्तब्ध हो जाता है, गोवर्द्धन पर्वत आदिकी शिलाएँ विगलित होकर धारा प्रवाहके रूपमें बहने लगती हैं।

मिलनके पश्चात् नायक, नायिकाका पृथक् देशादिमें निवास होनेके कारण न मिल पाना 'प्रवास' कहलाता है। प्रवासमें चिन्ता, जागर्या, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह एवं मृत्यु, दसों दशाएँ अत्यन्त प्रबल रूपमें आविर्भूत होती हैं।

इस दूर-प्रवासमें राधाभाव अधिक उपयोगी है। यहाँ भ्रमरगीत आदि पठनीय हैं। प्रवासके समय श्रीराधिकाके भावोच्छ्वास, यथा श्रीमाधवेन्द्र पुरी वचन यथा पद्यावली (३३५)—

अयि दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ, कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्।।७।।

—हे दीनजनोंके प्रति परमदयालु हृदय! हे नाथ! हे मथुरानाथ! मुझे कब आपके दर्शन होंगे? हे प्राणनाथ! तुम्हारे दर्शनोंके बिना मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है, मैं क्या करूँ?।।७।।

हे दीन दयार्द्रनाथ, हे कृष्ण मथुरानाथ,
कबे पुनः पाब दरशन।
ना देखि-से चाँदमुख, व्यथित हृदये दुःख,
हे दयित! कि करि एखन?

भजनरहस्यवृत्ति—रत्नोंमें जैसे कौस्तुभमणि सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार रसकाव्यमें यह श्लोक सर्वश्रेष्ठ है। यह श्लोक श्रीस्वामिनीजीने कृष्ण विरहमें अत्यन्त कातर होकर दिव्योन्मादकी दशामें कहा है। उनकी कृपासे श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादकी वाणीपर इसकी स्फूर्ति हुई है। राधाभाव अङ्गीकारकर श्रीकृष्णचन्द्रने गौरचन्द्रके रूपमें इस श्लोकका आस्वादन किया। इस श्लोकके मर्मको किसी अन्य चौथे व्यक्तिने आस्वादन नहीं किया। इस श्लोकको पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु प्रेम-विवश होकर मूर्च्छित हो जाते थे। प्रेममें उन्मत्त हो कभी इधर-उधर दौड़ने लगते, कभी हँसते और कभी नाचने लगते। प्रेमावेशके कारण 'अयि दीन, अयि दीन' से आगे उच्चारण न कर पाते, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती। शरीरमें सात्त्विक और व्यभिचारी आदि भाव सुदीप्तरूपसे उदित हो जाते। (श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी)

श्रीमन्महाप्रभु कृष्णप्रेम कल्पवृक्षके माली हैं, वे उस वृक्षके फलोंको दान करते हैं तथा स्वयं भी आस्वादन करते हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरी, जिनका हृदय कृष्ण प्रेमसे परिपूर्ण है—कल्पवृक्षके सर्वप्रथम अंकुर हैं। श्रीईश्वर पुरी रूपमें वह प्रेमरसरूपी अंकुर पुष्ट अवस्थाको प्राप्त हुआ। स्वयं श्रीचैतन्य माली उस वृक्षके स्कन्ध रूपमें प्रकट हुए। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके पूर्व मध्व सम्प्रदायमें रसमयी उपासना नहीं थी। श्रीमन्महाप्रभुजीके दक्षिण देश भ्रमणके समय तत्त्ववादियोंके विचारोंसे यह ज्ञात होता है कि मध्व सम्प्रदायमें ऐश्वर्यमयी उपासना ही होती थी।

विरह दशामें नाना प्रकारके संचारी भाव प्रकटित होते हैं तथा प्रेम समुद्रको विलोड़ित करते हैं। दैन्य, असूया, ईर्ष्याजनित मान हृदयमें प्रकट होकर स्थायी भावको पुष्ट करते हैं। श्रीकृष्ण विरह-समुद्रमें निमज्जित श्रीराधाजीके हृदयमें नाना प्रकारके संचारी भाव उदय होकर भाव शावल्य, भाव-संधि, भावोत्त्पत्ति एवं भाव-शांति आदि विरह समुद्रको तरंगायित कर रहे हैं। विरहोन्मादिनी राधा अन्यन्त दीनभावसे सम्बोधन करती हैं "अयि दीनदयार्द्रनाथ!" हे कृष्ण! आपका चित्त अत्यन्त सरल एवं स्निग्ध है। मुझपर कृपा कीजिये, आप तो व्रजजनोंके आर्तिहरण करनेवाले हैं। आप

तो सभी जीवोंपर दयाकर विपद्से रक्षा करते हैं, क्या मुझ जैसी विरहिणी अनाथापर दया नहीं करोगे? यदि नहीं करोगे तो आपका व्रजजन आर्तिहर शब्द कलंकित हो जायेगा। आप ही हम लोगोंके एकमात्र वल्लभ हैं ("इसीलिए इस श्लोकमें नाथ शब्दका प्रयोग हुआ है।")

इस विरह समुद्रमें भावोंकी एक उत्ताल तरंग उठी तथा उसने दैन्य भावको दबाकर असूया तथा ईर्ष्याजनित मानको प्रकट कर दिया। श्रीराधा श्यामसुन्दरको अब मथुरानाथ कहकर सम्बोधित कर रही हैं। हे मथुरानाथ! अब आप हमपर क्यों कृपा करोगे? मथुरामें सैकड़ों रतिसम्पन्ना रमणियाँ आपकी सेवा कर रही हैं। अब आपको हमारी याद कहाँ? आप तो हम ग्वालिनोंको भूल गये होंगे। आप तो मथुराके बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली राजाओं द्वारा सम्मानित हो रहे हैं, हमारे जैसे दीन-हीनोंको स्मरण करनेका आपके पास समय ही कहाँ है? मथुराके यादवोंके संगके प्रभावसे आपका चित्त भी कठोर हो गया है। अब विरहकातर हम गोपियोंकी दशासे द्रवित क्यों होने लगे?"

इतना कहकर श्रीराधा एक क्षणके लिए स्तब्ध हो गईं। पुनः दैन्य संचारी भाव प्रकट होने लगा, अब वे कहती हैं, 'हे दयित! हे श्यामसुन्दर! आप हमें प्राणोंसे भी प्यारे हो। आपके प्रेम पूर्ण व्यवहारको हम कैसे भूलें? रासमें क्लांत हो जानेपर आप अपने पीताम्बरसे हमारे स्वेद बिंदुओंको पोंछते थे तथा पीताम्बरमें कुंकुम लग जानेसे आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसे अपने हृदयसे लगा लेते। आप कहकर गये थे कि 'मैं आऊँगा', आपके इसी आश्वासनपर हम जीवन धारण कर रही हैं; किन्तु आप आयेंगे या नहीं यह सोच-सोचकर हम भ्रमित हो रही हैं। आप हमें कुछ सांत्वना दो, हमारा चित्त उद्भ्रान्त हो रहा है। आपके मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हमारा हृदय व्याकुल हो रहा है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर लिखते हैं कि, श्रीकृष्ण विरहिणी व्रजदेवियोंके भावोंके अनुगत होकर भजन करना ही सर्वोत्तम भजन है।

श्रीकृष्ण विरह विच्छेदसे व्याकुल गोपियोंका विधाताके ऊपर दोषारोप, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३९.१९)—

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा।।८।।

—धन्य हो विधाता! तुम सब कुछ विधान तो करते हो, परन्तु तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। पहले तो तुम सौहार्द और प्रेमसे जगतके प्राणियोंको एक दूसरेके साथ जोड़ देते हो, परन्तु अभी उनकी आशा अभिलाषाएँ पूरी भी नहीं हो पाती हैं, वे तृप्त भी नहीं हो पाते कि तुम उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग कर देते हो। सच है, तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चोंके खेलकी तरह व्यर्थ ही है।।८।।

विधातः हे! नाहि दया किछुई तोमार।
मैत्रभावे प्रणयेते, देही देही संयोगेते,
केन एत कैले अविचार।
अकृतार्थ अवस्थाय, वियोग करिले हाय,
बालकेर चेष्टा ए व्यापार।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्ण-गृहीत-चित्ता ब्रजदेवियाँ, श्रीकृष्णकी आसन्न विरह आशंकासे व्याकुलित हो रही हैं। उन्होंने सुना है कि प्राणकान्त श्यामसुन्दरको मथुरा ले जानेके लिए अक्रूर रथ लेकर उपस्थित हुये हैं। इस भावी-विरहकी आशंकासे व्यथित होकर वे स्वजातीय यूथमें अपनी-अपनी प्रेमभाव विशिष्ट विरह-आर्तिके द्वारा अपनी प्रेम-विवशता प्रकाशित कर रही हैं।

श्रीकृष्ण मधुपुरी जा रहे हैं—यह श्रवणकर भद्रादि तटस्था गोपियोंके मुखारविंदकी कान्ति शुष्क एवं मलीन हो गई। श्यामला आदि सुहृद् पक्ष गोपियोंके वसन वलय, केशादि स्खलित हो गये। विपक्षी चन्द्रावली ध्यान समाहित चित्तके द्वारा समाधिमें श्रीगोविन्दको देखने लगी। समस्त व्रजगोपियोंकी चूड़ामणि महाभाववती श्रीमती राधा तथा अन्य स्वपक्षा ललिता-विशाखा आदि श्रीकृष्ण प्रेयसियोंके हृदयमें प्राण-प्रियतमके विविध प्रेम-विलास, व्यवहार, आचरण, हास्यावलोकन आदिकी स्फूर्ति होने लगी, साथ-ही-साथ सुगम्भीर विरह-वेदनासे विह्वल होकर वे क्रन्दन करने लगीं। भिन्न-भिन्न यूथोंमें गोपियाँ अपनी-अपनी मर्म वेदनाको अपने प्रेमानुसार व्यक्त कर रही हैं। वे सुगम्भीर विरह-वेदनासे सम स्वरसे कह रही हैं—"यदि हमारे प्राण श्रीकृष्ण-विरह वेदनासे निकल जायें तो इसका दायित्व एकमात्र विधातापर ही होगा। हे विधाता! आप अखिल ब्रह्माण्डका समुचित विधान करते हो, क्या आपके राज्यमें दयाका विधान नहीं है? यदि आपमें न्याय-अन्यायका विचार होता तो आप इस प्रकार कठोर न होते। आप

केवल स्वेच्छाचारी होकर प्राणियोंके मिलन-विच्छेदका विधान करते हैं। आप ही जीवोंमें प्रणय मैत्री आदि स्थापित करते हैं। क्षणिक मिलन सुखका आस्वादन कराकर पुनः विरह समुद्रमें निमज्जित कर देते हो। तुम हृदयहीन निष्ठुर हो, इसकी साक्षी हम हैं। आपका आचरण उस मूर्ख अज्ञ बालककी भाँति है जो अपनी इच्छासे खिलौना तैयार करके फिर उसे नष्ट कर देता है। इसलिए हे विधाता! आप केवल दयाहीन, विवेकहीन, विचारहीन ही नहीं दुष्कृतकारी भी हो। आपका यह वर्तमान आचरण तो अत्यन्त निन्दनीय है। पहले तो तुमने हमारे प्राणकान्त मुकुन्दकी अखिल सौन्दर्य-माधुर्य लावण्यके मूर्तिमान-विग्रहके रूपमें रचना की फिर उस भुवन मनोहर रूपका हमें दर्शन कराया। इस दर्शनसे हमारे हृदयमें असीम प्रीतिरसकी अनुभूति हुई। इस अपूर्व रूपको हमारे नयनोंमें स्थापितकर पुनः छीनकर हमारे प्राणकान्तको दूर ले जा रहे हो। इस प्रकारकी वंचना करना उचित नहीं। केवल दुरात्मा ही इस प्रकारका कार्य करते हैं। आप महाविज्ञ होकर भी ऐसा पापाचरण क्यों कर रहे हो? क्या आपको दत्तापहारी पाप नहीं लगेगा?"

कृष्णानुरागियोंको क्षणमात्रका श्रीकृष्ण-विरह भी असहनीय है, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३९.२९)—

यस्यानुराग-ललितस्मित-वल्गुमन्त्र-
लीलावलोक-परिरम्भण-रासगोष्ठ्याम्।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा बिना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम्।।(९)

—सखियाँ! जिनकी प्रेमभरी मनोहर मुस्कान, रहस्यमयी मीठी-मीठी बातें, विलासपूर्ण चितवन और प्रेमालिङ्गनसे हमने रासलीलाकी वे रात्रियाँ, जो बहुत विशाल थीं, एक क्षणके समान बिता दी थीं। अब भला, उनकी दी हुई अपार विरह व्यथाका पार कैसे पावेंगी।।९।।

अनुराग विलोकित, वल्गुमन्त्र सुललित,
स्मित आलिङ्गन रासस्थले।
ब्रह्मरात्र क्षणे गेल, तबु तृप्ति ना हइल,
एवे कृष्ण विरह घटिल।।
गोपीर एमन दिन केमने याइवे।
दुःखेर सागरे डूबे प्राण हाराइवे।।

भजनरहस्यवृत्ति—मथुरा गमनोद्यत श्रीकृष्णके आसन्न विरह आशंकासे कातर ब्रजगोपियाँ विधाताको नाना प्रकारसे धिक्कारती हुई विलाप करने लगीं—"आज क्रूर विधाता अक्रूर नाम धारण करके ब्रजमें पधारे हैं। हमने तो अपने कुल, धर्म आदिका परित्यागकर अपना सर्वस्व अपने प्राणकान्त श्यामसुन्दरके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, अब हमारा क्या होगा? अरे! दैव ही हमारे प्रतिकूल है, इससे परित्राणका कोई उपाय नहीं।" कोई गोपी कहने लगी, "अरी सखि! आज तो हम समस्त लज्जा, संकोचका परित्याग करके गोविन्दकी यात्राको स्थगित करें। हमारी प्रगल्भता एवं स्वाधीनताको देखकर हमारे सगे-सम्बन्धी सभी असंतुष्ट होंगे, कुलके वृद्धजन हमारी धृष्टताको सहन नहीं करेंगे, बंधु-बान्धव हमें दण्ड या मृत्युका भय देंगे अथवा गृहसे बहिष्कार कर देंगे। किन्तु सखी हम तो पहलेसे ही गृह, देह सम्बन्धी आसक्ति छोड़ चुकी हैं। यदि हमें घरसे निकाल भी देंगे तो हमारा कल्याण ही कल्याण है, तब तो हमें सहज ही गोविन्दका सान्निध्य प्राप्त होगा। गृह परित्यागकर गोविन्दके साथ विचरण करेंगी। यदि वे लोग मृत्युदण्ड प्रदान करें तो उसमें भी कोई क्षति नहीं, गोविन्द विरहमें तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है। यदि वे हमें घरमें बन्द कर दें तो भी गोविन्दका ध्यान करते-करते हम लोग सुखसे मर जायेंगी। अतएव सखी अब देर क्यों करती हो शीघ्र चलो, गोविन्दकी यात्रा स्थगित करनेमें विलम्ब न हो जाये।"

श्रीकृष्ण प्रेयसियाँ विरह-संतापमें विलाप करते-करते मूर्छित हो जाती हैं। उसी समय उनके हृदयमें मिलनकी सुख-स्मृति जाग्रत होने लगी। पूर्व रासरजनीकी सुख-स्मृति उद्भासित होने लगी। श्रीकृष्णका अनुराग मण्डित मृदु-मधुर हास्ययुक्त मुखारविन्द तथा प्रीति-स्निग्ध मनोहर संकेत वार्ता, प्रेमयुक्त निबिड़ आलिंगन उनके हृदय-पटलपर उदित होने लगा तथा रात्रि सुदीर्घ युग जैसी प्रतीत होने लगी। श्रीकृष्णके मधुमय संगसे वंचित होनेके कारण विरह वेदना शत-शत दावानलके समान प्रतीत होने लगी। 'इस दुःख समुद्रसे हम कैसे पार हों? प्राणकान्तके विच्छेदमें हम कैसे जीवन धारण करें? अपराह्न कालमें जब श्रीकृष्ण वनसे गृहमें प्रत्यागमन करते हैं, तब वे गोप बालकोंसे परिमण्डित रहते हैं, उनकी वदन शोभा अपूर्व होती है, अव्यक्त मुरलीध्वनि तथा नयन कटाक्षादि गोपियोंके हृदयको उद्वेलित करते हैं। गो खुरोत्थित धूलि द्वारा धूसरित वदन तथा कुंचित अलकावली,

कण्ठ देशमें वनमालाकी अपूर्व शोभायुक्त वह कनखी, कटाक्षके द्वारा सप्रेम अभिलाषा निवेदन करते हैं। इन समस्त प्रेमके आदान प्रदानको हम कैसे भूल सकेंगी?

श्रीकृष्ण आज उन लोगोंको छोड़कर मथुरा जानेके लिए प्रस्तुत हो रहे हैं—इस गम्भीर व्यथाको कौन व्यक्त कर सकता है? विदाई वेला भी आ गई, अब तो गोपियोंके धैर्यका बाँध टूट गया । समस्त गोपियाँ सम्मिलित होकर अविश्रान्त क्रंदन-ध्वनिसे हृदयकी सुवेदना उच्चस्वरसे व्यक्त करने लगीं—हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!

श्रीकृष्ण-विरहमें श्रीमती राधाके विरहोद्गार, यथा हंसदूत (२)—

यदा यातो गोपीहृदयमदनो नन्दसदना–
न्मुकुन्दो गान्धिन्यास्तनयमनुरुन्धन् मधुपुरीम्।
तदामाङ्क्षीच्चिन्तासरिति घनघूर्णापरिचयै
रगाधायां बाधामयपयसि राधाविरहिणी।।१०।।

—जब गोपीजन-हृदयानन्द श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरके अनुरोधपर उनके साथ नन्दभवनसे मथुराको गमन किया, तब विरहिणी श्रीराधिका उनके विरहमें व्याकुल होकर निविड़ आवर्त्तमय अगाध पीड़ा पूर्ण चिन्ता-नदीमें निमग्न हो गईं।।१०।।

गोपिका हृदय हरि, ब्रज छाड़ि मधुपुरी,
अक्रूर जहित जबे गेला।
तबे राधाविरहिणी, घनघूर्णतरङ्गिणी,
चिन्ताजले अगाधे पड़िला।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीरूप गोस्वामीपादने 'हंस दूत' नामक ग्रन्थमें श्रीकृष्णके सुदूर प्रवासके कारण व्रजरमणियोंके विप्रलम्भ महारसका अनुपम शैलीमें परिवेषण किया है। श्रृंगार रसमें परमास्वादनीय है विप्रलम्भ रस। श्रीराधाके अंग-अंगमें उभरती विरह-तरंगों, दिव्योन्माद-प्रलाप, सुदीप्त सात्त्विक विकारोंके दुःख भरे आलापको लिपिबद्धकर श्रीरूप गोस्वामीपादने रसिकोंको विप्रलम्भ रस समुद्रमें गहरी डुबकी लगवाई है।

ब्रजगोपीवृन्दके हृदयानन्द श्रीनन्दनन्दनको अक्रूर, किन्तु परम-क्रूर मथुरा ले गये तथा समस्त गोपियाँ विरहके अथाह सागरमें डूब गईं। गोपी कुल चूड़ामणि महाभाव स्वरूपिणी महाविरहिणी श्रीराधा एकदिन यमुनातटपर विरह वेदनाका प्रशमन करने श्रीललितादि सखीगणके साथ जाती हैं। किन्तु पूर्व

परिचित केलिविलास-कुञ्जोंके देखते ही विरहतापमें कातर हो मूर्च्छित हो जाती हैं। सखीवृन्द उन्हें हाथोंपर उठाकर कमलदलकी शय्यापर सुला देती है, श्रीललिताजी अपनी ओढ़नीके अंचलसे हवा करती हैं, उधर सखियाँ कृष्णनामका कीर्त्तन करती हैं तथा व्यजन एवं शीतल चन्दन-लेपादिसे चेतन करानेका प्रयत्न करती हैं।

इधर श्रीललिताजी अधीर होकर यमुनापर शीतल नीर भरने आती हैं। वहाँ एक परम सुन्दर श्वेतवर्ण राजहंसको देखकर प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके पास प्रियसखी श्रीराधाकी जीवन विनाशकारी घटनाओंका सन्देश भेजनेकी स्फूर्ति उनमें जाग उठती है और दूत कार्यके लिए राजहंसको उपयुक्त पात्र जानकर उसे मथुरा जानेकी विनम्र प्रार्थना करती हैं, राजमार्गका वर्णन करती हुई पूर्व लीलाका स्मरण कराती हैं, विरह-विधुरा श्रीराधाकी सारी हृदय वेदनाओंको राजहंसको हृदयंगम कराती हैं।

अक्रूरके साथ श्रीकृष्णके मथुरा गमनके पश्चात् श्रीराधा अगाध चिन्ता सागरमें निमग्न हो गईं। वे सोचने लगीं कि, "संताप ज्वाला-ज्वलित इन प्राणोंको आशापाशमें बांधकर रक्षा करूँ अथवा आशापाशसे अपनी देहको मुक्त कर दूँ। प्राणनाथने जाते समय कहा था कि, 'मैं अति शीघ्र लौटकर आऊँगा', 'आयास्य इति दौत्यकै' परन्तु आज परसोंके स्थानपर बरसों बीत गये किन्तु आनेका कोई समाचार नहीं मिला। क्या उस आशाका परित्यागकर अग्निमें प्रवेश करूँ अथवा यमुनाके जलमें प्रविष्ट होकर मृत्यु वरण करूँ।" पुनः श्रीराधिका विचार करने लगीं कि प्राणकान्त श्यामसुन्दर मथुरासे प्रत्यागमनकर मुझे नहीं पायेंगे तो अत्यन्त दुःखी होंगे, तो मैं क्या करूँ मेरी बुद्धि किंकर्तव्य विमूढ़ हो रही है। मेरे दर्शन न होनेसे प्राणनाथ भी अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कर पायेंगे। मैं क्या करूँ? यदि प्राण त्याग दूँ, तब प्रियतमके कुन्दपुष्पकी भाँति कोमल मुखकमलका दर्शन नहीं होगा। परन्तु इस विरह सन्तापसे मैं अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर पा रही हूँ। प्राणनाथने हमारा परित्याग तो नहीं किया, तब तो मुझे अपने प्राणोंकी रक्षा करना ही उचित है।" इसी प्रकारके आवर्तमय पीड़ायुक्त चिन्तारूपी अगाध विरह-सागरमें श्रीराधा निमज्जित हो गईं। श्रीकृष्णके प्रति ब्रजसुन्दरियोंका प्रेमविकार मिलन लालसाको उत्तरोत्तर संवर्द्धित कराकर एक अपूर्व माधुर्यका विस्तार करता है।

श्रीरूप गोस्वामीपाद श्रीराधाके भावोंका अनुगमन कर उनके ही भावोंमें तादात्म्य होकर श्लेष वाक्योंके द्वारा अक्रूरके प्रति गान्धिनी तनय शब्द प्रयोगकर कटाक्ष कर रहे हैं। अक्रूरका जन्म काशी नरेशकी बेटी गान्धिनीके गर्भसे हुआ। ये अपनी माताके गर्भमें बारह वर्ष तक रुके रहे तथा माताको पीड़ा प्रदान की। इनके पिताने पूछा—"हे शिशु! तुम जन्म क्यों नहीं ले रहे हो, माताको इतना दुःख क्यों दे रहे हो?"

गर्भस्थ पुत्रने कहा—"पिताजी, यदि आप प्रतिदिन ब्राह्मणोंको एक-एक गाय दान करें तो एक वर्षके अन्तमें जन्म ले लूँगा।" पिताने वैसा ही किया। तदनन्तर एक वर्ष पश्चात् शिशुका जन्म हुआ। पुराणोंमें कहा गया है, जो पुत्र पिता-पितामहके नामसे ख्यात होता है, वह धन्य माना जाता है और जो माताके नामपर प्रसिद्धि लाभ करता है, वह अधम होता है। श्लोकमें श्रीरूप गोस्वामीपाद पितृ परिचय न देकर अक्रूरकी माताका परिचय देकर अक्रूरकी निर्दयताको लक्ष्य कर रहे हैं। हंसदूतके मंगलाचरणमें श्रीरूप गोस्वामीपाद लिखते हैं कि अक्रूरकी माताने अपने परिवारको दुःख, चिन्ता एवं उद्वेग दिया। अक्रूरने भी अपनी माताके गुणोंसे गुणान्वित होकर ब्रजवासी और गोपियोंको अगाध दुःख-सागरमें डाल दिया। इस श्लोकमें प्रवासाख्य विप्रलम्भकी दस दशाओंमें चिन्ता नामक दशामें महाभावकी मोहनोत्थ उद्घूर्णाकी अभिव्यक्ति है।

विरहकी दस दशाओंका उज्जवलनीलमणिमें वर्णन—

चिन्तात्र जागारोद्वेगौ तानवं मलिनांगता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहोमृत्युर्दशा दश।।११।।

—सुदूर प्रवासके कारण विरहदशामें दस दशाएँ उदित होती हैं—चिन्ता, जागर, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह तथा मृत्यु। मोहनदशामें श्रीराधामें असाधारण दशा प्रकटित होती है तथा वे अत्यंत विरहव्यथाका अनुभव करती हैं।।११।।

जागर, उद्वेग, चिन्ता, तानवाङ्ग-मलिनता,
प्रलाप, उन्माद आर व्याधि।
मोह, मृत्यु, दशा दश, ताहे राधा सुविवश,
पाइल दुःखकुलेर अवधि।।

विरह-विष-ज्वालासे व्यथित श्रीराधाके भावोद्गार, यथा जगन्नाथवल्लभ नाटक (३.९)—

प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति-हरिर्नायं न च प्रेम वा
स्थानास्थानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः।
अन्यो वेद न चान्य दुखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं
द्वित्रीण्येव दिनानि यौवनमिदं हा हा विधे का गतिः।।१२।।

—श्रीहरि तो प्रेम-विच्छेद वेदना नहीं जानते हैं और प्रेम भी पात्र-अपात्र कुछ नहीं जानता। कामदेव भी हमें दुर्बल जानकर सता रहा है। दूसरा दूसरेके दुःखको जाननेमें असमर्थ है, जीवन भी क्षणभंगुर है—इसका भी कोई विश्वास नहीं। यौवन भी दो-तीन दिनका है, हाय हाय? विधाताकी यह कैसी गति है?।।१२।।

सखी बले धैर्य धर, आसिबे नागरवर,
व्याकुल हइले किवा फल।
राधा बले ओहे सखि, पथ आर नाहि लखि,
प्रेमच्छेद रोग ये बाड़िल।।
लता बांचाइते हरि, ना आसिल मधुपुरी,
प्रेम ना बुझिल स्थानास्थान।
निठुर कानुर प्रेमे, पड़े गेलाम महाभ्रमे,
मदन ताहाते हाने बाण।।
दुःख ना बुझिल सखि, जीवन चञ्चल लखि,
ताते ए यौवनशोभा जाय।
आर कि नागरमणि, ए व्रजे आसिवे धनि,
हा हा विधि! कि हवे उपाय।।

भजनरहस्यवृत्ति—स्वरचित जगन्नाथ बल्लभ नाटकमें श्रीरायरामानन्द वर्णन करते हैं। एक समय श्रीराधा अपनी सखियोंके साथ वृन्दावनमें उपस्थित हुईं। सखियाँ पूर्वरागोचित 'सोऽयं युवा युवतिचित्तबिहङ्गशाखी' आदि पद्यसे श्रीकृष्णके रूपमाधुर्यका वर्णन करती हैं। दूरसे श्रीकृष्ण राधाका दर्शन करते हैं। दोनों ही परस्पर मिलनेके लिए अत्यन्त अधीर हो जाते हैं। शशिमुखी सखीके हाथ राधाजी श्रीकृष्णके लिए अनङ्गपत्रिका प्रेषण करती हैं। श्रीकृष्ण उसका पाठकर भावाविष्ट हो जाते हैं, किन्तु भावको गोपनकर उपेक्षामय वचनोंसे अनादरकर देते हैं तथा कहते हैं कि, "कुल-रमणियोंके लिए

कुलमर्यादाका विसर्जन करना उचित नहीं तथा इस प्रकार हमसे रतिविधान उचित नहीं है।" शशिमुखी आकर सारी बातें कहकर श्रीराधिकाको अन्यत्र मन लगानेका उपदेश करती है। उससे श्रीराधिका विषम विरहदशाको प्राप्त होती हैं तथा आलोच्य पदमें अपने भावोंका वर्णन करती हैं। श्रीराधा मदनिकासे कहती हैं, श्रीकृष्णके इस अनुपम रूप–सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर मैं धैर्य नहीं धारणकर पा रही हूँ, इसीलिए मैंने उनके निकट पत्र प्रेरण किया। हे सखि! इसमें मेरा क्या दोष है? वह निश्चय ही शठ है। मुझे मृत्यु तुल्य दण्ड देना ही उसका उद्देश्य है। पहले तो अपनी रूपमाधुरीसे मुझे आकृष्ट किया, अब त्याग रहा है। अरी सखि! यदि कहो कि श्रीकृष्ण नारीवधमें सुदक्ष हैं, उनके साथ प्रेम क्यों करती हो? तो सखि मैं क्या कहूँ—'हाहा विधे का गतिः'। विधाता किसको किस प्रकार दण्ड देते हैं उसे समझना कठिन है। मैंने तो उनसे सुखके लिए प्रेम किया था, किन्तु विधाताने उसके विपरीत दुःखरूप फल दिया है। इस दुखके मारे अब मेरे प्राण निकल रहे हैं।"

सखि हे! ना बुझिये विधिर विधान।
सुख लागि कैल प्रीत, हैल दुख विपरीत,
एवे जाय न रहे पराण।।

"सखि मदनिके! प्रेमकी गति भी तो सर्पकी भाँति कुटिल और अज्ञानी है। स्थान–अस्थान, पात्र–अपात्रको वह नहीं जानता। वह प्रेम, वक्र गतिसे चलता है। प्रेमने उस शठके रूप गुण रूपी डोरीसे मेरे हाथ–पैर एवं गलेको बांध रखा है, मैं तो उस बंधनको खोल ही नहीं सकती।"

श्रीकृष्णके गुणोंपर श्रीराधा ऐसी मुग्ध हैं कि मिलनकी आशाका परित्याग करना असम्भव हो रहा है। जिस प्रकार तप्त ईक्षु चर्वण करनेसे मुख जलता है किन्तु मधुर रसास्वादके कारण उसे छोड़ा भी नहीं जाता है, ठीक वही दशा श्रीराधाकी है। वे पुनः कहती हैं, "मेरी इस असहाय अवस्थाको देखकर मदन भी अपने पञ्च बाणोंसे प्रपीड़ित कर रहा है, प्रतिमुहूर्त वह मदन मेरे शरीरको जर्जरित कर रहा है।" सखी कहने लगी, "हे राधे! आप कामदेवसे बदला ले लो।" "हे सखि! कामदेव तो अंगरहित है, उससे कैसे बदला लूँ? अपने पंच बाणोंसे वह मेरे शरीरको छिन्न–भिन्न कर मुझे दुख दे रहा है, परन्तु मेरे प्राणोंको भी तो नहीं लेता।"

सखीने कहा, "स्वामिनि! श्रीकृष्ण कृपाके सिन्धु हैं, वह आप पर अवश्य ही कृपा करेंगे, आप धैर्य धारण करें।" श्रीराधा कहने लगीं, "द्वित्राण्येव दिनानि यौवनमिदं" जीवका जीवन तो क्षणभंगुर है उस अवधि तक कौन जीवित रहेगा? जीवका जीवन तो सौ वर्षका है किन्तु यौवन तो दो-चार दिनोंका ही है। यदि यौवन नहीं रहेगा तो मैं उनकी कैसे सेवा करूँगी? मेरा यौवन ही तो उनके सुखका कारण है। स्वरूपतः श्रीराधा श्रीकृष्णकी नित्य कान्ता हैं, एक सामान्य मानिनी नहीं। उनका श्रीविग्रह विशुद्ध सत्त्व-स्वरूप है। नरवत् लीला-सिद्धिके उद्देश्यसे योगमायाने अपने प्रभावसे इन लीला-विलासको भूतलमें प्रकट किया है।

आमिय न जानी ना जाने गोपीगण।
दोंहार रूपे गुणे दोंहार हरे मन।।
योग माया करिबे आपन प्रभावे।।

(चै. च. आ.-४)

श्रीकृष्ण विरहमें श्रीराधाकी उद्वेग दशा, यथा कृष्णकर्णामृत (४२)—

किमिह कृणुमः कस्य ब्रूमः कृतं कृतामाशया
कथयत कथामन्यां धन्यामहो हृदयेशयः।
मधुरमधुरस्मेराकारे मनोनयनोत्सवे
कृपण कृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं बत लम्बते।।१३।।

—अब क्या करूँ मैं? किसको कहूँ? दर्शनकी वृथा आशा लगाये रखनेका क्या प्रयोजन? कोई और अच्छी बात करो। अहो! किन्तु जो मेरे हृदयमें समाये हुए हैं, उनकी वार्ता मैं कैसे त्यागूँ? मधुर-मधुर मंद मुसकान भरी, मन नेत्रोंकी उत्सव-स्वरूप उस श्रीकृष्णमूर्तिको देखनेके लिए मेरी तृष्णा तो प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है।।१३।।

एबे बल कि करिब, कारे दुःख जानाइब,
देह धरि कृष्णेर आशाय।
कह अन्य कथा धन्य, याते चित्त सुप्रसन्न,
सखि! ताहा ना हइबे उपाय।।
कृष्ण हृदे शुये आछे, मृदु मधु हासितेछे,
मनोनयनेर महोत्सव।
कृष्ण लखिबार आशा, मने कैल चिर वासा,
से आशा कृपणा असम्भव।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधाके हृदयमें नाना प्रकारके भावोंका उदय हो रहा है। इस भाव-शावल्यकी स्थितिमें श्रीराधा अपनी सखीसे कहती हैं—'अरी सखियों! इस विपत्तिमें मैं क्या करूँ? कुछ समझमें नहीं आ रहा है, किस प्रकार मुझे श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त होंगे? किसके आगे इस दुःख भरी व्यथाको कहूँ? मेरी और तुमलोगोंकी विरहावस्था समान है, किन्तु व्रजमें आप लोगोंके अतिरिक्त और कौन है, जिससे अपने हृदयकी बात करूँ।'

कुछ क्षण पश्चात् अपने भाव-शावल्यको आच्छादितकर श्रीराधा कहती हैं—"आशा हि परमं दुःखं। (भागवत ११.८.४४) आशा ही परम दुखःदायी होती है। इतने दिनसे आशा लगाकर बैठी हूँ कि कृष्ण आते ही होंगे किन्तु अभी तक नहीं आये। अब इस आशाका परित्याग करना ही उचित है।" यहाँ मति नामक भाव उदय हुआ। तत्पश्चात् अमर्ष नामक भावोदय हुआ तथा वे कहने लगीं, 'हे सखियों! अकृतज्ञ कृष्णकी कथा त्यागकर मुझे अन्य कथा सुनाओ' यह कहते-कहते राधाजीको कृष्णकी स्फूर्ति होने लगी, वे काम शरसे आहत हो, बाण बिद्ध मृगीकी भाँति व्याकुल होने लगीं तथा अमर्ष-भाव आच्छादित हो त्रास-भाव उदय हो आया, विकलतासे वे कहने लगीं, अहा क्या कष्ट! कृष्ण तो मेरे हृदयमें सो रहे हैं। मृदु-मधुर मुसकान भरी बङ्किम दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा है। यह हास्यभरी दृष्टि ही तो हम व्रजरमणियोंके मन और नयनोंके लिए महोत्सव है।

अकस्मात् यह भाव अन्तर्हित हो गया और हृदयमें महाखेद एवं ग्लानि उपस्थित हुई। वे पुनः अनुताप करती हुई कहने लगी। सखि! क्या करूँ, तू धैर्य धरनेके लिए कहती है, किन्तु धैर्य कैसे धरूँ? मेरे मनमें तो कृष्ण-दर्शनोंके लिए आशाने घर कर लिया है। किन्तु यह आशा दुराशामात्र दीख रही है। इस आशाको त्यागना ही उचित है। इस प्रकार विलाप करते-करते त्रासभाव अन्तर्हित होकर पुनः औत्सुक्य भावका उदय हुआ। वे विरह-व्याकुल होकर कहने लगीं—पिङ्गला वेश्याने आशाको परम दुःख समझकर त्याग दिया और सुखी हो गयी। मैं भी कृष्ण प्राप्तिकी आशाका परित्यागकर दूँ। किन्तु उनकी कथाओंका त्याग तो बहुत ही कठिन है। हाय! श्रीकृष्ण दर्शनकी तृष्णा मेरे हृदयमें क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है। वह तृष्णा मधुरसे भी मधुर मदनको वर्द्धित करनेवाली है।

श्रीकृष्णकी प्रबल विरह-ज्वालामें अधीर श्रीराधाका दिव्योन्माद, यथा कृष्णकर्णामृत (४१)—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे! त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो! करुणैकसिन्धो! हा हन्त! हा हन्त! कथं नयामि।।१४।।

—हाय! हाय! हे हरे! हे अनाथ बन्धो! हे करुणैक सिन्धो! आपके दर्शनोंके बिना इन दुर्भागे दिनोंको मैं कैसे व्यतीत करूँ?।।१४।।

ना हेरिये तव मुख, हृदये दारुण दुःख, दीन बन्धो, करुणासागर।
ए अधन्य दिवानिशि, केमने काटाबे दासी, उपाय बलह अतःपर।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्णके अदर्शनसे विरहानलमें जलती हुई श्रीराधाको क्षणकाल भी शतयुगके समान प्रतीत हो रहा है तथा वे समयको अतिवाहित करनेमें असमर्थ हैं। 'यह दिन और रात्रि अधन्य है, जिसमें आपकी सेवा प्राप्त नहीं हुई।'

श्लोकमें 'हा' शब्दके द्वारा अत्यन्त खेदपूर्ण दुःखकी अभिव्यक्ति हुई है। मानो कृष्ण कहें, 'हे राधे! आपका शरीर अनङ्ग-बाणोंसे बिद्ध हो काम ज्वालामें जल रहा है तो, अपने पतिका अन्वेषण करो। 'पतयश्च वः विचिन्वति' (भागवत १०.२९.२०)। श्रीराधा कहती हैं, 'अरे श्याम! मैं अपने प्राण प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनका अन्वेषण कर रही हूँ।'

दुःखदायी पतिसे मुझे क्या प्रयोजन? हे अनाथ बन्धो! मैं पतिका त्यागकर अपने प्रियतम (तुम्हारे) के समीप आई हूँ। यदि कोई कहे कि 'प्रियतमके पास क्यों आई हो?' तो कहती हैं, 'वे अनाथ बन्धु हैं, मैं भी तो अनाथ हूँ, इसलिए वे मेरे भी बन्धु हुए। यदि कृष्ण कहें, 'भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो' (भागवत १०.२९.२४)।

पतिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है। उसके उत्तरमें वे कहती हैं, 'चित्तं सुखेन भवतापहृतं' (भागवत १०.२९.३४)।

'हमारा मन और इन्द्रियाँ गृह कार्यमें सुचारु रूपसे लग रहे थे, उन्हें आपने चुरा लिया है। हे हरे! हम अपने बहुमूल्य धन—चित्तेन्द्रियोंको ढूढ़ती हुई आपके समीप आई हैं। यदि इसमें कुछ दोष है तो तुम्हारा ही दोष है।

यदि कृष्ण कहें कि, 'तुम तो झूँठी हो, मैंने तुम्हारे धर्म एवं चित्तको कब हरण किया? इसके उत्तरमें कहती हैं, 'तन्नः प्रसीद (भागवत

१०.२९.३८) हमारे प्रति प्रसन्न होओ! हे करुणैकसिन्धो! आप अपनी करुणाके सिन्धुकी मात्र एककण हमपर अनुग्रह करो।'

श्रीकृष्ण मिलनकी उत्कण्ठा, यथा कृष्णकर्णामृत (४०)—

हे देव! हे दयित! हे भुवनैक बन्धो! हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणैकसिन्धो!
हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम! हा हा कदानु भवितासि पदं दृशोर्मे।।१५।।

—हे देव! हे प्रियतम! हे त्रिभुवनके एकमात्र बन्धो! हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणासिन्धो! हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम! अहो! आप कब मेरे नेत्र गोचर होंगे? कब मैं आपके दर्शन पाऊँगी?।।१५।।

हे देव, हे प्राणप्रिय, एकमात्र बन्धु इह, हे कृष्ण, चपल, कृपासिन्धु।
हे नाथ, रमण मम, नयनेर प्रियतम, कबे देखा दिवे प्राणबन्धु।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीवृषभानुनन्दिनी कृष्ण विरहमें संतप्त हैं, सखियाँ उन्हें सान्त्वना दे रही हैं। श्रीराधा अचानक चारों दिशाओंमें देखती हैं और कहती हैं—'अरी सखि! श्रीकृष्णके नूपुर शब्द सुनो, किन्तु वे दृष्टिगोचर क्यों नहीं हो रहे, निश्चय ही वह शठ किसी निकटके कुञ्जमें अन्य रमणीके साथ रमण कर रहा है।' यह कहते-कहते श्रीराधा उन्मादिनी हो गईं। इसी उन्माद दशामें उसने देखा कि श्रीकृष्ण आये हैं तथा उनके शरीरपर अन्य रमणीके सम्भोग चिह्न विद्यमान हैं। यह देख श्रीराधाको अमर्ष हो गया, वे श्रीकृष्णके उपस्थित होनेपर भी कुछ नहीं बोलीं और मुख फेर लिया। श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, अब राधाजी बड़ी उत्सुकतासे इधर-उधर देखने लगीं।

इष्टवस्तुके दर्शन और प्राप्ति स्पृहाके निमित्त काल विलम्बके कारण असहिष्णुता होती है, उसे औत्सुक्य कहते हैं। समस्त भावोंका जहाँ आपसमें संमर्दन हो उसे भाव-शाबल्य कहते हैं। यहाँ असूया एवं औत्सुक्य इन दोनों भावोंके उदय होनेसे श्रीराधा कभी कृष्णकी निन्दा करती हैं, कभी स्तुति, कभी मान, कभी गर्व, कभी ब्याज स्तुति करती हैं।

'हे देव! आप अन्य रमणीके साथ क्रीड़ा करते हो, इसलिए आप देव हो।' इस अनादरसे मानो कृष्ण चले गये। श्रीकृष्णके चले जानेसे श्रीराधा अनुतप्त होकर पुनः कृष्ण दर्शनकी लालसासे कहने लगीं—'हे दयित! आप मेरे प्राणप्रिय हैं, आपने मेरा परित्याग क्यों किया? मुझे दर्शन दीजिये।' यह श्रवणकर श्रीकृष्ण पुनः प्रकट हो गये। श्रीकृष्णको देख श्रीराधामें अमर्ष

एवं असूया भाव उदित हो आया तथा वे वक्रोक्तिके साथ उपहास पूर्वक कहने लगीं, हे भुवनैक बन्धो! आप सारी गोपियोंके बन्धु हैं, इसलिए आप सभी गोपियोंके निकट रहते हैं, यदि मेरे पास नहीं आ पाये तो इसमें आपका दोष नहीं? आप अपनी मोहन मुरली बजाकर समस्त स्त्रियोंको वशीभूत कर लेते हो, इसलिए आप जगतके बन्धु हैं।' यह श्रवणकर कृष्ण पुनः अन्तर्धान हो गये। श्रीकृष्णको न देखकर श्रीराधा कहने लगीं, 'हे कृष्ण! हे श्यामसुन्दर! आप तो समस्त जगतके चित्तको आकर्षण कर लेते हैं। मेरे चित्तको हरणकर आप कहाँ चले गये? कृपाकर एकबार तो दर्शन दीजिये।' यह श्रवणकर श्रीकृष्ण पुनः आ गये, 'हे प्रियाजी! मैं तो कुञ्जके बाहर ही था, कहीं गया थोड़े ही था। तुम मेरे प्रति प्रसन्न होओ।' श्रीकृष्णकी इस अनुनय मिश्रित चपलताको श्रवणकर राधाजी कहने लगीं, 'हे चपल! हे वल्लवीवृन्द-भुजङ्ग! परस्त्री चोर, आप यहाँसे पधारिये, मुझे आपकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप जहाँसे आयें हैं वहीं चले जाएँ।' यह सुनकर श्रीकृष्ण मानो चले गये। श्रीवृषभानुनन्दिनी समझती हैं कि मेरे प्राणनाथ चले गये। तब दैन्य एवं काकु-विनतीके साथ कहने लगीं, 'हे करुणैकसिन्धो! मैं जानती हूँ कि मैं अपराधी हूँ, किन्तु आप तो करुणाके सागर हो, आपका हृदय कोमल है, आप मुझे दर्शन दें। हे रमण! आप सदा मेरे साथ रमण करते हैं, अतः आप कुञ्जमें आगमन करो। मनमें कृष्णको पुनः उपस्थित हुआ समझकर तनमनस्का होकर श्रीकृष्णको आलिंगन करनेके लिए दोनों भुजाओंको फैला दिया। किन्तु श्रीकृष्णका आलिंगन न पाकर, बाह्य स्फूर्ति होनेसे श्रीराधा अत्यन्त विकलताके साथ कहने लगीं, हे नयनाभिराम! हे नयनानन्द! आपके दर्शनके लिए मेरे नयन बड़े प्यासे हैं। अहा! आप कब मेरे नयनगोचर होंगे?

स्फूर्तिदर्शन, यथा कृष्णकर्णामृत (६८)—

मारः स्वयं नु मधुरद्युतिमण्डलं नु माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु।
वेणीमृजो नु मम जीवितवल्लभो नु कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय।।१६।।

—यह क्या स्वयं कन्दर्प है? या मधुर द्युतिमण्डल है? मूर्तिमान माधुर्य है? या मन-नयनोंका अमृत-जीवन? क्या यह मेरी वेणीके मोचनकारी कान्त हैं? या मेरे जीवनवल्लभ किशोरकृष्ण हैं, जो मेरे नेत्रोंके सामने प्रकाशित हो रहे हैं।।१६।।

स्वयं कन्दर्प एकि, मधुर मण्डल नाकि, माधुर्य आपनि मूर्त्तिमान।
मनोनयनेर मधु, दूर हेते आइल बँधु जीवन वल्लभ व्रजप्राण।।
आमार नयन आगे, आइल कृष्ण अनुरागे, देहे मोर आइल जीवन।
सब दुःख दूरे गेल, प्राण मोर जुड़ाइल, देख सखि! पाइनु हारा धन।।

भजनरहस्यवृत्ति—रासलीलामें श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेके बाद गोपियोंने करुण विरहयुक्त कीर्त्तन करने लगीं। उसी समय मन्मथमन्मथ कृष्ण उनके सामने प्रकट हो गये। श्रीकृष्णके उस असमोर्द्ध रूप सौन्दर्यका वर्णन श्रील शुकदेव गोस्वामी इस प्रकार करते हैं, 'तासामाविरभूच्छौरि स्मयमान मुखाम्बुज' (श्रीमद्भा. १०.३२.२)।

साक्षात् मन्मथको भी पराजित करनेवाले शौरि श्रीकृष्ण गोपियोंके सम्मुख प्रकट हुये। उनके रूपका दर्शनकर राधाजीको भ्रम हुआ कि क्या सचमुच कृष्ण हमारे सामने उपस्थित हैं? वे सम्भ्रम सहित अपनी सखियोंसे कहने लगीं—'हे सखि! जो हमारे सामने खड़ा है क्या यह साक्षात् कन्दर्प है! जो अदृश्य रूपसे जगतको मारता है। यहाँ 'नु' शब्द वितर्क हेतु प्रयुक्त हुआ है। फिर उनके माधुर्यका अनुभवकर आश्चर्यसहित कहती हैं—'यह कन्दर्प मधुर नहीं हो सकता, तब क्या मधुर द्युतिमण्डल है? इस विषयमें भी आश्चर्य है, नहीं-नहीं यह द्युतिमण्डल नहीं, यह तो कोई मूर्तिमान माधुर्य है। कोई भी अन्य माधुर्य हमारे नेत्रोंको तृप्त नहीं कर सकता, किन्तु इस माधुर्यका दर्शनकर हमारे नेत्र तृप्त हो रहे हैं।' अत्यन्त संतोषके साथ कहती हैं—"यह स्वयं अमृत है क्या? अमृतके तो अवयव नहीं होते, सखि! इसके तो अवयव हैं, अतः यह अमृत नहीं है।" पुनः कहती हैं—'क्या प्रणयसे हमारी वेणीको उन्मोचन करनेवाले हमारे कान्त आ गये? अब सम्यक्रूपसे अवलोकनकर आनन्दपूर्वक कहती हैं—अहो सखियों! ये तो हमारे जीवन-वल्लभ नवकिशोर नटवर नयनोंको आनन्द प्रदान करने वाले प्राणकान्त ही हैं।

श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शनका विवरण, यथा श्रीमद्भागवत (१०.२२.२)—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः।।१७।।

—ठीक उसी समय गोपियोंके मध्य श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर

धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालने वाले कामदेवको भी मथने वाला था।।१७।।

गोपीर सम्मुख हरि, दाँड़ाइल वेणु धरि, स्मयमान मुखाम्बुज शोभा।
वनमाली पीताम्बर, मन्मथेर मनोहर, राधिकार देह मनोलोभा।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रेम विवर्धन ये चतुर श्रीकृष्ण राससे अन्तर्धान हो गये। विरह कातरा गोपियाँ अन्य कोई उपाय न देखकर रोती हुई यमुना पुलिनमें उपस्थित हुईं, वे अत्यन्त करुण स्वरसे श्लेष उत्प्रेक्षा भावमय गुण कीर्त्तन करने लगीं। जब ब्रजरमणियाँ प्रेमपूर्ण अश्रुओंको निरंकुश निरंतर प्रवाहित करती हुई विरह-वेदनासे व्याकुल हो रही थीं, उसी समय सघन बनके अन्धकारमें उनके विलापमय क्रन्दनको सुनकर अपनी कान्ति प्रकाशित करते हुए, श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियाँके मध्यमें अचानक प्रकट हो गये। प्रस्तुत श्लोकमें श्रील शुकदेव गोस्वामीपाद मंजरी भावमें आविष्ट हैं तथा उन्होंने क्रोधित होकर कृष्णके प्रति असूयाकी उक्तिमें 'शौरि' शब्दका प्रयोग किया है अर्थात् श्रीकृष्ण शूरवंशीय क्षत्रिय कुलमें आविर्भूत हुए हैं जिनका अंतःकरण कुटिल और कठिन होता है। श्रीकृष्णके छिप जानेको शुकदेव गोस्वामीपाद अवगुणके रूपमें देखते हैं, क्योंकि वे स्वामिनीकी विरह-वेदना सहन नहीं कर पाते हैं। ब्रजबालाएँ तो सरल प्रेमिकाएँ हैं उन्हें दुःख प्रदानकर आप प्रफुल्लित हो रहे हैं। गोपियोंको दुःखित देखकर शौर्य प्रकाश कर रहे हैं। श्रील शुकदेव गोस्वामी मन-ही-मन सोच रहे हैं कि ऐसे शौर्यपर धूल पड़े। 'यदि आपका सरल अंतःकरण होता तो आप ऐसा न करते।' यह प्रेमकी असूया है, जिसमें प्रेमकी अत्यन्त गाढ़ता है वही ऐसा कह सकता है।

विदग्ध चूड़ामणि श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजदेवियोंके मध्य अपना अपूर्व सौन्दर्य प्रकाश करते हुए प्रकट हुए। उनके इस सौन्दर्यका वर्णन तीन विशेषणोंके द्वारा हुआ है—स्मयमान—श्रीकृष्ण हास्ययुक्त प्रफुल्लित वदनमें प्रकटित होकर, संतप्त हृदयसे मुस्करा रहे हैं। यद्यपि मुस्कान भगवत्ताका लक्षण है, किन्तु गोपियोंके सम्मुख भावजनित मुस्कान है, जो गोपियोंका दुःख दूर करनेके लिए है, उन्हें आश्वासन देनेके लिए है। उनके अत्यन्त मनोहर मुखारविन्दके दर्शनसे गोपियोंका सारा दुःख दूर हो गया। ब्रजदेवियोंका आर्तनाद श्रवणकर पीताम्बरधर श्रीकृष्ण द्रुतगतिसे आनेके कारण, पीताम्बर स्खलित न हो

जाये, इसलिए उसे गलेमें पकड़ रखा है। पीतवसनधारी श्रीकृष्ण मुरलीध्वनिके द्वारा गोपीवृन्दको विमोहित करते हैं, वे समस्त गोपीवृन्द कुल, शील, धैर्य, लज्जाका परित्यागकर कृष्णके निकट उपस्थित होती हैं। किन्तु आज कृष्णचन्द्र गोपियोंको त्यागकर अन्तर्धान हो गये थे, इसलिए क्षमा प्रार्थना भङ्गीमें स्वयंको अपने पीतवसनको गलेमें धारण कर आये हैं। 'प्रियजनको इतना कष्ट दिया' यह अनुभव करके स्वयंको अपराधी मान रहे हैं और अपराध क्षमा प्रार्थनाके लिए अपना पीताम्बर होठोंसे दबा रखा है, जिस प्रकार कोई अपराधी तृण मुखमें दबाकर दीनतापूर्वक वस्त्र गलेमें डालकर क्षमायाचना करता है। विरह आर्त्तमयी ब्रजदेवियोंके आसुओंको पोंछनेके लिए अत्यन्त प्रयत्नके साथ पीताम्बरको हाथमें धारण किये हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन गोपियोंको यह भाव भी बता रहे हैं कि आपलोग पीतवर्णी हो इसलिए अपने देह चित्त, मनको मैंने पीताम्बरसे आच्छादित कर रखा है, अन्दरसे मेरा हृदय भी तुम्हारे पीतवर्णीय अनुरागसे रंजित है।

स्रग्वी—कृष्ण अपने कमनीय गलदेशमें अम्लान वनपुष्पमाला धारण किये हुए हैं, अन्य सभी आभूषण त्याग दिये हैं तथा केवल शीतल कमलोंकी माला है, जो गोपियोंका विरहताप दूर करने हेतु है। यह भाव भी प्रकट हो रहा है कि, "मालाओंके पुष्पकी भाँति आप मेरी हृदयस्वरूपा हैं। आपका आलिंगन कर मैं क्षमा प्रार्थना करता हूँ, विरह-तापको शीतल कीजिए। यह वही माला है जो आपने अपने हाथोंसे गूँथकर पहनाई थी, उसीको हृदयमें धारणकर चिर कृतज्ञता प्रकाशित कर रहा हूँ।"

साक्षान्मन्मथमन्मथः—श्रीकृष्णकी छवि अत्यन्त सुन्दर थी और कामदेवके मनको मथन करते हुए वे गोपियोंके मध्य सुशोभित हो रहे थे। साक्षात् मन्मथमें व्यष्टि, समष्टि कामदेव अंतर्हित हैं। व्यष्टि कामदेव अलग-अलग ब्रह्माओंके कामदेव हैं, समष्टि कामदेव प्रद्युम्न हैं तथा स्वरूप-स्थित कामदेव ये स्वयं नन्दनन्दन हैं। प्राकृत मदन जीवोंको उन्मत्त कराता है, किन्तु श्रीकृष्णकी भुवनमोहन मूर्तिका दर्शनकरके प्राकृत मदन भी मूर्छित हो जाता है। अप्राकृत काम साक्षात् मन्मथ-मन्मथ कृष्ण यहाँ विराजमान हो रहे हैं। श्रीकृष्णने ऐसा रूप इसलिए प्रकाशित किया कि गोपियोंका विरहदुःख कम हो जाये।

श्रीजीव गोस्वामी बृहद् क्रमसन्दर्भमें लिखते हैं कि मन्मथ-मन्मथ अर्थात् जो मदनको भी मदातिभूत कर देते हैं। श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मोहिनी मूर्ति

प्रकटकर रुद्ररूपी महादेवको भी मोहित कर देते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्णके साक्षात् मन्मथ-मन्मथ रूपका विकास रासमण्डलमें ही होता है।

वृन्दावन पुरन्दर मदन गोपाल। रासविलासी साक्षात् ब्रजेन्द्रकुमार।।
श्रीराधा-ललिता-संगे रास-विलास। मन्मथ मन्मथ रूपे जाँहार प्रकाश।।
(चै. च. आ. ५.२१२-२१३)

श्रीराधाकी कृष्णसे नव वृन्दावन द्वारकामें मिलन तथा ब्रज भावकी अभिलाषा अभिव्यक्ति, यथा ललितमाधव—

चिरादाशा मात्रं त्वयि विरचयन्तः स्थिरधियो
विदध्युर्ये वासं मधुरिमगभीरे मधुपुरे।
दधानः कैशोरे वयसि सखि तां गोकुलपते
प्रपद्येथास्तेषां परिचयमवश्यं नयनयोः।।१८।।

—हे श्रीकृष्ण! चिर कालसे आपके आनेकी आशामें सभी स्थिर बुद्धिमान व्यक्तियोंने प्राण धारण कर रखे हैं। आप गम्भीर मधुरिमामय मधुपुरीमें वास कर रहे हैं। हे गोकुलपते! कैशोर वयसके सखा धैर्य धारणकर आपके आनेकी बाट निहार रहे हैं। अतः आपको अवश्य ही दर्शन देने होंगे।।१८।।

गभीर माधुर्यमय, सेइ व्रजधाम हय, तथा यत स्थिर बुद्धि जन।
चिर आशा हृदे धरि, तोमार दर्शने हरि, वसियाछे से सब सज्जन।।
तोमार कैशोर लीला, हृदये वरण कैला, एवे से सवारे कृपा करि।
नयनगोचर हइया, लीला कर तथा गिया, एइ मात्र निवेदन करि।।

विरहिणी राधाकी, मधुर स्मृतियुक्त वृन्दावनमें श्रीकृष्णको ले जानेकी इच्छा, यथा ललितमाधव (१०.२२)—

याते लीलारसपरिमलोद्गारिवन्या परीता,
धन्या क्षौणी विलसति वृता माथुरी माधुरीभिः।
तत्रास्माभिश्चटुलपशुपीभावमुग्धान्तराभिः
संवीतस्तं कलय वदनोल्लासिवेणुर्विहारम्।।१९।।

—श्रीराधाने कहा, आपके लीलारसकी महान् सुगन्धोद्गारी वन्यासे युक्त एवं माधुर्य-सौष्ठवसे शोभित, परम प्रशंसित मथुराके समीप जो वृन्दावन भूमि है, उसी वृन्दावनमें प्रफुल्लित मुखसे वेणु बजाते, आप चंचल स्वभावा गोपी भावसे मुग्ध अंतःकरणवालियोंके साथ मिलकर विहार करें।।१९।।

मथुरा मण्डल माझे, माधुरी मण्डित साजे, धन्य–धन्य वृन्दावन भूमि।
ताहे तब नित्य लीला, परिमल प्रकाशिला, अचिन्त्य शक्तिते कृष्ण तुमि।।
गोपी भावे मुग्ध यत, तोमार शृंगार रत, आमा आदि प्रणयी निचय।
आमा सवे लये पुनः, क्रीड़ा कर अनुक्षण, वंशीवाद्ये ब्रजेन्द्रतनय।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रील रूप गोस्वामी स्वरचित ललितमाधव ग्रन्थमें वर्णन करते हैं—किसी एक कल्पमें श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर विरह–वेदना सहन न कर पानेपर श्रीराधाजी यमुनामें कूद पड़ी। सूर्य–कन्या यमुनाने श्रीराधाको ले जाकर अपने पिता सूर्यदेवके पास रख दिया। सूर्यदेवने उन्हें अपने मित्र एवं उपासक निःसंतान सत्राजित राजाको अर्पित कर कहा—'इसका नाम सत्यभामा है, तुम इसे अपनी कन्या जानो।' नारदजीके आदेशानुसार राजा सत्राजितने द्वारका स्थित श्रीकृष्णके अंतःपुरमें सत्यभामाको भिजवा दिया। इसके पूर्व सूर्यपत्नी संज्ञाने अपने पिता विश्वकर्माके द्वारा सत्यभामा (श्रीराधा) के लिए द्वारकामें मनोज्ञ नव वृन्दावनकी रचना करा ली थी। उस असाधारण रूपलावण्यमयी सत्यभामाको, श्रीकृष्णकी पटरानी रुक्मिणी नव वृन्दावनमें छिपाकर रखती थीं, जिससे कृष्ण उसे देख न पायें। घटना परम्परानुसार श्रीकृष्णसे सत्यभामाका मिलन हुआ और यह रहस्य भी खुल गया कि सत्यभामा वास्तवमें राधाजी हैं एवं रुक्मिणी वास्तवमें चन्द्रावली हैं। तत्पश्चात् रुक्मिणी देवीके उद्योगसे सत्यभामाका श्रीकृष्णसे विवाह हुआ। विवाहके समय यशोदारानी, पौर्णमासी मुखरा तथा व्रजवासी आदि द्वारकामें उपस्थित थे। विवाहके पश्चात् एक दिन इसी नववृन्दावनमें श्रीकृष्णने राधाजीसे कहा, "प्रियतमे! मैं आपके सुखके लिए और क्या कार्य करूँ?" तब श्रीराधाने कहा—"प्राणेश्वर! ब्रजकी समस्त सखियाँ मुझे यहाँ आकर मिली हैं, मेरी भगिनी चन्द्रावली, माता ब्रजेश्वरी आदि सभीको प्राप्तकर चुकी हूँ, फिर भी आपके निकट मेरी यह प्रार्थना है कि आप ऐश्वर्यधाम द्वारकासे चलें और पूर्व परिचित नित्यविहार भूमि ब्रजधाममें अपने नवकिशोर नटवर गोपवेशमें कुञ्जमें मेरे साथ विलास करें।"

श्रीकृष्ण–दर्शनके समय पलक गिरनेके कारण अदर्शन व्यथासे गोपियोंका पलक बनानेवालेको कोसना। गोपियोंकी इस दशाका कुरुक्षेत्र मिलनमें वर्णन यथा श्रीमद्भागवत (१०.८२.४०)—

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा–
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्।।२०।।

—कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण–दर्शनकर रही गोपियोंके भावोंको अनुभवकर श्रीशुकदेवजीने कहा, "श्रीकृष्ण दर्शनमें बाधक नेत्रोंपर पलकोंके रचयिताको जो शाप देती थीं, उन समस्त ब्रजसुन्दरियोंने सुदीर्घ अन्तरालके पश्चात् श्रीकृष्णको प्राप्त करके नेत्रोंके पथसे उन्हें हृदयमें प्रवेश कराया तथा प्रगाढ़तासे आलिंगन किया। जो योगीजनोंको तथा नित्य संयोग प्राप्ता रुक्मिणी आदि पटरानियोंको भी प्राप्त नहीं होती, उस दुर्लभ तन्मयताको उन्होंने प्राप्त किया।।२०।।

चिर दिन कृष्ण आशे, छिल गोपी ब्रजावासे, कुरुक्षेत्रे प्राणनाथे पाइया।
अनिमेष नेत्रद्वारे, आनि कृष्णे प्रेमाधारे, हृदे आलिङ्गिल मुग्ध हइया।।
आहा से अमिय भाव, अन्य जने असम्भव, स्वकीय कान्ताय सुदुर्ल्लभ।।
गोपी बिना एइ प्रेम, येन विशोधित हेम, लक्ष्मी गणे चिर असम्भव।।

भजनरहस्यवृत्ति—सूर्य ग्रहणके समय सारे ब्रजवासीजन श्रीकृष्णके दर्शन एवं मिलनकी उत्कण्ठा लेकर कुरुक्षेत्रमें उपस्थित हुए। सुदीर्घ विप्रलम्भके पश्चात् ब्रजरमणियाँ श्रीकृष्णका दर्शनकर आनन्दानुभूतिसे प्रफुल्लित हुईं तथा उनके चित्त एवं नेत्र जड़वत् हो गये। जिन ब्रजगोपियोंने श्रीकृष्णके दर्शन करनेमें निमेषके गिरने पर्यन्त कालके विरहको भी सहन न कर सकनेके कारण पलकोंके रचयिताको अभिशप्त किया था, वही ब्रजगोपियाँ अतिशय विरह–तापके बाद श्रीकृष्ण दर्शनकर जिस आनन्दको प्राप्त हो रही थीं, उसका कौन वर्णन कर सकता है? ब्रह्मानन्दको श्रुतियोंने अनिर्वाच्य कहकर वर्णन किया है। इसका परिमाण कितना है कोई स्थिर नहीं कर सकता। किन्तु यह आनन्द भी रसानन्दके सम्मुख खद्योत सदृश है। महाभाववती गोपियाँ श्रीकृष्णकी प्रेममयी सेवामें जो आनन्द लाभ करती हैं उसका वर्णन शब्दों द्वारा सम्भव नहीं। गोपियोंका शरीर अनुरागसे निर्मित है। श्रीकृष्णके सम्बन्धमें प्रगाढ़ता इसी अनुरागके कारण होती है। अनुराग सम्वितयुक्त ह्लादिनी शक्तिकी वृत्ति है जो स्वयं–संवेद्य है। अनुरागकी प्रगाढ़ताके तारतम्य द्वारा ही पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम प्रेमका निर्धारण होता है। गोपियोंके पूर्णतम

अनुरागके आगे, नारायणकी वक्षःविलासिनी लक्ष्मीका सेवानन्द, तथा द्वारकापट्टमहिषियोंकी नाना प्रकारकी प्रेम विलास कला कुशलता भी फीकी पड़ जाती है। समस्त प्रकारके उद्दाम भाव, मनोहर वल्गुहासादिके द्वारा भी वे कृष्णके चित्तको वशीभूत नहीं कर सकतीं। परन्तु प्रगाढ़ अनुरागरंजित तथा मदीय भाव प्रेमयुक्त ब्रजगोपियाँ अपने भ्रूकटाक्ष द्वारा श्रीकृष्णके हृदयको वशीभूत कर देती हैं। गोपियोंके इसी असाधारण प्रेमको श्रील शुकदेव गोस्वामीपाद आलोच्य श्लोकमें लक्ष्यकर ब्रह्म चिन्तनकारी ज्ञानियोंके प्रति तीव्र कटाक्षपात कर कह रहे हैं—"हे कठोर साधनकारी ज्ञानियों! आप लोगोंको धिक्कार है। यदि अपना जीवन सफल करना चाहो तो इन प्रेमवती गोपियोंके चरणोंमें शरणागत हो जाओ।" ब्रजगोपीवृन्दके प्रेम माधुर्यका दर्शनकर उद्धवजी भी उस प्रेम प्राप्तिके लिए लुब्ध हो जाते हैं—'वाञ्छति यद्भव भियो मुनयो वयञ्च' नित्य संयोगवती महिषियाँ इस प्रेम माधुर्यसे मुग्ध हो गोपियोंके वक्षःस्थल स्थित कुंकुम रंजित श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सुगन्ध प्राप्तिके लिए प्रार्थना करती हैं। विरहमें एक अपूर्व आनन्दानुभव होता है जिसे दिव्योन्माद कहते हैं। इस प्रेम समुद्रमें उत्तंग लहरियाँ उद्वेलित होकर समस्त लोकोंको प्लावित करती हैं। इसकी धारा स्वर्गस्थित नलिनी कान्ति विशिष्ट रमणियोंको व्याकुलित कर, पृथ्वीलोकवासियोंके हृदयको उद्वेलितकर सत्यलोकपर आक्रमणकर, वैकुण्ठ देशकी शोभाको भी तिरस्कृत कर देती है। गोपियोंके महाभावजनित प्रेमदर्शनसे उद्धव नारदादि विस्मित हो जाते हैं तथा रुक्मिणी, सत्यभामाके चित्त भी स्तब्धीभूत हो जाते हैं। अनेक कठोर साधनोंके द्वारा भी योगीजन श्रीकृष्णके जिन चरणकमलोंकी नखछटाको भी हृदयमें स्थापित नहीं कर पाते हैं, किन्तु गोपियाँ अति सरल–सहज रूपमें निखिल सौन्दर्य–लावण्यके सार किशोरकृष्णके श्रीचरणकमलोंको साक्षात्‌रूपमें अपने वक्षःस्थलपर धारणकर (श्रीकृष्णके) कामतापको शान्त करती हैं। धन्य हैं ये समर्था गोपियाँ।

अपने गृह वृन्दावनमें पानेके लिए गोपियोंकी तीव्र उत्कण्ठा, यथा श्रीमद्भागवत (१०.८२.४९)—

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसार–कूप–पतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः।।२१।।

—कुरुक्षेत्र मिलनमें श्रीराधिका प्रमुख गोपियोंने कहा—हे कमलनाभ! अगाध बोधसम्पन्न बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय कमलमें आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं। जो संसार कूपमें गिरे हैं, उन्हें उससे निकालनेके लिए आपके चरणकमल ही एकमात्र अवलम्बन हैं। प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिए कि आपके वह चरणकमल, घर-गृहस्थका काम करते रहनेपर भी सदासर्वदा हमारे हृदयमें विराजमान रहें, हम एक क्षणके लिए भी उन्हें न भूलें।।२१।।

कृष्ण हे!
अगाध बोध सम्पन्न, योगेश्वरगण धन्य, तव पद करुन चिन्तन।
संसार पतित जन, धरु तव श्रीचरण, कूप हइते उद्धार कारण।।
आमि ब्रज गोप नारी, नाहि योगी न संसारी, तोमा लञा आमार संसार।
मम मन वृन्दावन, राखि तथा ओ चरण, एइ वाञ्छा पूराओ आमार।।

भजनरहस्यवृत्ति—कुरुक्षेत्रमें मिलनके समय श्रीकृष्णने विरह-कातरा व्रजगोपियोंको सान्त्वना देनेके लिए ब्रह्मज्ञान और योगकी शिक्षा दी कि 'मैं सर्वत्र ही व्याप्त हूँ, तुमलोगोंसे कदापि मैं सर्वथा अलग नहीं हूँ, ध्यानयोगके द्वारा मुझे अपने हृदयमें दर्शन करनेका प्रयास करो।'

प्रियतमके ब्रह्मज्ञान और योग सम्बन्धी उपदेशोंको सुनकर इषत् कूपित होकर कहने लगीं—'हे तत्त्वाचार्यभाष्कर! यह ज्ञानयोगका उपदेश और कहीं करना। हम भोलीभाली अज्ञ गोपियाँ इसे समझ नहीं सकतीं। श्रोताके अनुरूप ही उपदेश करना श्रेयस्कर होता है। इन उपदेशोंको सुनकर हमारा हृदय जलने लगता है। प्राणनाथ! दूसरोंका हृदय, मन है—यह बात सत्य है किन्तु हमारा मन वृन्दावन है। यदि तुम वृन्दावनमें चलो तो हम यह समझ लेंगी कि हमारे मनमें चले आये। यही तुम्हारी पूर्णकृपा होगी, अन्यथा नहीं। व्रज हमारा मन ही नहीं, अपितु घर भी है। वहाँपर तुम्हारे साथ मिलन नहीं होनेपर हमारे प्राण निकलने लगते हैं।

तुमने पहले उद्धवके द्वारा इसी योग-ज्ञानका उपदेश दिया था। आज स्वयं भी हमें उसीका उपदेश दे रहे हो। तुम रसिक और परम दयालु हो। हमारे हृदयकी भावनाओंको भी समझते हो। फिर भी ऐसी बातें क्यों करते हो? तुम जानते हो कि हम तुमसे अपनी प्रीति निकालकर सांसारिक विषयोंमें लगाना चाहती हैं; किन्तु लाख प्रयत्न करनेपर भी ऐसा नहीं

कर पातीं। इधर तुम हमें अपने ध्यानकी शिक्षा दे रहे हो, क्या तुम्हें कहाँ क्या शिक्षा देनी चाहिए—इसका तनिक भी विचार नहीं रहा? हम गोपियाँ योगेश्वर नहीं हैं। हमें तुम्हारे श्रीचरणोंके ध्यानसे कदापि सन्तोष नहीं हो सकता। हमें तुम्हारी ऐसी बातोंको सुनकर बड़ा ही रोष होता है। भले मानुष! जिन्हें अपनी देहकी भी स्मृति नहीं है—उन्हें संसार–कूप कहाँ सम्भव है, फिर उससे उद्धारकी कामना उनमें कहाँ सम्भव है? वे तो सदासर्वदा तुम्हारे विरहके अगाध जलमें निमज्जित हो रही हैं, वहाँ कामरूप मगरमच्छ उन्हें निगल रहा है। हे प्राणनाथ! उन गोपियोंकी रक्षा करो।

हे जीवनधन! तुम वृन्दावन, गोवर्द्धन, यमुना–पुलिन और कुंजोंमें रासादि लीलाओंको भूल गये; अहो! यह आश्चर्यकी बात है कि तुम व्रजवासियों, सखाओं और माता–पिताको कैसे भूल गये? यह हमारा दुर्दैव है। हम अपने लिए दुःखी नहीं, दुःखी हैं व्रजेश्वरी यशोदा मैयाके लिए। उनका उदास मुख देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। हमारे साथ तुम्हारा सम्बन्ध मानो तो है, नहीं मानो तो नहीं है; किन्तु यशोदा मैयाके साथ तुम्हारा रक्तका सम्बन्ध है। उनके रक्तसे तुम्हारा शरीर गठित हुआ है, तुम्हारे भूलनेपर भी वह सम्बन्ध दूर नहीं हो सकता। तुम व्रजमें पधारो या न पधारो—यह तुम्हारी इच्छाके ऊपर निर्भर है। किन्तु तुमने व्रजवासियोंको जीवित क्यों रखा है? क्या बार–बार दुःख देनेके लिए ही उन्हें जीवित रखा है? हाँ, यदि जीवित रखना ही है, तो तुम शीघ्र ही वृन्दावनमें पधारो। तुम्हारा यह राजवेश, हाथी–घोड़े, यहाँके राजपुरुषोंका संग, यह अन्य प्रदेश—व्रजवासियोंको तनिक भी शोभा नहीं देता। हम वृन्दावन छोड़ नहीं सकतीं, इधर तुम्हें देखे बिना जीवित भी नहीं रह सकतीं। तुम व्रजके प्राण हो, व्रजराजके प्राणधन हो और हमारे प्राणोंके भी प्राण। तुम शीघ्रातिशीघ्र वृन्दावनमें चलकर सभीके प्राणोंकी रक्षा करो।

श्रीकृष्णका निर्जन स्थानमें गोपियोंसे वार्तालाप, यथा श्रीमद्भागवत (१०.८२.४१)—

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसङ्गतः।
आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत्॥२२॥

—जब श्रीकृष्णने देखा कि गोपियाँ मुझसे तादात्म्यको प्राप्त हो रही हैं, तब वे ऐकान्तमें उनके पास गये, उनको हृदयसे लगाया तथा कुशल मंगल पूछनेके पश्चात् हँसते हुए बोले॥२२॥

विविक्ते लइया, गोपी आलिङ्गिया
प्रेमे मर्मकथा कय।
कृष्ण गोपी-प्रीति, महिषीर तति
देखिया आश्चर्य हय।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीमती राधाकी विरह-व्यथाभरी बातोंको सुनकर श्रीकृष्णको व्रजवासियोंके प्रति अथाह निश्छल प्रेमका स्मरण हो आया। वे अत्यन्त अधीर हो उठे। अपनेको उनका ऋणी मानकर विरहातुर गोपियोंको सान्त्वना देने लगे—प्रियतमे! तुम सच मानों, तुम्हारा स्मरण करता हुआ दिन-रात मैं विरहकी आगमें जलता हूँ। मेरे इस असहनीय दुःखको भी कोई नहीं जानता। व्रजवासी, मातापिता, सखागण मेरे प्राणस्वरूप हैं, उनमें भी गोपियाँ साक्षात् मेरा जीवन हैं और तुम-तुम मेरे जीवनके भी जीवन हो; अधिक क्या कहूँ? मैं तुम्हारे निरुपाधिक प्रेमके सर्वथा अधीन हूँ। दुर्दैव प्रबल है, इसपर किसीकी नहीं चलती। इस दुर्दैवने ही मुझे तुमसे अलग दूर देशमें रख दिया है।

यह बात सत्य है कि प्रिया, प्रियतमके संगके बिना और प्रिय प्रियाके संगके बिना जीवित नहीं रह सकते। किन्तु दोनों इसलिए नहीं मरते कि मेरे मरनेसे मेरे विरहमें उसकी भी यही दशा होगी। अहो! सती प्रेमवती है और वही प्रेमवान पति है, जो वियोगमें भी प्रियका हित चाहते हैं। वे अपने दुःख-कष्टको नहीं देखते—सदासर्वदा अपने प्रियजनका ही सुख चाहते हैं। ऐसे प्रेमी युगलका मिलन शीघ्र ही होता है।

'तुम नहीं जानतीं, मैं प्रतिदिन तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिए भगवान श्रीनारायणकी उपासना करता हूँ और उसीकी शक्तिसे मैं इस दूर देशसे वृन्दावनमें तुमसे प्रतिदिन मिलता हूँ, तुम्हारे साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करता हूँ; किन्तु तुम इसे केवल स्फूर्ति समझती हो। प्यारी राधे! मेरा यह परम सौभाग्य है कि तुम मुझे प्रेमकी परावधि अपार स्नेह करती हो। यही प्रेम शीघ्र ही मुझे वृन्दावनमें तुम्हारे समीप खींच लायेगा। यादवोंके बचे-खुचे शत्रुओंको ठिकाने लगाकर बस दो-चार दिनोंमें ही आनेवाला हूँ, समझो कि मैं आ ही गया।

ऐसी सान्त्वना देते हुए श्रीकृष्णने कहा—यथा श्रीमद्भागवत (१०.८२.४५)—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः।।२३।।

—सखियों! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपको मेरी प्राप्ति कराने वाला प्रेम प्राप्त हुआ है। मेरे प्रति की हुई प्रेमाभक्ति प्राणियोंको अमृतत्व—परमानन्द धामको प्रदान करनेमें समर्थ है।।२३।।

आमाते ये प्रेम भक्ति परम अमृत। तव स्नेहे निरवधि तव दास्ये रत।।

भजनरहस्यवृत्ति—कुरुक्षेत्रमें दीर्घ कालके पश्चात् गोपियोंका श्रीकृष्णसे मिलन हुआ। श्रीकृष्णने निर्जन कुरुक्षेत्रकी भूमिमें व्रजकी कमललोचना रमणियोंको आलिङ्गन, चुम्बन करते हुए, उनके अश्रु पोंछते हुए तथा उनसे कुशलक्षेम पूछते हुए सान्त्वना दी और कहा—"हे सखीवृन्द! इस चिरकालके विरहमें आपने हमारा स्मरण किया! आप मुझे अकृतज्ञ निश्चयकर बुरा तो नहीं मान गई हो? निःसन्देह भगवान् ही प्राणियोंके संयोग एवं वियोगके कारण हैं। जैसे वायु, तृण, रुई और धूलिकणोंको मिला देती है और फिर अलग कर देती है। उसी प्रकार ईश्वर भी इच्छानुसार सबका संयोग और वियोग कराते रहते हैं। यदि कहो कि यह संयोग और वियोग करानेवाला ईश्वर मैं ही हूँ, तब तो आपके दुःखका कोई कारण नहीं, क्योंकि सौभाग्यवश आपको मेरी प्राप्ति कराने वाला प्रेम प्राप्त हुआ है, मेरे प्रतिकी हुई भक्ति प्राणियोंको अमृतत्व परम धामको प्रदान करनेमें समर्थ है। किन्तु मेरे प्रति आपलोगोंका जो स्नेह है, उस स्नेहके कारण मैं आपलोगोंसे दूर नहीं रह सकता। आपका यह स्नेह मुझे आकर्षित करके आपके निकट ले आता है।"

श्रील जीव गोस्वामीपाद क्रम सन्दर्भकी टीकामें कहते हैं कि जीव साधन भक्तिके द्वारा स्ववासना तथा स्वस्वरूपानुसार भगवत् धाम प्राप्त करते हैं तथा श्रीकृष्ण भी प्रसन्न होकर उन भक्तोंकी सेवा ग्रहण करते हैं। ब्रजदेवियोंका स्नेह राग, अनुराग एवं महाभावकी पराकाष्ठाको प्राप्तकर लेता है। इसीके द्वारा श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेममें वशीभूत हो जाते हैं। केवला भक्ति या ममत्वयुक्त स्नेहादि ही श्रीकृष्णको आकर्षित करते हैं। अतएव भगवानके प्रति स्नेहको ही भगवत् आकर्षणका परम उपाय जानना चाहिए।

पुनः श्रीकृष्ण कहने लगे, "जिस प्रकार आकाशादि पंचभूत समूह समस्त भौतिक पदार्थोंके आदि, अन्त व मध्यमें रहते हैं, उसी प्रकार सब पदार्थोंके

आदि अन्त एवं भीतर-बाहर मैं ही विद्यमान हूँ। इसलिए आपलोगोंसे मेरा किसी भी प्रकारका विरह या विच्छेद नहीं है। अविवेकवशतः आपलोग कल्पित विरह दुःख भोग रही हैं। आपलोगोंके देह प्राण सभी मेरे स्वरूपमें अवस्थित हैं। आप इस तत्त्वकी उपलब्धिकी चेष्टा करें, योगियोंकी भाँति हृदयमें ध्यान करें। इससे आपका विरहदुःख दूर हो जायेगा।"

प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे यह आध्यात्मिक शिक्षा श्रवण करके गोपियाँ प्रणयकोप अपने अधरोंका दर्शन करती हुई कहने लगीं—"हे नलिननाभ! (अर्थात् अपूर्व सौन्दर्ययुक्त पद्म नाभिवाले) आप भगवत् तत्त्वादिका ज्ञानोपदेश देकर हमारा चित्त प्रसन्न करना चाहते हो—यह तत्त्व हमारे कर्ण रन्ध्रमें प्रवेश नहीं कर रहा है, हम तो आपकी सौन्दर्य सुधाका नयनों द्वारा पान कर रही हैं, हमें इन तत्त्वोंके श्रवणका समय कहाँ?" अथवा ब्रजदेवियाँ कटाक्षकर कहने लगीं, "हे कृष्ण! आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है—यह सुन्दर बात है, किन्तु जिस प्रकार कमलकी जड़ जल एवं कीचड़से संयुक्त रहती है उसी प्रकार आपकी भी बुद्धि मलिन हो गई है। इन उपदेशोंको आप अविवेकियोंको ही दीजिये हमें नहीं। पशुओंका खाद्य क्या मनुष्योंको दिया जाता है? अब आप अपनेको भगवान बता रहे हैं, ब्रजवासी इसे श्रवण करेंगे तो आप उपहासके पात्र बन जाओगे।" 'अगाधबोधैः योगेश्वरै हृदि विचिन्त्य' यह ज्ञान-योग तत्त्वज्ञानसम्पन्न गम्भीर बुद्धियुक्त योगियोंको दो, जो आपके चरणोंका चिन्तन करनेमें असमर्थ हैं।'

अथवा गोपियाँ उपालम्भ-वाक्यसे कहने लगीं, हे कृष्ण! हमने पौर्णमासीजीसे श्रवण किया है कि ब्रह्माकी उत्पत्ति आपके नाभिकमलसे हुई है, उस ज्ञानी ब्रह्माके संगसे आपकी बुद्धि भी जड़ताको प्राप्त हो गई है 'यस्य यत संगति पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्‌गुणः'।

अथवा गोपियाँ रोषपूर्वक कहने लगीं, "हे कृष्ण! गम्भीर बुद्धि सम्पन्न योगेश्वर ही आपके चरण कमलोंका ध्यान करनेमें समर्थ हैं। हम तो बुद्धिहीना, चंचलमति गोपबालायें हैं, आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेमें नितान्त असमर्थ हैं।"

अथवा गोपियाँ श्रीकृष्णके निकट अपने अंतःहृदयस्थित भावोंको व्यक्त करने लगीं, हे कृष्ण! आपके चरणकमलोंका चिन्तन तो बहुत दूरकी बात है, हम तो आपके चरणोंकी स्मृति मात्रसे ही व्यथित हो जाती हैं। नव

प्रस्फुटित कमलसे भी सुकोमल आपके चरणकमलोंको हम अपने कठिन वक्षःस्थलमें स्थापित करनेमें डरती हैं—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषा नः।।

(श्रीमद्भा. १०.३१.१९)

मनमें यह आशंका उदित होती है कि हमारे कठिन स्तन मण्डलके आघातसे आपके सुकोमल चरणोंमें व्यथा न हो, यह सोचकर ही हमारा मन बिच्छू दंशनवत् यंत्रणासे छटपटाता है।

अथवा, हे कृष्ण! आपके चरणोंमें अंकित उन्नीस प्रकारके चिह्न हमारे हृदय पटलपर उदित होकर पूर्व-पूर्व कुञ्जोंकी लीला स्मरण कराते हैं। आपके चरण चिह्नोंमें ध्वज चिह्न हमें स्मरण कराता है कि इह केलि विलास क्रीड़ामें आप श्रीराधासे पराजित हो जाते हैं तथा आप कहते हैं कि आपकी विजय पताकाको कन्धेपर धारणकर परिभ्रमण करूँगा। अंकुश चिह्न स्मरण कराता है कि श्रीराधा एक महावतकी भाँति अपने प्रेम अंकुशसे आप जैसे मदमस्त हस्तिको वशीभूत करती हैं। आपने स्वयं ही स्वीकार किया है 'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजा...' कि हे गोपियों! मैं आपके ऋणका परिशोधन नहीं कर सकता हूँ। अथवा गोपियाँ कहने लगीं, "आप मोहिनी रूप धारणकरके जिस प्रकार असुरोंको अमृतसे वंचित कर देवताओंको अमृतपान कराते हैं, उसी प्रकार योगियोंको ध्यान शिक्षा देकर प्रेमके निगूढ़ तत्त्वसे उन्हें वंचित करते हैं। किन्तु हम तो उस प्रकारके योगी या असुर नहीं जो इस निगूढ़ प्रेमतत्त्वसे हमें वंचित करोगे।

'संसार-कूप-पतितोत्तरणावलम्बं ते पदारविन्दं'—गोपियाँ प्रणयरोषसे श्रीकृष्णसे कहने लगीं—हे कृष्ण! आपने अपने तत्त्वज्ञान समूहको उद्धवके द्वारा भी ब्रजमें भेजा। उससे हमारी विरह वेदनाका उपशमन तो हुआ नहीं अपितु वर्धन हो गया। आप पुनः वही उपदेश हमें दे रहे हैं। आपने ध्यान-अभ्यासादि करनेके लिए हमें जो उपदेश दिये हैं वह अत्यन्त बालकोचित् एवं हास्यास्पद हैं। ब्रह्मादि योगेश्वर आपका चरण चिन्तन करनेसे संसारसे उद्धार पा सकते हैं। हम संसार कूपमें पतित नहीं हैं अपितु आपके विरह सागरमें पड़ी हुई हैं। हमें तो अपनी देहकी स्मृति भी नहीं है, फिर हमारा संसार कूपमें गिरना कैसा? आपके सुखके लिए तो हमने गृहासक्ति

भी परित्याग कर दी। हम तो विरह समुद्रमें पड़ी हुई हैं और कामरूप तिमिङ्गिल हमें निगलना चाहता है। अतः हे विदग्ध शिरोमणे! आप हमें योग ज्ञानका उपदेश न दीजिए, इस विरह समुद्रसे हमें निकालनेके लिए अपना सुखसङ्गम प्रदान कीजिये। हमारा मन वृन्दावनकी ओर दौड़ रहा है, कारण कि वृन्दावनके तरु, लता, फल, फूल व रजका प्रत्येक कण आपकी स्मृतिके साथ अविच्छेद्य भावसे जड़ित है। यदि वृन्दावनमें आपके चरणकमल उदित हों तो हमारे हृदयमें ही उदित होंगे।

'गेहं जुषामपि मनस्युदियात्'—ब्रजदेवियाँ अंतःक्षोभसे कहने लगीं, 'हे कृष्ण! हमने आपको कुरुक्षेत्रमें प्राप्त किया है तथा हमारा मिलन नव सङ्गमकी भाँति प्रतीत हो रहा है किन्तु हमारे मनको वृन्दावनकी स्मृति हरण कर रही है, यहाँ लोकारण्य है तथा हाथी, घोड़े, रथोंका कोलाहल मच रहा है, वृन्दावनमें पुष्पारण्य है, वहाँ मधुकर तथा कोकिलाओंकी मधुर ध्वनि ही सुनाई देती है। शुक, सारी, मयूर तथा कोयलकी सुमधुर ध्वनिसे मुखरित वृन्दावन संगीतमय और सुरम्य है। यहाँ आपका राजवेश है तथा साथमें क्षत्रिय योद्धा लोग हैं, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं। वहाँ आपका गोपवेश था, मुखपर सुंदर मुरली, शिरोदेशमें मयूर मुकुट, चम्प कलिकाके कर्ण कुण्डल तथा लता पतादि, गैरिक धातुओंसे सुसज्जित वेश।'

श्रीराधा कहने लगीं, 'हे कमलनयन! अन्य लोगोंका हृदय ही मन होता है, वे अपने मनसे हृदयको पृथक् नहीं कर पाते हैं, किन्तु मेरा मन वृन्दावन है। मेरा मन और वृन्दावन एक हैं, इनमें कुछ भेद नहीं है। मेरा मन स्वरूप वृन्दावन मेरे प्राणकान्तकी क्रीड़ाभूमि है। रसिकेन्द्र शिरोमणि श्रीकृष्ण मेरे साथ वहाँ रस माधुर्यपूर्ण केलि विहार करते थे। उसी वृन्दावनमें आपसे मिलनेके लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।

ब्रज आमार सदन, ताहाँ तोमार सङ्गम, ना पाइले ना रहे जीवन।।

(चै. च. म.-१३)

प्रदोष लीला, यथा गोविन्द लीलामृत—

राधां सालीगणान्तामसितसित निशायोग्यवेशां प्रदोषे
दूत्या वृन्दोपदेशादभिसृत – यमुनातीर – कल्पागकुंजाम्।
कृष्णं गोपैः सभायां विहितगुणिकलालोकनं स्निग्धमात्रा
यत्नादानीय संशायितमथ निभृतं प्राप्तकुंजं स्मरामि।।(२४)

—सन्ध्याके समय श्रीवृषभानुनन्दिनी कुछ भोज्य पदार्थ बनाकर नन्दभवनमें अपनी सखियोंके हाथ भेजती हैं। श्रीराधाकी दासियोंको यशोदारानी बड़ा स्नेह एवं दुलार करती हैं। श्रीराधा प्रेषित पकवानोंको मैया यशोदा राम–कृष्ण दोनों भ्राताओं तथा परिवारके अन्य जनोंको खिलाती हैं। अवशेष प्रसादको मैया सहचरियोंके हाथों श्रीराधाको भिजवाती हैं। कुन्दलता या धनिष्ठा सहचरीको अभिसार स्थलका संकेत दे देती हैं। सहचरियाँ श्रीराधाको नन्दभवनका समाचार देती हैं तथा श्रीराधाको अवशेष प्रसाद देती हैं—'स्वामिनीजी देखो आपके द्वारा बनाये मनोहर लड्डू आपके प्रियतमने बड़े प्रेमसे पाये।' एक–एक भावको बताकर सखीवृन्द परिवेशण सेवा समाप्तकर स्वामिनीजीको अभिसारके लिए प्रस्तुत कर ले जाती हैं।

राधा वृन्दा उपदेशे, यमुनोपकूलदेशे, साङ्केतिक कुञ्जे अभिसरे।
सितासित निशायोग्य, धरि वेश कृष्णभोग्य, सखी सङ्गे सानन्द अन्तरे।।
गोपसभा माझे हरि, नाना गुण कला हेरि, मातृयत्ने करिल शयन।
राधा संग स्मरिया, निभृते बाहिर हइया, प्राप्त कुञ्जे करिये स्मरण।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीवृन्दादेवीके संकेतके अनुसार यमुनाके तटवर्ती 'केलिकुंजमें श्रीमती राधिका दो एक विश्वस्त किङ्करियों या प्रियनर्म सखियोंको साथ लेकर अभिसार करती हैं। ये प्रेष्ठ सखियाँ अंधेरी रात्रिमें काले वस्त्र और ज्योत्स्ना रात्रिमें शुभ्र वसन धारण कराकर बड़ी ही सावधानीसे आनन्दपूर्वक श्रीकिशोरजीको अभिसार कराती हैं।

इधर श्रीकृष्ण गोपसभामें मनोहर संगीत, बाजीकरी, अभिनय आदि कलाको देखकर मैया यशोदाकी लोरियोंको श्रवण करते–करते शयनका भान करने लगे। किन्तु किशोरीजीके संगकी प्राप्तिके लिए राजभवनसे अकेले निकलकर संकेत–कुंजकी ओर अग्रसर हुए। योग्य साधक हरिनाम कीर्तन करते हुए प्रीतिपूर्वक इस सप्तम यामकी लीलाका स्मरण करेंगे।

।।इति श्रीभजनरहस्ये सप्तमयाम साधनम्।।

अष्टमयाम–साधन

रात्रिलीला—प्रेमभजन–सम्भोग

(मध्यरात्रिसे साड़े तीन प्रहर तक)

सिद्धिकी निष्ठा अर्थात् ऐकान्तिक रूपमें कृष्ण परतन्त्रता, यथा शिक्षाष्टक (८)—

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु–
मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।१।।

—वह (कृष्ण) लम्पट अपनी सेवामें अनुरक्त मुझ दासीको प्रगाढ़ आलिंगन द्वारा आह्लादित करें या पैरों तले रौंद डालें अथवा अपना दर्शन न देकर मुझे मर्मान्तिक पीड़ा प्रदान करें या उसकी जैसी भी इच्छा हो, करें—यहाँतक कि दूसरी प्रियाओंके साथ मेरे सामने ही रमण करें; फिर भी वही मेरे प्राणनाथ हैं। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।।१।।

आमि कृष्णपद दासी, तिहों रस सुखराशि, आलिङ्गिया करे आत्मसाथ।
किवा ना देय दरशन, ना जाने मोर तनु मन, तबु तिहों मोर प्राणनाथ।।

(चै. च. अ. २०.४८)

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीचैतन्यचरितामृतमें उपर्युक्त पयारके बाद इस प्रकार कहा गया है—

सखि हे, सुन मोर मनेर निश्चय।
किवा अनुराग करे, किवा दुःख दिया मारे, मोर प्राणेश्वर कृष्ण अन्य नय।।
छाड़ि अन्य नारीगण, मोर वश तनु मन, मोर सौभाग्य प्रकट करिया।
ता सबारे देन पीड़ा, आमा सने करे क्रीड़ा, सेइ नारीगणे देखाइया।।
किवा तेंहों लम्पट, शठ धृष्ट सकपट, अन्य नारीगण करे साथ।
मोरे दिते मनःपीड़ा, मोर आगे करे क्रीड़ा, तबु तेंहों मोर प्राणनाथ।।
ना गणि आपन दुःख, सबे वाञ्छि ताँर सुख, ताँर सुख आमार तात्पर्य।
मोरे यदि दिले दुःख, तार हैल महासुख, सेई दुःख मोर सुखवर्य।।

(चै. च. अ. २०.४९–५२)

—सखि! मैं तो श्रीकृष्णके श्रीचरणोंकी दासी हूँ, वे रसिकशेखर सुखके सागर हैं। वे प्रगाढ़ आलिङ्गन द्वारा मुझे आह्लादित करें, पैरों तले कुचल डालें, मुझे कृपाकर दर्शनसे सुखी करें अथवा दर्शन न देकर मर्मान्तिक पीड़ा दें, मेरे तन-मनकी भावनाओंको भले ही न समझें; फिर भी वे मेरे प्राणनाथ ही हैं। सखि! मैंने मनमें यह निश्चय कर लिया है कि चाहे वे मुझसे प्रेम करें अथवा मुझे सतावें; मेरा सौभाग्य प्रकटकर अन्य रमणियोंको छोड़कर मेरे वशीभूत होवें—उन रमणियोंके सामने ही मेरे साथ विहारकर उनको दुःखित करें; चाहे वे शठ, धृष्ट, कपटी और लम्पट भी क्यों न हों, भले ही वे मेरे सामने ही मुझे चिढ़ानेके लिए दूसरी गोप-रमणियोंके साथ विहार करें; फिर भी मेरे प्राणनाथ वही हैं। मुझे अपने कष्टोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं; मैं सदासर्वदा उनके सुखकी ही कामना करती हूँ। उनको सबप्रकारसे सुखी रखना ही मेरे जीवनका मूल उद्देश्य है। यदि मुझे दुःख देनेसे उन्हें सुख मिले, तो वह दुःख ही मेरे लिए परम सुख है।

इन लीलाओंका स्मरण करनेवाले वैष्णव भी भगवानकी भाँति सच्चिदानन्दमय होते हैं। वैष्णवोंका शरीर श्रीकृष्णके शरीरसे अभिन्न होता है। श्रीकृष्ण इस विषयमें उद्धवजीसे कहते हैं। यथा; श्रीमद्भागवत (११.२९.३४)—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै।।२।।

—जिस समय मनुष्य समस्त कर्मोंका परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरे विशेष उपचाररूप कृपाके द्वारा विशेष प्रेमका पात्र बन जाता है, मैं उसको वृद्धावस्थासे छुड़ाकर अमृतत्व-स्वरूप अपनी लीलामें प्रवेश करा देता हूँ, वहाँ मेरी सेवा करता हुआ मेरे साथ ही रहता है।।२।।

सर्व कर्म तेयागिया, मोरे आत्म निवेदिया, येइ करे आमार सेवन।
अमृतत्व धर्म पाइया, लीला मध्ये प्रवेशिया, आमा सह करये रमण।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवान श्रीकृष्ण अपने प्रिय उद्धवके निकट सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन तत्त्वके वर्णनके पश्चात् ऐकान्तिक रूपमें श्रीकृष्ण समर्पितात्मा शुद्ध भक्तकी गतिका वर्णनकर रहे हैं—मरणशील जीव संसारमें परिभ्रमण करते-करते सुकृति क्रमसे श्रीकृष्णके नित्यजनोंका संग प्राप्त करते

हैं। भक्त शुद्धभक्तोंके संग-प्रभावसे नित्य, नैमित्तिक तथा भोग, मोक्षकी आकांक्षाओंको त्यागकर शुद्धभक्तिका अनुशीलन करते हैं। जिस प्रकार सूर्यके आलोकसे तमका नाश हो जाता है, उसी प्रकार भक्ति-आलोकसे जीवका मोह तम दूर हो जाता है। भक्त भगवानकी ममतामय सेवा करता है, भगवान भी उस भक्तको सेवोपयोगी अमृतमय देह अर्थात् साधककी भावनानुसार देह, रूप, गुण, लीला, सेवाको प्रदान करते हैं। मधुर-रति सम्पन्न साधकगण स्वजातीय स्निग्धाशय भक्तोंके संग प्रभावसे हृदयमें सेवावासना प्राप्त करते हैं तथा भक्ति-अभ्यास एवं भक्तकृपासे सिद्धावस्था लाभ करते हैं। इन भक्तोंकी साधना ललितादि सखियोंके आनुगत्यमें होती है, उनकी कृपासे वे नित्यसिद्ध मञ्जरियोंका सारूप्य प्राप्तकर ब्रजधाममें कुञ्ज सेवाका आनन्द भोग प्राप्त करते हैं। स्वरूप सिद्धिके पश्चात् वस्तुसिद्धि होती है। वस्तुसिद्धि होनेपर जीव नित्य वृन्दावनमें श्रीमती राधाजीकी सेवा नित्यकालके लिए प्राप्त करते हैं। इस सेवाकी प्राप्ति मधुररति साधकोंके अतिरिक्त अन्य किसीको प्राप्त नहीं है।

भजन निष्ठा, यथा मनःशिक्षा (२)—

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
ब्रजे राधाकृष्ण-प्रचुर परिचर्यामिह तनु।
शचीसूनुं नन्दीश्वरपतिसुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः।।३।।

—हे मेरे प्यारे मन! श्रुतियोंमें कथित धर्म और अधर्म (पुण्यजनक धर्म और पापमूलक अधर्म), कुछ भी मत करो, बल्कि श्रुतियोंने चरम सिद्धान्तके रूपमें जिनको सर्वोपादेय चरम उपास्य एवं सर्वोपरि तत्त्व निर्धारित किया है, उन श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी प्रेममयी प्रचुर परिचर्या करो। श्रीराधाभाव-कांति सुवलित शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुको श्रीनन्दनन्दनसे अभिन्न तथा श्रीगुरुदेवको मुकुन्दप्रेष्ठ (प्रिय) जानकर उनका सदासर्वदा स्मरण करो।।३।।

श्रुति उक्त धर्माधर्म, विधि निषेध कर्माकर्म, छाड़ि भज राधाकृष्ण पद।
गौराङ्गे श्रीकृष्ण जान, गुरु कृष्ण-प्रेष्ठ मान, एई भाव तोमार सम्पद।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रुतियोंमें तथा तदनुगत स्मृति आदि ग्रन्थोंमें धर्म और अधर्मका निरूपण किया गया है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह इन

दोनोंकी श्रेणीमें आ जाता है। धर्म, अधर्मका पूर्ण रूपसे निषेध करके जीवका क्षणमात्र भी जीवित रहना सम्भव नहीं। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीपादने यहाँ इन्द्रियों द्वारा किये जाने वाले समस्त कर्मोंका निषेध नहीं किया है। इनके अंतर्गत धर्म तथा शुभ कर्मोंका पालन अज्ञ व्यक्तियोंके लिए है। विज्ञ जीव जिन्हें स्वरूपज्ञान प्राप्त हो चुका है, उन्हें आत्मरति या कृष्णरति अथवा श्रीराधाकृष्ण युगलकी प्रेममयी सेवाका उपदेश दिया है। साधकको अपने सभी कार्य भगवत्सेवामयी भावनासे ही करने चाहिए। गृहस्थ भक्त घरमें श्रीठाकुर सेवा प्रकाशकर धनोपार्जन, परिवारका पालन–पोषण, विषय सम्पत्तिकी रक्षा, गृह आदि सभी कार्य प्रभुकी सेवा समझकर करें। अपनेको केवल प्रभुका सेवक मात्र समझें।

उनका दैन्यभाव। आशाबन्ध युक्त जातरति भजनपरायणजनकी उक्ति, यथा श्रीरूप गोस्वामीधृत श्रीमन्महाप्रभु वाक्य—

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो,
ज्ञानम्बा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा।
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती
हे गोपीजनवल्लभ, व्यथयते हा हा मदाशैव माम्।।४।।

—मेरे हृदयमें आपके लिए कोई प्रेम नहीं है, न ही मैं श्रवण कीर्त्तनके द्वारा भक्ति करने योग्य हूँ। न तो मुझमें ज्ञान व कर्मादि हैं और न ही वैष्णवोचित् योग्यता। मेरा तो किसी उच्च कुलमें जन्म भी नहीं हुआ है। अतः मैं सर्वथा अयोग्य हूँ; तथापि हे गोपीजन वल्लभ! आपकी कृपा तो नीचसे नीचपर भी होती है यही दृढ़ आशा मेरे मनको व्याकुलित कर रही है।।४।।

श्रवणादि भक्ति, प्रेम भक्ति योग हीन। ज्ञान योग–कर्म हीन, सज्जन्मविहीन।।
काङ्गालेर नाथ तुमि राधाप्राण धन। तोमा पदे दृढ़ आशाय व्याकुलित मन।।

भजनरहस्यवृत्ति—'भक्तिका मूल अथवा परम अवलम्बन दैन्य है। भक्तिका उद्रेक दैन्यसे ही होता है। श्रील सनातन गोस्वामीजी दैन्यकी परिभाषामें कहते हैं—'सर्व सद्गुणयुक्त होनेपर भी जब अपने प्रति असमर्थता, अधमता, अपकृष्टताकी बुद्धि हृदयमें उदित होती है उसीको दैन्य कहते हैं। अर्थात् सर्वगुणान्वित होनेपर भी अहंकारशून्य बुद्धिद्वारा भगवत् प्राप्तिकी परम व्याकुलता ही दीनता है।'**दीनता ही कृष्णकृपाको आकर्षित करती है।** वास्तविक

दैन्यका प्रकाश प्रेमकी परिपक्वावस्थामें ही होता है। इसी दैन्यके कारण जातरति साधक कहता है—हे प्राणवल्लभ! आपके प्रति मेरा अनुराग नहीं, मैं श्रवणादि नवधा भक्ति पालन करनेमें समर्थ नहीं हूँ, ज्ञानियोंका निर्विच्छिन्न चिन्तन भी मेरे पास नहीं है, वर्णाश्रमोचित सेवा परिचर्या, उच्चकुलमें जन्म या शुभकर्म इत्यादि मेरे पास कुछ भी नहीं हैं। मेरी आशाका अवलम्बन तो केवल आपकी कृपा है, जिसका समस्त महाजन कीर्त्तन करते हैं, कि आप दीनोंके नाथ हो तथा उनपर कृपा करते हो।

श्रील सनातन गोस्वामीजी सर्वप्रकार गुणान्वित होकर भी दीनतापूर्वक इस शलोकका उच्चारण करते थे। जातरति साधक प्रचुर सेवा करके भी समझते हैं कि, 'मैंने कोई सेवा नहीं की।' कर्म ज्ञानादि रहित शुद्ध भक्तिरूपा प्रेमसेवा ही साधककी एकमात्र आकांक्षित वस्तु है। इस स्वरूपसिद्धा भक्तिकी प्राप्ति श्रवण कीर्त्तनादि द्वारा ही होती है। कर्मासक्त व्यक्तियोंके हृदयमें रही-सही भक्ति भी अन्तर्हित हो जाती है। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाकी इच्छा होनेपर भक्तिदेवी उपेक्षा कर देती है। **भक्तिका उद्रेक दीन-हीन निष्कपट हृदयमें ही होता है** तथा निरभिमान विनय ही कृपाके धाराप्रवाहको बढ़ाता है।

तृणादपि सुनीच होकर नाम कीर्त्तन करना ही नाम साधनकी पद्धति है, ऐसा श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः।।

ऊर्ध्व बाहु करि कहों शुन सर्व लोक। नामसूत्रे गाँथि पर कण्ठे एइ श्लोक।।
प्रभुर आज्ञाय कर एइ श्लोक आचरण। अवश्य पाइबे तबे श्रीकृष्ण चरण।।

(चै. च. आ. १७.३२)

सिद्ध परिचय, यथा गोस्वामी वाक्य (श्रीराधारससुधानिधि-५३)—

दुकूलं विभ्राणामथ कुचतटे कंचुकपटं
प्रसादं स्वामिन्याः स्वकरतलदत्तं प्रणयतः।
स्थितां नित्यं पार्श्वे विविधपरिचर्यैकचतुरां
किशोरीमात्मानं चटुलपरकीयां नु कलये।।५।।

—प्रीतिवश स्वामिनीजीके अपने हाथोंसे दिये हुए प्रसादस्वरूप पट्ट-वस्त्र और (कुचतटपर) कंचुकी धारण करनेवाली, नित्य पार्श्वस्थिता और उनकी विविध परिचर्याओंमें रत चतुर सुकुमारी किशोरीके रूपमें क्या मैं अपनी गणना कर सकूँगी?।।५।।

सिद्ध देहे गोपी आमि श्रीराधिका किंकरी। राधाप्रसादित वस्त्र कञ्चुलिका परि।।
गृहे पति परिहरि किशोरी वयसे। राधापद सेवि कुञ्जे रजनी दिवसे।।

भजनरहस्यवृत्ति—रसिक आचार्यगण सिद्धान्त देते हैं, साधक साधनावस्थामें जिस भावसे चिन्तन करता है, उसी भावमें सिद्धि लाभ करता है। गौड़ीय वैष्णवोंका अभीष्ट है श्रीराधादासी अभिमान, इसकी परिचर्या साधकको श्रील गुरुदेव देते हैं तथा उचित साधनाके द्वारा स्वरूपकी उपलब्धि कराते हैं।

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन-सम्पन्नां किशोरी प्रमदाकृतिम्।।
सखीनां संगिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तत्तत् कृपालंकारभूषिताम्।।

(सनत्कुमारसंहिता)

"रागमार्गका साधक अपनेको श्रीकृष्ण-कान्ता गोपिकाओंमें रूप-यौवन-सम्पन्ना एक गोप-किशोरीके रूपमें अनुभव करे। श्रीरूपमंजरी, श्रीरतिमंजरी आदि श्रीराधा दासियोंकी संगिनीके रूपमें, उन लोगोंके कृपालंकारसे विभूषिता और उनकी आज्ञाके अनुसार श्रीराधामाधवकी सेवामें रत अपने वासनामय स्वरूपका चिन्तन करे।" उल्लिखित श्लोकके 'चिन्तयेत्' शब्दका तात्पर्य यही है कि साधक श्रीराधाकी नित्यसिद्धा मंजरियोंके जैसे भाव-गुणादिसे युक्त यह दृढ़ अभिमान पोषण करेगा कि 'मैं इनके जैसा ही रूप-भावादिसे युक्त किशोरी ही हूँ।' गौड़ीय वैष्णव साधक परमावेशमें यह धारणा करेंगे कि 'मैं देहेन्द्रियादि कुछ भी नहीं, मैं रूप, रसादिसम्पन्ना गोपकिशोरी श्रीराधादासी हूँ।' इस प्रकारके प्रगाढ़ आत्मचिन्तनके फलस्वरूप वे शीघ्र ही जड़ीय देहादिका अभिमान त्यागकर स्वरूपसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती श्लोकके अपरांशमें सुकुमारी गोपकिशोरी बननेकी विधि बताते हैं—'मैं स्वामिनीके अपने हाथोंसे दी हुई प्रसादी पट्टवस्त्र, कंचुकी आदिसे भूषिता किशोरीके रूपमें अपना ध्यान करूँगा। स्वामिनीके अपने हाथोंसे दी हुई प्रसादी वस्तुओंमें उनकी स्नेह करुणाकी अनुभूतिके साथ प्रसादी वस्त्र कंचुकीमें युगलविलास माधुरीकी अनुभूति भी जड़ित है। स्वरूपावेशके साथ ही सेवा तथा सामीप्यकी भावना भी आती है, इसीलिए नित्य ही उनकी पार्श्व-स्थिता एवं विविध परिचर्याओंमें रत चतुर किशोरीके रूपकी बात कही गई है। राधादासीका प्राण स्वामिनीकी सेवासे, उसका स्वरूप सेवा-रससे ही गाढ़ा होता है। गौड़ीय

वैष्णवोंका मूल लक्ष्य है—राधादासी बनना। ध्रुव तारेकी तरह साधककी दृष्टि सर्वदा इसी लक्ष्यपर स्थिर रहती है। श्रीगुरुकृपासे जिस राधादासीत्वका स्वरूपका परिचय साधक प्राप्त करता है उसकी उपलब्धि, देहमें आत्म बुद्धिरूप माया-दास्यको त्यागकर राधा दासीत्वमें पूर्ण अभिमान रखकर ही होती है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर प्रार्थना करते हैं—

ललिता सखीर अयोग्या किंकरी विनोद धरिछे पाय।

अपने-भावमें भावापन्न भजन प्रणाली और वसति निर्णय यथा उपदेशामृत अष्टम श्लोक—

तन्नामरूपचरितादि-सुकीर्त्तनानु-
स्मृत्योः क्रमेण रसनामनसी नियोज्य।
तिष्ठन् ब्रजे तदनुरागिजनानुगामी
कालं नयेदखिलमित्युपदेशसारम्।।६।।

—भक्त मात्रको चाहिए कि वह अपनी रसना और मनको अन्यान्य कृष्णेतर विषयोंसे हटाकर श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला-कथाके कीर्त्तन और स्मरणमें क्रमशः लगाकर, श्रीब्रजमण्डलमें ही निवास करते हुए श्रीकृष्णके अनुरागीजनोंका अनुगामी बनकर अपने समस्त समयको व्यतीत करता रहे; यही सारे उपदेशोंका सार है।।६।।

कृष्ण नाम-रूप-गुण-लीला-संकीर्त्तन। अनुस्मृतिक्रमे जिह्वा मनःसंयोजन।।
कुञ्जे वास अनुरागिजन-दासी हइया। अष्टकाल भजि लीला मजिया मजिया।।

भजनरहस्यवृत्ति—सारार्थ यह है कि अपने भावानुसार प्रियतम श्रीकृष्णका एवं अपने भावानुरूप श्रीकृष्णके भक्तोंका स्मरण करता हुआ तथा अपने भावानुकूल श्रीकृष्णके व्रजलीला सम्बन्धी नामों जैसे राधारमण, राधा रासबिहारी और उन्हींसे सम्बन्धित लीला कथाओंमें संलग्न होकर भक्तको व्रजमण्डलमें निवास करते रहना चाहिये। यदि शरीरसे सम्भव न हो तो मनसे करना होगा।

इस श्लोकमें भजन-प्रणालीकी तथा भजनके लिए सर्वोत्तम स्थानकी व्यवस्था दी गई है। श्रीश्रीराधाकृष्णके भजनके लिए व्रजमण्डलसे बढ़कर कोई भी स्थान नहीं है। इसीलिए ब्रह्मा एवं उद्धव जैसे भक्तश्रेष्ठ भी व्रजमें तृण-गुल्मका जन्म लेकर निवास करनेकी प्रार्थना करते हैं।

वैसी भजन रीति; रागानुग भक्तोंकी निरन्तर गुरुके आनुगत्यमें ही निजाभीष्ट सिद्ध–सेवा, यथा भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.२९४)—

कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजे सदा।।७।।

—जो भक्त रागमयी भक्तिके लोलुप हैं उन्हें व्रजवासी कृष्णका एवं अपने सजातीय कृष्ण–प्रियजनोंका स्मरण करते–करते उनकी लीला कथाओंमें अनुरक्त रहकर सर्वदा व्रजमें वास करना चाहिए।।७।।

स्मरि कृष्ण निज कृष्ण प्रेष्ठ व्रज जन। कृष्ण कथा–रत व्रजवास अनुक्षण।।

भजनरहस्यवृत्ति—रागानुगाकी परिपाटी है कि अपने प्रियतम इष्ट नवकिशोर नन्दनन्दन श्रीकृष्णका तथा अपने अभिलषित भावापन्न प्रिय सखियाँ श्रीरूपमंजरी आदिका स्मरण करना चाहिए तथा उनकी कथाओंका श्रवण करते हुए श्रीनन्दराजके व्रज अर्थात् वृन्दावनमें सदैव वास करे। शक्तिसामर्थ्य रहनेपर सशरीर वृन्दावन तथा गोवर्धन, राधाकुण्ड आदि स्थानोंमें वास करे, असमर्थ होनेपर मनसे वास करना चाहिए। ये स्थान शृंगाररसमय स्थान हैं तथा भजनमें रसोद्दीपक तथा लीला उद्दीपक हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर प्रार्थनामें कहते हैं—'राधाकुण्ड तट कुञ्ज–कुटीर, गोवर्धन पर्वत यामुना तीर।'

उपरोक्त साधकोंको कृष्ण–प्रेष्ठजन अर्थात् भावानुकूल ब्रज रसिकजन यथा श्रीरूपमंजरी आदि सखियोंकी कथाओंका स्मरण करना चाहिए, ऐसा करनेसे उनके भाव हृदयमें संक्रमित होते हैं। व्रज–रसिकजनोंकी सेवा परिचर्या द्वारा उक्त भाव प्राप्त होते हैं।

उदाहरण स्वरूप—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीको श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीलरूप गोस्वामीके आनुगत्यमें व्रजकी रसमयी उपासनाकी पराकाष्ठा प्राप्त हुई थी।

बाह्य व्यवहार; प्रेमी भक्तोंके लक्षण तथा क्रिया–चेष्टा, यथा (श्रीमद्भागवत ११.२.४०)—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।।८।।

—जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत नियम ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम–कीर्त्तनसे अनुरागका, प्रेमका अंकुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे

ऊपर उठ जाता है। लोगोंकी मान्यताओं और धारणाओंसे परे हो जाता है। दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही उन्मत्त-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है, तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवानको पुकारने लगता है, तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है, तब उन्हें रिझानेके लिए नृत्य भी करने लगता है।।८।।

एई व्रते कृष्णनाम कीर्त्तन करिया। जातराग द्रवचित्त हाँसिया काँदिया।।
चीत्कार करिया गाई लोकबाह्य त्यजि। एई व्यवहारे भाई प्रेमे कृष्ण भजि।।

भजनरहस्यवृत्ति—भगवद् भक्तगण सदासर्वदा भगवानके मंगलमय नामोंका कीर्तन करते हैं। श्रीकृष्ण संकीर्तनसे समस्त प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं, चित्त निर्मल हो जाता है, जन्म-जन्मान्तरके पाप और उससे प्राप्त पुनः पुनः जन्म-मृत्यु रूप संसार नष्ट हो जाता है, सर्वप्रकारके कल्याण उदित हो जाते हैं; प्रेमाभक्तिके सभी साधनोंका संचार होने लगता है, कृष्णप्रेमका उदय होता है, प्रेमामृतका रसास्वादन होने लगता है, श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है और अंतमें सेवामृतरूपी समुद्रमें सम्पूर्ण रूपसे अवगाहन द्वारा सुशीतलता और निर्मलता प्राप्त होती है। इस अवस्थामें श्रीकृष्ण संकीर्तन ह्लादिनी सार वृत्तिके द्वारा जीवके स्वाभाविक आनन्दको अनन्त-अपरिसीम रूपमें सम्वर्धित करते हैं। जीव अब दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इनमेंसे किसी एकरसमें नित्य स्थित होकर नव-नवायमान अनुरागके द्वारा प्रतिक्षण पूर्णामृतका आस्वादन करता है। साधकके हृदयमें श्रीकृष्णकी माधुर्यमय लीला स्फुरित होती है तथा श्रीकृष्णके सौन्दर्यादि समस्त गुण माधुर्योंको भक्तजन बारंबार आस्वादन करते हैं तथा ये माधुर्य हरक्षण उन्हें नित्य नवीन होकर चमत्कृत करते रहते हैं। भक्तका चित्त द्रवीभूत हो उठता है।

श्रीमन्महाप्रभुने प्रकाशानन्द सरस्वतीको श्रीकृष्ण नाम-संकीर्तनकी महिमा बताते हुए कहा है कि, 'गुरु प्रदत्त नाम ग्रहण करनेपर वह नाम स्वतः ही मेरे चित्तको द्रवीभूत कराकर कभी मुझे नचाता है, कभी हँसाता है और कभी रुलाता है।' श्रीकृष्ण नाम-महामन्त्रका यही स्वभाव है, जो भी इसका जप करता है, यह उसमें श्रीकृष्ण प्रेमको उत्पन्न कर देता है और यही परम पुरुषार्थ है। इसके आगे धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ, तृणके समान हैं। प्रेमका स्वभाव चित्तमें चपलता उत्पन्न करना है। उस

प्रेमके स्वभाववश कभी भक्त हँसने लगता है, कभी रोने लगता है कभी उन्मत्त होकर नाचने लगता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपादजी इस श्लोककी टीकामें लिखते हैं कि नामग्रहण करनेसे साधकके हृदयमें स्वाभाविक लीला स्फूर्ति होती है तथा साधक विविध प्रकारके लीला–चरित्र अनुभव करते हैं। श्रीकृष्णकी माखनचोरी लीला अथवा रासलीलामें ब्रजदेवियोंके साथ हास परिहासमय वाक्य श्रवणकर साधक हँसते हैं। लीला स्फूर्तिका विराम होनेसे साधक क्रन्दन करता है। साधक सोचता है मैंने केवल एकबार ही आपके माधुर्यामृतका आस्वादन किया उसे पुनः कब प्राप्त करूँगा? इस प्रकार विलाप करते–करते लोटते हुए लम्बे साँस भरकर बेसुध हो जाता है। फिर हर दिशामें भगवानका दर्शन करते हुए आनन्दमें विभोर हो उन्मत्त हो जाता है। इस प्रकारकी अलौकिक चेष्टाएँ करता हुआ भक्त अपने शरीरके अनुसन्धानसे भी रहित हो जाता है।

ब्रजलीला निष्ठा; श्रीमन्महाप्रभुकृत संकेत–श्लोक (काव्य प्रकाश १.४ साहित्य दर्पण १.१०, पद्यावली ३८६ अंक धृत)—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा–
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ा कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।।९।।

—हे सखि! कुमारावस्थामें जिसने हमारे मनको हरण कर लिया था। वही सुन्दरवर यहाँ उपस्थित है। वह चैत्रमासकी सुहावनी रात्रियाँ भी हैं, खिली हुई मालतीकी सुगन्ध भी है और शीतल–मन्द–सुगन्धित कदम्बकी वायु भी बह रही है। मैं भी वही हूँ, मेरे प्रियतम भी वही हैं तथापि कामक्रीड़ाके लिए रेवा नदी तीरस्थ कदम्ब काननके लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।।९।।

कौमारे भजिनु यारे सेई एवे वर। सेई त वसन्तनिशि सुरभि प्रवर।।
सेई नीप, सेई आमि, संयोग ताहाई। तथापि से रेवातट, सुख नाहि पाई।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीके रथके आगे नृत्य करते हुए इस श्लोकका पाठ करते थे। उस समय श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधाभावमें विभावित हो अपनेको राधा समझते तथा श्रीजगन्नाथजीको ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ज्ञान करते। उनका कुरुक्षेत्रमें मिलन हो रहा है—यह उनकी

भावना रहती थी। श्रीकृष्णके साथ मिलन-सुखका जो अनुभव उन्हें वृन्दावनके निभृत निकुञ्जोंमें होता था, वह सुख कुरुक्षेत्रमें नहीं हो रहा है। वही आक्षेप करते हुए राधा-भावाविष्ट महाप्रभु अपनी सखीसे अपनी भावनाओंको व्यक्त कर रहे हैं—'हे सखि! मैं वही राधा हूँ, वही कृष्ण हैं, हम दोनोंका मिलन भी हो रहा है, किन्तु फिर भी वृन्दावनके निभृत निकुञ्जमें ही मिलकर श्रीकृष्णके साथ रमण करनेके लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।

श्रीमन्महाप्रभु अपने भावोंकी अभिव्यक्ति साहित्य दर्पणके प्रस्तुत श्लोकके द्वारा कर रहे हैं। यह श्लोक उस कुमारी नायिकाने कहा है जो अविवाहित अवस्थामें किसी नायकके गुणोंपर आसक्त होकर रेवा नदीके तटपर उससे मिलित हुई और नायकने उसके कौमार्यका हरण किया। कुमारी अवस्थामें सम्भोगकी इच्छा स्वाभाविक रूपमें नहीं रहती है, इस इच्छाका उदित होना ही कैशोर अवस्थाका आरम्भ है।

कुछ समय पश्चात् उसी नायिकाका विवाह उस नायकसे हो गया। चैत्रमास आनेपर नायिकाकी पूर्व-स्मृति उदित हो उठीं, रेवा नदीके तीरस्थ वेतसी-कुञ्जकी रमणीय परमज्योत्स्ना उज्ज्वलित रात्रि, मृदु-मंद समीरके साथ मालती पुष्पकी सुगन्धने मदन उद्दीपनकर मिलनकी आकांक्षाको वर्द्धित किया था। आज विवाह बन्धनमें उस मिलनके समान उत्कण्ठा नहीं है यद्यपि आजके मिलनमें कोई विघ्न बाधा नहीं, किन्तु मन वहीं रेवा नदीके तटपर जा रहा है। यहाँ नायिकाके हृदयमें प्रथम मिलनकी सुखमय स्मृति उदित हो वेतसी तरुतलमें प्राणवल्लभके साथ श्रृंगार-क्रीड़ा कौतुकका स्मरण करा रही है।

इस श्लोकमें प्राकृत कवि द्वारा प्राकृत नायक-नायिकाकी भावनाओंकी अभिव्यक्ति है, किन्तु महाप्रभु इसके द्वारा अप्राकृत श्रृंगार रसका माधुर्य आस्वादन करते थे। प्राकृत रसशास्त्रमें ऐसा मिलन दूषित तथा रसाभास माना जाता है। किन्तु राधाकृष्णकी लीला अप्राकृत है तथा उसमें रसका परम माधुर्य प्रवाहित होता है। कारण कि साधारण नायक नायिकाका मिलन, कामके वशीभूत होकर होता है। कामका उदय मायासे है। कामेच्छा पूर्ति होनेपर दोनोंके मध्य भावनाओंमें अंतर आ जाता है, दूसरी ओर अप्राकृत श्रृंगार रसके नायक नायिकाके मध्य वह प्रेम है, जिसका उद्गम स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी, संवित् वृत्तिसे हुआ है, इसका कार्य है कृष्णको सुख प्रदान करना।

काममें अपने उपभोगकी कामना होती है, प्रेममें कृष्णसुखका लक्ष्य रहता है।

'आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम। कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छा धरे प्रेम नाम।' (चै. च.) श्रीराधाकी कृष्ण-सेवा वासनाका कोई कारण नहीं है। यह शाश्वत नित्य है। जिस वस्तुका जन्म होता है, उसका कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है, इसलिए वह नष्ट भी हो जाता है। विवाह बन्धनमें बंधे नायक नायिकाका स्वकीया भाव रहता है तथा नित्य मिलनके कारण उसमें रसवैचित्र्य प्रकाशित नहीं होता तथा रसमाधुर्य भी ढका रहता है। परकीया भावसे मिलित नायक नायिकाका प्रेम समुन्नतोज्ज्वल रसयुक्त होनेके कारण प्रेम-माधुर्य विलक्षण रूपमें प्रकटित होता है। नित्य मिलन न होनेके कारण नायक-नायिका मिलनकी दुर्लभता, उपपति सम्बन्धके कारण वाम्यता, निवारणता तथा प्रच्छन्न कामुकता व्रजदेवियोंके पारकीय भावको एक अपूर्व माधुर्य प्रदान करते हैं। ये भाव केवल व्रजदेवियोंकी ही एकमात्र सम्पत्ति है। इसके एकमात्र नायक रसिक-चूड़ामणि ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। समस्त गोपियोंमें भी शिरोमणि वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा हैं। 'बहु कान्ता बिना नाहि रसेर उल्लास।' (चै. च.) श्रीकृष्णकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए स्वयं बहुकान्ताओंके रूपमें भी प्रकटित होकर श्रीकृष्णको पारकीय रसका आस्वादन कराती हैं। यह परकीया-भाव केवल व्रजमें ही प्रकट है।

यथा, श्रीरूप गोस्वामी कृत श्लोक पद्यावली (३८७)—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तःखेलन् मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति।।१०।।

—कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णसे मिलनके पश्चात् श्रीराधा अपनी सखीसे कह रही हैं—हे सखि! मेरे वही प्राणप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्रमें मिले हैं; मैं भी वही राधा हूँ; हमारे दोनोंके मिलनमें सुख भी है; तथापि इन कृष्णका वृन्दावनमें क्रीड़ाशील मुरलीके पञ्चम-स्वरसे आनन्दाप्लावित कालिन्दी पुलिनके कुंजके लिए ही मेरी प्रबल स्पृहा हो रही है।।१०।।

सेई कृष्ण प्राणनाथ कुरुक्षेत्रे पाइनु। सेइ राधा आमि, सेइ सङ्गम लभिनु।।
तथापि आमार मन वंशीध्वनिमय। कालिन्दीपुलिने स्पृहा करे अतिशय।।

वृन्दावन लीलासम लीला नाहि आर। वैकुण्ठाद्ये ऐइ लीलार नाहि परचार।।
व्रजे येइ लीला ताहे विच्छेद, सम्भोग। दुइ त परमानन्द, सदा कर भोग।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधाभावमें विभावित श्रीमन्महाप्रभु रथयात्राके समय श्रीजगन्नाथजीके सम्मुख साहित्य दर्पणका श्लोक पाठ करते थे। इस श्लोकके भाव माधुर्यका मर्म केवल श्रीस्वरूप दामोदर ही जानते थे। उस वर्ष श्रीरूप गोस्वामी भी रथयात्रामें उपस्थित थे। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे श्रील रूप गोस्वामी भी उस श्लोकका भाव समझ सके। उन्होंने इसीके भावनानुसार प्रस्तुत श्लोककी रचना की। श्लोकको पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु भावाविष्ट हो जाते थे।

सुदीर्घ विप्रलम्भके पश्चात् कुरुक्षेत्रमें श्रीराधाकृष्णका मिलन हुआ। यह मिलन भी वृन्दावनके प्रथम नवसंगम तुल्य सुखदायक हुआ; किन्तु श्रीराधाको अपने मनमें तृप्ति नहीं हो रही है। श्रीराधा अपनी अन्तरंगा सखीसे अपने हृद्गत भावोंको अभिव्यक्त कर कहने लगी—हे सखि! मेरा मन यमुना पुलिनस्थ कुञ्जमें श्रीकृष्णके साथ मिलनके लिए उत्कण्ठित हो रहा है। कालिन्दी पुलिनके उपवनमें श्रीकृष्ण मधुर क्रीड़ा करते-करते पंचम स्वरमें मुरलीको बजाकर अपूर्व माधुर्यको प्रकाशित करते हैं। वृन्दावन काननमें मयूर-मयूरीकी केका ध्वनि, उनका मनोरम नृत्य, कोयलकी कुहु-कुहू ध्वनि, आम्र-मंजरीकी सुगन्धमें मधुमक्खियोंकी गुंजनध्वनि, माधवी-मालतीकी सुगंधयुक्त प्राणोंको संचार करनेवाली वायु, सरोवरमें जलपक्षी हंस-हंसिनी तथा कमल-परागकी सुगंध—ये सभी अंतःकरणमें उद्दीपन कराते हैं, उस वृन्दावनमें नवकिशोर नटवर, शिखि पुच्छ वेणुकर, वन पुष्पोंसे सुसज्जित होकर मेरे साथ विहार करते थे। यहाँ कुरुक्षेत्रमें इन सबका लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। वृन्दावनमें उनसे मिलकर जिस सुखका आस्वादन मिला था, उस सुख-समुद्रका एक कण भी मुझे यहाँ प्राप्त नहीं हो रहा है। यहाँ कुरुक्षेत्रमें विजातीय परिवेश है। मेरी आंतरिक इच्छा है कि श्रीकृष्णको लेकर नित्य परिचित श्रीधाम वृन्दावनके निकुञ्ज-सदनमें विहार करूँ।

श्रीराधाकृष्ण सम्भोग लीला; यथा उज्ज्वलनीलमणि (२२२-२२४ गौण संभोग)—

ते तु संदर्शनं जल्पः स्पर्शनं वर्त्मरोधनम्।
रास वृन्दावनक्रीड़ा-यमुनाद्यम्बुकेलयः।।

नौखेलालीलया-चौर्यं-घट्टःकुञ्जादिलीनता।
मधुपानं वधूवेशधृतिः कपटसुप्तता।।
द्यूतक्रीडा पटाकृष्टिश्चुम्बाश्लेषौ नखार्पणम्।
बिम्बाधरसुधापानं संप्रयोगादयो मताः।।११।।

—चतुर्विध सम्भोगके अनुभाव—मिलनमें संदर्शन, जल्प अर्थात् परस्पर कथालाप, हास-परिहास, परस्पर-स्पर्श वाम्यताके कारण पथरोध, वृन्दावन-क्रीड़ा, यमुना व मानसगंगादिमें जलकेलि, नौका विलास, पुष्पचोरी, वंशीचोरी, दानलीला, कुञ्जादिमें पलायन या लुकाछिपी, मधुपान, वधूवेश धारण, कपट निद्रा, द्यूतक्रीड़ा, वस्त्राकर्षण, चुम्बन, आलिङ्गन, नखार्पण, बिम्बाधर सुधापान एवं संप्रयोग आदि लीलायें आस्वादन करते हैं।।११।।

संदर्शन, जल्प, स्पर्श, वर्त्मनिरोधन। रास, वृन्दावनक्रीड़ा, यमुना खेलन।।
नौका खेला, पुष्पचुरि, घट्ट संगोपन। मधुपान, वधूवेश, कपट स्वपन।।
द्यूतक्रीड़ा, वस्त्र टाना, सुरत व्यापार। बिम्बाधर सुधापान, सम्भोग प्रकार।।

श्रीराधाकृष्णकी शृंगार रचना; यथा स्तवावली (सेवा संकल्प प्रकाश स्तोत्र)—

स्फुरन्मुक्ता गुञ्जा मणि सुमनसां हाररचने
मुदेन्दोर्लेखा मे रचयतु तथा शिक्षणविधिम्।
यथा तैः संक्लृप्तैर्दयितसरसी मध्यसदने
स्फुटं राधाकृष्णावयमपि जनो भूषयति तौ।।१२।।

—इन्दुलेखा सखी हमारे ऊपर गुरु रूपमें कृपाकर मुझे मुक्ता, गुञ्जामणि तथा पुष्पोंके सुंदर-सुंदर हार बनानेकी कला प्रदान करें, जिससे मैं राधाकुण्डके मध्य रत्नजटित सिंहासनपर श्रीराधाकृष्णको बिठाकर उनका शृंगारकर उनके सुखके लिए उन्हें विभूषित कर सकूँ।।१२।।

मुक्ता-गुञ्जा-मणि-पुष्प हार विरचने। इन्दुलेखा-गुरु-कृपा लभिब यतने।।
राधाकुण्ड रत्नमय मन्दिरे दुँहारे। भूषित करिव आमि सुललित हारे।।

भजनरहस्यवृत्ति—प्रस्तुत श्लोकमें श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी मञ्जरी स्वरूपमें आविष्ट होकर निकुञ्ज-सेवा सदनमें श्रीराधामाधवकी शृंगारोचित सेवा-वासनाका मनोरम चित्र अंकित कर रहे हैं। विभिन्न प्रकारकी रसपुष्टिके लिए श्रीराधाजीकी विभिन्न स्वभावयुक्त सखियाँ हैं। ये सखियाँ अपने रसके अनुरूप विद्यामें सुदक्ष होती हैं, कभी-कभी अन्य-अन्य सखियोंसे भी वे

विभिन्न विषयोंकी शिक्षा ग्रहण करती हैं। स्वयं श्रीराधाजी समस्त पाल्यदासियोंको शिक्षा देकर अपनी सेवामें निपुण करती हैं।

आलोच्य श्लोकमें श्रील दासगोस्वामी श्रीराधाकी अष्ट सखियोंमें अन्यतम श्रीमती इन्दुलेखाके निकट सुशोभन मणिमुक्ता, गुञ्जाहार, पुष्प माल्यादिका रचना-कौशल तथा सुचारु शिल्प विद्या प्रदान करनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। श्रील रूप गोस्वामीजीके राधाकृष्णगणोद्देशदीपिकाके अनुसार इन्दुलेखाजी नागतन्त्रोक्त मंत्रोंमें तथा सामुद्रिक शास्त्रको जाननेवाली हैं। हारादि गूंथनेमें, चित्र अंकन, दन्तरंजन कार्य, समस्त रत्न परीक्षा, पट्ट डोरादि गूंथनेमें, सौभाग्य मन्त्रके लेखमें अत्यन्त सुनिपुणा हैं। श्रीराधाकृष्णके परस्पर अनुराग उत्पादन करनेमें कुशल हैं।

श्रीराधाकुण्ड स्थित मदनवाटिका विलासकुञ्जमें परस्पर रस-विलास क्रीड़ामें श्रीराधामाधवके मणिहार, मुक्तामाला, गुञ्जामाला तथा पुष्पमाला छिन्न-भिन्न तथा विमर्दित हो जाती हैं। प्राण-सखियाँ असंकोच रूपसे कुञ्जमें प्रविष्ट होकर श्रीराधा-माधवकी पुनः वेशरचना तथा श्रृंगारकी व्यवस्था करती हैं। इसी सेवाको सुचारु रूपसे सम्पादन करनेके लिए श्रील दासगोस्वामीजी इन समस्त कलाओंमें निपुण श्रीइन्दुलेखाके निकट विद्या-प्रदानकी प्रार्थना कर रहे हैं। माला-ग्रंथन कौशलसे ही पाल्यदासी मंजरीकी श्रीराधामाधवके प्रीतिविधानकी अभिलाषा पूर्ति होगी।

विप्रलम्भ रसमें गोपीगीत, भागवत दशम स्कन्ध ३१ अध्याय पठनीय हैं; भगवत्-कथा वितरणकारी ही महावदान्य होते हैं, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३१.९)—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।१३।।

—हे कृष्ण! आपकी अमृतमयी कथा विरहकातर जनोंके लिए जीवन-स्वरूप है। बड़े-बड़े अनुभूति सम्पन्न भक्त कविगण उसका गान करते हैं। आपकी मंगलमयी कथा श्रवणमात्रसे ही कल्मष अर्थात् प्रारब्ध एवं अप्रारब्धादि पाप समुदाय दूर हो जाते हैं तथा सर्वसम्पदस्वरूप प्रेमाभक्ति हृदयमें उदित होती है। इसलिए जो आपकी कथाका कीर्तन करते तथा वितरण करते हैं, उनके समान जगतमें और कोई दाता नहीं है।।१३।।

तव कथामृत कृष्ण! जीवनेर सुख। कविगण गाय याते याय पापदुःख।
श्रवण मङ्गल सदा सौन्दर्यपूरित। सुकृतजनेर मुखे निरन्तर गीत।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधाभाव सुवलित गौरसुन्दर रथयात्राके समय परिश्रान्त हो अपने चरणद्वय फैलाकर वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे हैं। उस समय वे मन–ही–मन व्रजदेवियोंके नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन कर रहे हैं। अत्यन्त दीनहीन वेश तथा भावमें महाराजा प्रतापरुद्र महाप्रभुजीके पद–संवाहन करते हुए मधुर–सुस्वरसे धीरे–धीरे इस श्लोकका कीर्तन करने लगे।

पूर्व श्लोकमें विरहातुरा गोपियाँ अपने रोग निवारणके लिए श्रीकृष्णका अधरामृत पान करनेकी प्रार्थना करती हैं। श्रीकृष्ण कहने लगे, 'हे गोपियों! मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। इस दुरारोग्यमें तुम किस प्रकार जीवन धारण किये हो।' गोपियोंने उत्तर दिया, 'श्यामसुन्दर! हम आपकी कथामृतके श्रवणमात्रसे ही जीवित हैं। यही कथामृत हमें मरने नहीं देता है। यदि आप पूछें कि मेरी कथा अमृत कैसा है? तो आपकी कथामें वह अमृत है, जो दुरारोग्य ग्रसित त्रितापसे संतप्तजनको भी शांति प्रदानकर दावानल, क्लेशका भी शमन करनेवाली है।'

मानो कृष्ण कहें, 'अरी गोपियों! मैं तुम्हें स्वर्गामृत लाकर दे दूँ, उसे पान कर लो।' गोपियाँ कहती हैं, 'प्यारे श्यामसुन्दर! स्वर्गामृतके पानसे शरीर तो स्वस्थ हो जायेगा किन्तु कामादिका वर्धन हो जायेगा जो प्रचुर अनर्थका कारण है। स्वर्गके इन्द्रादि देवताओंमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य सभी प्रचुर मात्रामें देखे जाते हैं।' यदि कृष्ण कहे, 'हे गोपियों! तुम मोक्षामृत ले लो।' तो गोपियाँ बोलीं, 'मोक्ष तो आपके देनेपर भी आपके भक्त ग्रहण नहीं करते; क्योंकि यह प्रेमाभक्तिके प्रतिकूल है। इसमें प्रेमका आदान–प्रदान कहाँ ध्रुव, प्रह्लाद, ब्रह्मा, नारद, चतुःसन, व्यास तथा शुकादि बड़े–बड़े भक्त तथा कविजन आपकी कथाकी प्रशंसा करते हैं। आपकी कथा मुमुक्षुजनोंके लिए भवरोगकी रामबाण औषधि है तथा विषयी लोगोंके कान और मनको आनन्द देने वाली है। जीवन्मुक्त महापुरुष इनका अतृप्त रूपसे गान करते हैं। आपकी कथा श्रवणसे समस्त पाप, अपराध दूर होकर प्राणीका मंगल होता है। जिस प्रकार शरद ऋतुके आगमनसे नदियों एवं सरोवरोंका जल अपने–आप स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आपकी कथा श्रवणसे जीवके मनोमल दूर हो जाते हैं।

आपकी कथा विरहतप्त भक्तको पुनः जीवन प्रदान करती है तथा सभी प्रकारकी शोभा सम्पत्ति देनेवाली है। जो कृष्ण कथाको जगतमें वितरण करते हैं वही सच्चे परोपकारी दाता हैं।

गोपियोंके प्रगाढ़ कृष्ण-प्रेमका परिचय, कृष्णके वनभ्रमणकी चिन्तामें महादुःखानुभव, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३१.११)—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति।।१४।।

—हे प्राणवल्लभ! हे कान्त! जब आप गोचारणके निमित्त व्रज भूमिसे वनभूमिकी ओर गमन करते हैं, तब आपके नलिनसुन्दर कोमल चरणकमलोंके तल कंकड़ एवं तृणके आघातसे व्यथित होते होंगे। इसे स्मरण करके हम लोगोंका चित्त एवं मन व्याकुलित हो रहा है।।१४।।

धेनु लये व्रज हते यवे जाओ वने। नलिनसुन्दर तव कमल चरणे।।
शिलाङ्कुरे कष्ट हवे मनेते विचारि। महादुःख पाई मोरा ओहे चित्तहारि।।

भजनरहस्यवृत्ति—पूर्व श्लोकमें व्रजसुन्दरियाँ पूर्वराग-स्मृतिजनित अपने प्राणकान्त श्रीकृष्णकी सप्रेम दृष्टि, मृदु हास्य, निर्जन मिलनमें नर्म परिहासादिको स्मरणकर व्यथित हो रही थीं तथा उनका चित्त अशान्त हो रहा था। वे श्रीकृष्णको लक्ष्यकर कहने लगीं—हे चित्त भ्रामक! हमें किस प्रकार शान्ति प्राप्त होगी? यह हम समझ नहीं पा रही हैं, क्या मिलनमें क्या विरहमें सभी अवस्थाओंमें हमारा चित्त व्याकुल रहता है। हे कृष्ण! पूर्वाह्नमें जब अगणित सखाओंके द्वारा परिवेष्टित हो असंख्य गायें लेकर आप गोचारणके लिए वनगमन करते हैं, उस समय सभी व्रजवासी आपके दर्शनोंसे वंचित होकर विरहके गहरे दुःख-समुद्रमें डूब जाते हैं। जब हम आपके सहस्र-दल पद्म-पत्रसे भी सुकोमल चरणकमलोंका ध्यान करती हैं, तब इस अथाह चिन्तामें डूब जाती हैं कि इन सुकुमार चरणोंमें कुश, काँटे, तृण आदि गढ़ते होंगे। आपके चरणोंकी व्यथा हम किस प्रकार सहन करें, आपके चरणोंको हम अभिन्न हृदय समझती हैं। एक तो आपकी विरह-वेदना, उसपर फिर रातुल चरणोंकी व्यथा, हम कैसे सहन करें? ये दोनों ही हमारे धैर्यके बाँधको तोड़े डाल रहे हैं। हे प्राणकान्त! आप अपने चरणोंका अपव्यवहार मत करो। हम लोगोंको याद है, हम लोगोंके साथ वनभ्रमण करते समय आपके चरणोंमें काँटे लग जानेपर आप हमसे निकलवाते थे। हम आपके चरणोंको अपने अङ्गोंपर रखकर धीरे-धीरे कांटा निकाल देती थी। परन्तु अब आपके कांटा लगता होगा तो कौन निकालता होगा?

'कान्त कलिलतां मनोगच्छति' हे कान्त! आपके सुकोमल चरणोंमें

काटे–कुश–कङ्कड़ अवश्य चुभते होंगे—सोचकर हमारे मनके साथ हमारा विवाद उपस्थित होता है। हम कहती हैं, काँटे आदि अवश्य ही चुभते होंगे। मन कहता है—क्या कृष्णकी आँखें नहीं हैं, वे देखकर चलते हैं, काटों–कुश–कंकड़ोंसे बचकर चलते हैं। इसपर हम कहती हैं—रे निष्ठुरमन! गायें निर्बोध हैं, वे काँटों–कुशों और कंकड़ोंसे भरे ऊँचे–नीचे स्थानोंमें सरपट भागती हैं, उनके खुर होते हैं, इन्हें काँटे आदि नहीं लगते। किन्तु श्यामसुन्दर जब इन सरपट भागती गायोंके पीछे दौड़ते होंगे तो क्या वे देखकर सावधानीसे दौड़ते होंगे? निश्चय ही उनके सुकुमार चरणोंमें काँटे चुभते ही होंगे। इसपर मन कहता है—'अरी अबोध ग्वालिनियों!तुम्हें पता नहीं कि वृन्दावनके कुश काँटे भी नर्म एवं कोमल होते हैं।' गोपियाँ कहती हैं, 'हे मन! हम तुम्हारी यह बात नहीं मानती, हम जो स्वयं कुश काँटे निकालती थीं।' गोपियों और उनके मनमें इस प्रकार विवाद चलता है। अन्तमें मन कहता है कि 'तुम ऐसी ही चिन्ता करती रहो मैं तो कृष्णके पास जा रहा हूँ।'

यदि कृष्ण कहें, 'हे गोपियों! तुम मेरी इतनी चिन्ता क्यों करती हो।' गोपियाँ उत्तर देती हैं, 'हे कान्त! आप अप्राकृत कामसे हमारे मनको चंचल एवं अशान्त बना देते हो इसलिए हमारी बुद्धि भी कुंठित हो रही है। हे प्राणनाथ! आप वनमें यत्र–तत्र न घूमकर शीघ्र लौट आओ और हमें दर्शन दो।

कुटिल कुन्तल शोभायुक्त श्रीमुख–अदर्शनसे गोपियोंको एक त्रुटिकाल भी शतयुगके समान प्रतीत होता है, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३१.१५)—

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशम्।।१५।।

—हे श्यामसुन्दर! जब आप दिनके समयमें गोचारणके लिए वन गमन करते हैं, तब आपके अदर्शनसे व्रजवासीजन एक क्षणको भी युगके समान बिताते हैं। जब आप सायंकालमें प्रत्यावर्तन करते हैं तथा घुंघराली अलकोंसे आवृत आपका परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना दुःखमय हो जाता है। क्या इन नेत्रोंपर पलकोंको बनाने वाला विधाता अनभिज्ञ या मूर्ख है।।१५।।

पूर्वान्हे कानने तुमि याओ गोचारणे। त्रुटि युगसम हय तव अदर्शने।।
कुटिल कुन्तल तव श्रीचन्द्रवदन। दर्शने निमेषदाता विधिर निन्दन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीकृष्ण विरह-संतप्ता गोपियोंको कृष्ण-वियोगमें क्षणार्द्धकाल भी युगके समान तथा मिलनमें एक युग भी क्षणके समान प्रतीत होता है। इस अवस्थाको महाभाव कहते हैं।

आलोच्य श्लोकमें गोपियाँ श्रीकृष्णको 'भवान्' शब्दके द्वारा सम्बोधित करती हैं। यद्यपि भवान् शब्दका प्रयोग सम्माननीय व्यक्तिके लिए होता है किन्तु यहाँ गोपियोंने भवान् शब्द सम्बोधन प्रणय-ईर्ष्यावशतः किया है।

अटति यद् भवान्—'हे कृष्ण! तुम अरसज्ञ हो, हमारे जैसे रसज्ञ उपस्थित होनेपर भी तुम वनमें विचरण कर रहे हो? विचारहीन गौओंके साथ घूमनेसे तुम्हारी बुद्धि भी गौवोंके समान जड़ हो गई है। यह संग दोषका प्रभाव है सारा दिन पशु चराते-चराते तुम्हारी बुद्धि भी पशुके समान हो गई है।' दिवा विरहिणी गोपियाँ कृष्णके सुन्दर मुखारविन्दका दर्शन करनेको कृष्णके व्रज प्रत्यावर्तनकी अति उत्कण्ठासे प्रतीक्षा करती हैं। यह सुनकर श्रीकृष्ण मानो कहने लगे, 'हे व्रजदेवियों! मेरे मुखका तो तुमलोग हर समय दर्शन करती हो, तब गोचारण प्रत्यावर्तनके समय मेरे मुखका क्या वैशिष्ट्य है?' यह सुनकर व्रजरमणियाँ कहने लगीं—

कुटिल कुन्तलं श्रीमुखञ्च—कुटिल कुन्तलोंसे सुशोभित आपका श्रीमुख है किन्तु ये विक्षिप्त केश आपके मुखारविन्दको आच्छादित किये रहते हैं तथा हमें दर्शन नहीं करने देते। प्रणयकोपके साथ व्रजदेवियाँ कहने लगीं, ये कुटिल केश मुखको आवृतकर केवल अपने आप मुख माधुरीका आस्वादन करते हैं, इससे हमारा विरह संतापित मन व्यथित हो जाता है।

उदीक्षतां—गोपियाँ कहती हैं, 'इसपर भी हमलोग ऊर्द्धमुख होकर विस्फारित नयनोंसे आपको देखनेका प्रयत्न करती हैं, किन्तु पूर्णरूपसे दर्शन नहीं होता', कारण—'दृशाम् पक्ष्मकृद जड़'—यह विधाता भी जड़ बुद्धि है, यह ब्रह्मा विवेकहीन है जिसने नेत्रयुगलमें पलकोंकी सृष्टि की है। इतने सुन्दर मुखारविन्दके दर्शनोंके लिए केवल दो ही नेत्र दिये और वह भी हर समय गिरने वाली पलकोंसे आवृत जो आपके दर्शनोंकी विरोधी हैं।

विरहमें क्षणकल्पत्व तथा मिलनमें कल्पक्षणत्व अधिरूढ़ महाभावके लक्षण हैं, प्रस्तुत श्लोकमें ये भाव ब्रजदेवियोंमें अति सुस्पष्ट रूपमें लक्षित हो रहे हैं।

कृष्णसुख-तात्पर्य गोपीभाववर्य, यथा श्रीमद्भागवत (१०.३१.१९)—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः।।१६।।

—हे प्रिय! आपके श्रीचरणकमलसे भी सुकुमार हैं। सम्मर्दनके समय आपके कोमल श्रीचरणोंको अपने श्रीअंगोंपर हम डरते–डरते धीरे–धीरे धारण करती हैं कि हमारे कठोर श्रीअंगोंसे आपके चरणोंमें व्यथा न हो जाये। उन्हीं कोमल चरणोंसे आप घोर वनमें गायोंके पीछे–पीछे भटक रहे हो। क्या तीखे कंकड़–पत्थर आदि आपके चरणोंमें नहीं चुभ रहे होंगे? यह सोचकर हम अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। हे प्राणनाथ! आप हमारे जीवन स्वरूप हो अतएव वन भ्रमणसे विरक्त हो; आप हमारे सामने आविर्भूत होइये।।१६।।

तोमार चरणाम्बुज ए कर्कश स्तने। सावधाने धरि सखे क्लेशभीत मने।।
से पदकमले वने कूर्पादिर दुःख। हय पाछे शंका करि नाहि पाई सुख।।

भजनरहस्यवृत्ति—इस श्लोकमें गोपियोंके अतिशय प्रगाढ़ प्रेमकी अभिव्यक्ति है। पूर्व–पूर्व श्लोकोंमें गोपियाँ अपनी विरह दशाका वर्णन करती हैं, किन्तु इस श्लोकमें गोपियोंके मुखसे कृष्ण सुखकी चिंता प्रकट हो रही है। कामके आवरणमें गोपियोंने अपने प्रेमको छुपानेका बहुत यत्न किया किन्तु प्रेमके तीव्र प्रवाहके कारण प्रेम गोपन न रह सका, वह प्रकट हो ही गया।

कृष्णका अनिष्ट न हो, इस चिन्तामें गोपियोंका हृदय दुःखित हो रहा है। यही महाभावका लक्षण है। अपने प्राण प्रियतमके विरहमें जो दुःख है और मिलनमें जो सुख है केवल गोपियाँ ही इसमें पारंगत हैं। 'चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून' श्लोकमें भी गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंकी व्यथामें व्याकुल हो अपने भावोंको व्यक्त किया। इसके लिए 'यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं' श्लोकको अवतारणा हुई। इस श्लोकमें भी श्रीकृष्णके चरणोंकी व्यथाकी पुनरुक्ति हुई है। पूर्व श्लोकमें दिवा विरह तथा इस श्लोकमें रात्रि विरहका वर्णन है। दिवाकालमें भ्रमण गोचारणके निमित्त है जो घास इत्यादिपर होता है तथा उसमें कंकड़, कंटक आदिसे किंचित् मात्र रक्षा हो सकती है। किन्तु रात्रिके अन्धकारमें यमुना पुलिनमें प्रस्तर खण्ड, कंटक, तृण अंकुशादि दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। यह सोचकर व्रजसुन्दरियोंका हृदय विगलित होने लगा तथा कातरोक्ति द्वारा वे अपने भावोंको व्यक्त कर रही हैं। श्रीवृन्दादेवी

अत्यन्त प्रयत्नके साथ श्रीकृष्णके लीलास्थल यमुना पुलिन आदिको सुरम्य सुशोभित करती हैं वहाँ किसी भी प्रकारके कांटे कुशादिकी सम्भावना नहीं है तथापि व्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्णचरणकी व्यथाकी आशंका करती हैं।

गोपियाँ प्रेमार्त्तिके साथ कहने लगीं—'यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं', 'हे जीवातु श्यामसुन्दर! सुन्दर विकसित कमलकी भाँति आपके रक्तिम चरण सुगन्ध माधुर्य गुणोंसे युक्त ताप निवारक हैं। आप अपने रातुल चरणोंसे वन-वनमें भ्रमण करते हुए कंकड़ तृणादिके आघातसे व्यथित हो जाते होंगे। यही सोचकर हम दुःखी हो जाती हैं।' श्रीकृष्ण यह सुनकर मानो कहने लगे—अरे! मुझे क्या व्यथा हो रही है इसकी तुम्हें क्या अनुभूति है? गोपियाँ कहती हैं—प्रिय कर्कशेषु स्तनेषु भीता शनैः दधीमहि—हे प्रिय! आपको हम अपनी देहसे अभिन्न स्वरूप समझती हैं। आप ही हमारे जीवनके जीवनस्वरूप हैं। आपके परम सुन्दर सुकोमल चरणकमल हम अपने कठोर श्रीअंगपर (स्तनोंपर) किस प्रकार धारण करती हैं, तनिक सुनो—'भीता शनैः' अत्यन्त धीरे-धीरे, आपको किसी प्रकारकी कोई व्यथा न हो। अतएव जब आप अपने चरणकमलोंको कष्ट देंगे तो हम दुःख सागरमें डूब जाती हैं। श्रीकृष्ण यह सुनकर बोले—'अरी मदन विह्वला गोपियों! तुमलोग मेरे चरणकमलोंको अपने कठिन श्रीअंगपर क्यों धारण करना चाहती हो?' गोपियाँ कहने लगीं—'हे प्रिय! आप हम लोगोंके प्रिय हैं, प्रियजनोंका सुखसम्वर्धन करना ही प्रियजनका एकान्त कर्तव्य है। हमारे वक्षोजोंपर चरण रखनेसे आपको परम सुख होता है तो आपकी सुख सम्भावनासे ही हम सुखी हो जाती हैं और आपके श्रीचरणोंको अपने अंगोंपर धारण करती हैं। किन्तु आपके चरणोंके सुकुमारताकी स्मृति होनेके साथ-ही-साथ हमारा हृदय विगलित होने लगता है।' कृष्ण कहते हैं, 'हे उन्मादिनी गोपियों! तुमलोग तपस्या द्वारा विधाताको सन्तुष्टकर अतिसुकोमल और नरम स्तन प्रदान करनेकी प्रार्थना करो।' गोपियोंने उत्तर दिया, 'इस तपस्याके लिए हम प्रस्तुत हैं, किन्तु विचारका विषय है कि हमारे वे अंग कोमल होनेपर भी आपको सुख नहीं होगा। कर्कश होनेपर आपको व्यथा होगी। हम क्या करें और क्या न करें यह स्थिर नहीं कर पाती हैं? जैसा आपका निर्दय व्यवहार है, वेसे ही अपने चरणोंके प्रति भी निर्दयताका व्यवहार करते हो। यह सुनकर मानो कृष्ण कहने लगे, हे गोपियों! क्या प्रलाप करती हो? गोपियाँ

कहने लगीं—'भवदायुषां नः धीः भ्रमति' 'हे श्यामसुन्दर! हम किसी प्रकार भी अपने चित्तको स्थिर नहीं कर पा रही हैं।' इसपर कृष्ण कहने लगे, 'तुम इतनी दुःखी क्यों हो रही हो? मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति कहाँ है? प्रीतिका लक्षण क्या है? प्रियके दुःखमें प्रिया प्राण धारण करनेमें असमर्थ होती है तो आप लोगोंने किस प्रकार अपने प्राण धारण कर रखे हैं?'

गोपियोंने कहा 'भवदायुषां' अर्थात् आप हमारी आयु-स्वरूप हो। इतने कष्ट सहन करनेपर भी आयु क्षय नहीं होती है। प्रणय कोपके साथ गोपियाँ पुनः कहने लगीं, 'हे श्यामसुन्दर! आप ही निष्ठुर नहीं, विधाता भी हमारे प्रति निष्ठुर हैं। दुःख भोगनेके लिए ही हमें इतनी दीर्घ आयु दी है।' (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर टीका)।

इस श्लोकमें महाभावयुक्ता व्रजदेवियोंकी तीव्र विरह-वेदना व्यक्त हो रही है।

सम्भोग भावोच्छ्वास, यथा कृष्णकर्णामृत (१२)—

निखिलभुवनलक्ष्मी नित्यलीलास्पदाभ्यां
कमलविपिनवीथीगर्वासर्वंकुषाभ्याम् ।
प्रणमदभयदान प्रौढ़ीगाढ़ादृताभ्यां
किमपि वहतु चेतः कृष्णपादाम्बुजाभ्याम्।।१७।।

—श्रीकृष्णके जो पादपद्म निखिल भुवन-लक्ष्मीके नित्य विलासास्पद हैं, जो कमलोंकी राशि-राशि शोभाके गर्वको खर्व करने वाले हैं, तथा जो प्रणत जनोंको आश्रय प्रदान करनेमें प्रगाढ़ शक्तिशाली होनेसे सर्वत्र समादृत हैं, उन श्रीकृष्ण पादपद्मोंमें मेरा चित्त किसी अनिर्वचनीय आनन्दको प्राप्त करे।।१७।।

निखिल भुवन लक्ष्मी राधिका सुन्दरी। तार नित्य लीलास्पद परम माधुरी।।
कमल विपिन गर्व क्षय याहे हय। प्रणत अभयदाने प्रौढ़ शक्तिमय।।
हेन कृष्णपादपद्म, कृष्ण! मम मन। अपूर्व उत्सव रति करुक वहन।।

भजनरहस्यवृत्ति—रासलीलामें अंतर्धान होनेके पश्चात् श्रीकृष्ण पुनः आविर्भूत हुए, तब किसी विरह संतप्ता गोपीने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंपर धारण कर लिया। श्रीलीलाशुक इसका अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि श्रीराधाने श्रीकृष्णके पदकमलोंको अपने हृदयपर धारण कर रखा है। श्रीराधाके साथ श्रीकृष्ण निभृत निकुञ्जमें विलास कर रहे हैं। श्रीराधाके

अङ्गोंपर रखते ही उनके आरक्तिम चरणद्वय और भी रक्तिम हो जाते हैं। उनके वही कुंकुमाक्त चरण हमारे हृदयमें प्रस्फुटित हों। उनके पदकमलोंका वैशिष्ट्य वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे कमलोंके गर्वको भी पराजित करनेवाले हैं, कैसे? जड़ीय कमल पंचेन्द्रियोंको शीतलता, सौरम्य, सुकुमारता और सौन्दर्य प्रदान करता है, उसके मकरन्दका पान करके भ्रमर भी मत्त हो जाते हैं। परन्तु श्रीकृष्णके चरणोंकी मादकताका अलग ही वैशिष्ट्य है। प्राकृत अप्राकृत समस्त प्राणीमात्रके ये शोभा–सम्पत्ति–स्वरूप हैं। वे निखिल भुवन–लक्ष्मीके नित्य लीलाके आस्पद हैं। ये लक्ष्मियाँ इन चरणकमलोंपर अपना सर्वस्व समर्पित करती हैं। श्रीकृष्ण अपने चरण–स्पर्शसे इनकी कन्दर्प–आर्त्तिको दूर करते हैं। व्रजललनाएँ प्रणयपूर्वक इन चरणकमलोंको अपने हृदयपर धारण करती हैं तथा सबप्रकारसे सेवा करती हैं।

पुनः श्रीकृष्णकर्णामृत (१८) में कहते हैं—

तरुणारुण–करुणामय–विपुलायतनयनं
कमलाकुच–कलसीभर–विपुलीकृत–पुलकम्।
मुरलीरव–तरलीकृत–मुनिमानस–नलिनं
मम खेलतु मदचेतसि मधुराधरममृतम्।।१८।।

—जिनके नेत्रयुगल तरुण, अरुणवर्ण तथा करुणामय हैं, अति विशाल विस्तार युक्त हैं, कमला–कुच–कलसोंके स्पर्शसे जिनके अङ्ग पुलकित हो रहे हैं, जिनकी मुरलीध्वनिको सुनकर मुनियोंके मन भी नलिनियोंकी भाँति चंचल हो जाते हैं, उनका मधुर अधरामृत मेरे मदमत्त चित्तमें क्रीड़ा–विहार करे।।१८।।

तरुण अरुण जिनि, करुणास्वरूप मणि, विपुल नयन शोभे याँर।
राधाकुचद्वय भर, प्रेमे देह गर गर, विपुल पुलक चमत्कार।।
मधुर मुरली सने, मुनि मन पद्मवने, तरलित करे सर्वक्षण।
कृष्णेर मधुराधर, परामृत शशधर, चित्ते मोर करुक नर्त्तन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधाकृष्ण निभृत निकुञ्जमें विराजित हैं। नूपुर या अन्य कोई ध्वनि बाहर नहीं आ रही है। सुरतलीलाका अवसान जान सखियाँ कुञ्ज गवाक्षसे लीलारहस्य अवलोकन कर रही हैं। कृष्ण शय्यापर उठकर बैठे हुए हैं। श्रीराधाके श्रमको दूर करनेके लिए उनके अङ्ग–मार्जन तथा पटुकेसे बीजन कर पुनः मदनोद्दीपनकी चेष्टा कर रहे हैं। साक्षात् अमृतस्वरूप

श्रीकृष्ण हमारी सखी राधाको सौभाग्यानंदमें उन्मत्त करते हैं। श्रीराधाकी अधर सुधाका पानकर श्रीकृष्णके स्वाभाविक तरुण अरुण नयन और भी अधिक लाल हो रहे हैं। मदन–मदसे वे अधीर हो रहे हैं। श्रीराधाके श्रमबिन्दु अपनोदनार्थ वे बीजनादि करते हैं क्योंकि वे करुणामय हैं। श्रीराधाके रतिश्रमको देखकर कृष्णके हृदयमें करुणाका सागर उमड़ पड़ता है तथा उनकी क्लान्तिको दूर करनेके लिए नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं।

श्रीराधाको अपनी गोदमें बिठाकर उनके अंग स्पर्श करनेसे श्रीराधाकृष्ण दोनों ही अष्ट सात्त्विक भावरूपी समुद्रमें डूबने लगते हैं। रतिश्रम दूर करनेकी चेष्टाओंसे केलि लालसाकी वृद्धि होने लगती है। श्रीकृष्णके मुरली वादनसे मुनियोंका कठोर मन भी चंचल हो जाता है। जब श्रीराधा मानमें होती हैं, तब कृष्ण उन्हें नाना प्रकारसे मनाते हैं, मान दूर न होनेपर हा हा करते हुए चरणोंमें गिरते हैं, किन्तु मान दूर नहीं होता है। इसी गहन मानको मुरलीकी एक तान दूर कर देती है। वह मुरलीकी तान राधाके कर्णमें प्रवेश कर उन्हें उन्मादिनी बना देती है। ऐसी कृष्णकी मुरली जययुक्त हो।

लीलाके भजन करनेवालोंकी सिद्ध देहगत मानस–सेवा (उ. नी. ९७–९९ सखी प्र.)—

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्त्तिस्तयोरासक्तिकारिता।
अभिसारद्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम्।।
नर्म्माश्‍वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम्।
छिद्रसम्वृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवञ्चना।।
शिक्षासङ्गमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः।
तयोर्द्वयोरूपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा।
नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखीक्रियाः।।९९।।

—नायकके प्रति नायिकाके तथा नायिकाके प्रति नायकके प्रेम तथा गुणोंकी प्रशंसा करना, दोनोंको एक दूसरेके प्रति आसक्त कराना, दोनोंको अभिसार कराना, श्रीकृष्णको सखी समर्पण करना, परिहास करना, आश्‍वासन देना, वेशभूषा रचना करना तथा दोनोंके हृदयके मर्मको छिपाये रखनेकी पटुता, नायिकाके दोष छिपाना, पति आदिकी वंचना, हितोपदेश, यथासमय दोनोंका मिलन कराना, चामरादि द्वारा सेवा, दोनोंके दोषोंको प्रकटकर दोनोंको

शिक्षा देना, एक दूसरेका संदेश पहुँचाना तथा नायिकाकी प्राणरक्षामें सचेष्ट रहना आदि—ये सोलह क्रियाएं सखियोंकी हैं।।१९।।

राधाकृष्ण गुणोत्कीर्त्ति, आसक्ति वर्धन। अभिसारद्वय, कृष्णे राधा समर्पण।।
नर्माश्वास, वेशकार्य, हृदय सन्धान। छिद्रगुप्ति, गृहपतिगणेर वञ्चन।।
शिक्षादान, जल आर व्यजन सेवन। उभयमिलन, सन्देशादि आनयन।।
नायिकार प्राणरक्षाय प्रयत्न प्रधान। सखी सेवा जानि यथा करह विधान।।

यथा स्तवावली-व्रजविलासस्तव ३८—

ताम्बूलार्पण – पादमर्द्दन – पयोदानाभिसारादिभि
र्वृन्दारण्यमहेश्वरीं प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः।
प्राणप्रेष्ठ सखीकुलादपि किलासङ्कोचिता भूमिकाः
केलीभूमिषु रूपमञ्जरीमुखास्ता दासिकाः संश्रये।।२०।।

—जो ताम्बूल प्रदान करना, पैर दबाना, जल देना और अभिसार कराना आदि कार्योंद्वारा प्रेमपूर्वक श्रीमती राधिकाको नित्य सन्तुष्ट रखती हैं, उन प्राणप्रेष्ठ सखियोंकी अपेक्षा सेवाकार्यमें असंकोच भावको प्राप्त हुई श्रीमती राधिकाजीकी रूपमञ्जरी प्रमुख सेविकाओंका मैं आश्रय ग्रहण करती हूँ।।२०।।

ताम्बूल अर्पण, दुहार चरण मर्दन। पयोदान, अभिसार, दासी सेवा धन।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीराधाकी सखियाँ पाँच प्रकारकी होती हैं, इनमें प्राण-सखियों एवं नित्य-सखियोंकी सेवा सर्वश्रेष्ठ होती है। निभृत निकुञ्ज विहारमें जब श्रीराधाकृष्ण आनन्दविह्वल हो विवश हो जाते हैं, तब मञ्जरियोंका ही वहाँ असंकोच रूपमें प्रवेश होता है तथा वे समस्त सेवा सम्पादन करती हैं। यद्यपि वे ललिता विशाखादिके आदेशानुसार ये सेवा करती हैं, किन्तु जब युगलकिशोर निभृत निकुञ्जमें होते हैं तब ललिता विशाखादि सखियोंका प्रवेश भी रूप, रति मञ्जरीके माध्यमसे ही होता है। पद-मर्यादामें प्राणप्रेष्ठ-सखियाँ श्रेष्ठ हैं, किन्तु सेवा-सौभाग्यमें मञ्जरीवृन्दकी अधिक श्रेष्ठता है। जहाँ प्राणप्रेष्ठ-सखियोंका प्रवेश नहीं, वहाँ मञ्जरियाँ ही कुंजमें युगलकी असंकोच-सेवा सम्पन्न कराती हैं। श्रीराधा मिलनके आकांक्षी श्रीकृष्णको भी मञ्जरियोंसे अनुनय-विनय करना पड़ता है, तब उन्हें श्रीराधासे मिलनका सुयोग प्राप्त होता है।

तत्र सेवाभिमानः, यथा गोस्वामी वाक्य (श्रील स्वरूपदामोदर)—

नव्यं दिव्यं काव्यं स्वकृतमतुलं नाटककुलं
प्रहेलीगूढ़ार्थाः सखिरुचिरवीणाध्वनि गतिः।
कदा स्नेहोल्लासैर्ललितललिताप्रेरण बलात्
सलज्जंगान्धर्वा सरसमसकृच्छिक्षयति माम्।।२१।।

—अहो! मेरा कब ऐसा सौभाग्य होगा कि श्रीमती ललिता देवीजीके अनुरोधसे श्रीमती राधिकाजी स्नेह और उल्लास पूर्वक, किन्तु कुछ लज्जाके अनुसार मुझे एकान्तमें स्वरचित नाटक, नये-नये काव्य, गूढ़ार्थयुक्त पहेली तथा मूर्च्छनादिसे युक्त वीणावादनकी शिक्षा देंगी।।२१।।

स्वकृत नाटक आर नव्य काव्य तति। गूढ़ार्थ प्रहेली दिव्य वीणा रव गति।।
ललितार अनुरोधे स्नेहोल्लासे कबे। सलज्जगान्धर्वा मोरे निभृते सिखाइबे।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीगौरसुन्दरने श्रील दासगोस्वामीको श्रील स्वरूप दामोदरको समर्पित किया था। श्रीस्वरूप दामोदर ब्रजलीलाकी ललिता सखी हैं तथा उनके आनुगत्यमें ही श्रीराधाजीकी पाल्य दासियाँ युगल सेवाकी शिक्षा प्राप्त करती हैं तथा सेवा-सौभाग्य प्राप्त करती हैं। श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधा भावमें विभावित हैं, श्रीदास गोस्वामीजी उनकी सेवाकी अभिलाषा हृदयमें धारणकर श्रीरूप गोस्वामीपादकी चरणरजमें अपनी अभीष्ट प्राप्तिकी विज्ञप्ति कर रहे हैं। सेवोपयोगी नाना प्रकारकी शिल्पकला शिक्षामें निपुणता प्राप्त करना। इसी शिक्षाके लिए ललिता सखी श्रीरतिमञ्जरीका हस्त धारणकर श्रीराधाजीकी चरणसेवामें संलग्नकर निवेदन करती हैं—'हे राधे! यह अनुपम लावण्यवती सुन्दरी आपकी चरणसेवाके लिए परम योग्य है। यह श्रवणकर राधाजी ईषत् लज्जित होकर सुमधुर सम्भाषणके द्वारा अपने हृदयसे आलिंगनकर करुणावारिसे रतिमञ्जरीको सिक्त करने लगीं। परम मनोज्ञा ललिता सखीकी प्रेरणासे गान्धर्विका श्रीराधा अत्यन्त स्नेहसे आप्लावित हृदयसे काव्य, वीणावाद्य वादन, नाटक, पहेली आदिकी शिक्षा प्रदान करती हैं। श्रीराधा ललिता सखीके पूर्णतया वशीभूत हैं। श्रीराधा रतिमञ्जरीको अभिनव अप्राकृत काव्यकी शिक्षा दे रही हैं जिसका एकमात्र स्थान वृन्दावन है। इसके नायक ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर तथा नायिकाएँ महाभाव मूर्ति ब्रजदेवियाँ हैं। इस अप्राकृत रसधारामें कल्लोल धाराप्रवाह अबाध गतिसे नित्य नवायमान रूपमें तरंगायित होती है। काव्यके साथ ही श्रीराधा नाट्यकला अभिनय

तथा गूढ़ार्थ पहेलीकी भी शिक्षा देती हैं। इन शिक्षाओंका उपयोग पाल्यदासियाँ श्रीराधा–मुकुन्दकी शृंगाररसकी उद्दीपनाके लिए करती हैं। सखियाँ श्रीकृष्णसे कहती हैं, 'हे विदग्धवार! कौन बाल होकर भी वृद्ध है? बद्ध होकर भी मोक्ष प्राप्त होता है? शुद्ध होकर भी तमो स्थानीय होता है? इनका नाम क्या है? श्रीकृष्ण बड़े असमञ्जसमें पड़कर सोचने लगे। कुछ देर तक सोच–विचारकर जोरसे हँसते हुए बोले—श्रीकिशोरीजीके केश या बाल। यह सुनते ही सखियाँ भी खिलखिलाकर हँसने लगी। इस प्रकारकी प्रहेलिकाओंसे सखियाँ रास विलास, वनविहार आदिके समय श्रीकृष्णको आनन्दित करती हैं। इस प्रकार कृष्णको आन्नद प्रदानके लिए ही निखिल कला विदग्धा श्रीराधा अपनी सखियोंको प्रेरित करती हैं। यही नहीं श्रीराधाजीसे मनोहर वीणावादनकी शिक्षा प्राप्तकर श्यामसुन्दरके हृदयतन्त्रीको झंकृत करती हैं।

साधकोंके लिए आचार्यगण सिद्धान्त देते हैं—प्रेम रसास्वादनमयी सेवा, आसक्ति तथा उत्कण्ठा रसिक भक्तोंके संगसे प्राप्त होती है। नरोत्तमदास ठाकुर प्रेमभक्तिचन्द्रिकामें कहते हैं—

रसिक भक्त संगे, रहिब पिरीती रंगे, व्रजपुरे वसति करिया।

रसिक भक्तोंका संग एवं उनकी सेवा, ब्रजभूमिमें आश्रयपूर्वक वास, अभीष्ट सौभाग्यकी प्राप्ति कराती है।

कलकण्ठ तिरस्करी विशाखा सखीको शिक्षागुरुके रूपमें वरण—

कुहूकण्ठी कण्ठादपि कमलकण्ठी मयि पुन–
र्विशाखा गानस्यापि च रूचिरशिक्षां प्रणयतु।
यथाहं तेनैतद् युवयुगलमुल्लास्य सगणा–
ल्लभे रासे तस्मान्मणिपदकहारानिह मुहुः।।२२।।

—कोकिल कण्ठसे भी मधुर कण्ठावली विशाखाजी मुझे गायनकी मनोज्ञ–शिक्षा प्रदान करें। उस गायनके द्वारा रासमें नवयुगल श्रीराधाकृष्णको उल्लसित कर उनसे पुनः पुनः मणिपदक हारादिको उपहार स्वरूपमें प्राप्त करूंगी।।२२।।

कुहूकण्ठ–तिरस्करी विशाखा सुन्दरी। गान विद्या शिखाइबे मोरे कृपा करि।।
सेई गाने राधाकृष्णे रासे उल्लसिव। मणि पदकादि पारितोषिक पाइब।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रस्तुत श्लोकमें श्रीविशाखा देवीसे संगीत शिक्षा प्रदान करनेके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। इस प्रकार

रतिमञ्जरी सर्वलीला मुकुटमणि रासलीलामें रस–वैदग्धी सुवासित विविध रसयुक्त संगीत परिवेशणकर, युगलकिशोरको प्रसन्नकर नानाविध उपहार प्राप्तकर, अपनेको धन्य मानती हैं। श्रीश्यामसुन्दरकी अभिलाषा जानकर, स्वामिनीजीके आदेशसे श्रीरतिमञ्जरी मधुर कमनीय कण्ठके द्वारा अपूर्व मधुर संगीत प्रस्तुत करती हैं। इस अपूर्व गानकी शिक्षा उन्होंने श्रीविशाखाजीसे पाई है, जिनकी अति कमनीय सुमधुर कण्ठ कोकिलकी मधुर कुहु–कुहू ध्वनिको पराभूत करनेवाली है। रास–रस–कदम्बमें रतिमञ्जरी श्रीविशाखाजीके साथ एकतानमें अत्यन्त मादक मधुर स्वरसे गान करती हैं, तब श्रीराधामाधव आनन्दित होकर अपने अमूल्य हार अलंकारादि उपहारस्वरूप प्रदान करते हैं। इस पारितोषिक प्राप्तिसे गुरु विशाखादेवीका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो जाता है, वे अपना परिश्रम सार्थक जानककर रतिमञ्जरिकी भूरि–भूरि प्रशंसा करती हैं।

श्रीराधाजीकी अभिन्न प्रणया विशाखाजी उनकी सेवामें दत्तचित्त होकर रहती हैं, वे अत्यन्त वाक्पटु हैं तथा अपनी वाक्पटुतासे श्रीकृष्णको भी पराजित कर देती हैं। कृष्ण भी उनके स्मितहास्यसे प्रसन्न होते हैं। श्रीदास गोस्वामीजी अपने स्वरूपमें स्थित हो रतिमञ्जरि रूपमें युगल–सेवा–सुख साधनके लिए रस–वैदग्धीपूर्ण, कर्पूरवासित परिहासमय वाणीकी शिक्षा पानेके लिए उत्कण्ठित होते हैं तथा इस परम सुस्वादु मादक मधुर रस–सम्बन्धीय वाक्य परिपाटी शिक्षाके लिए विशाखाजीको गुरु रूपमें वरण करते हैं।

रासलीलानन्द, व्रजसुन्दरियोंके साथ कृष्णका नित्य रास–विलास, यथा श्रीगीतगोविन्द (१, १२)—

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर–
श्रेणी श्यामल कोमलैरूपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृंङ्गारः सखि मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति।।२३।।

—हे सखि! जो समस्त गोपियोंकी प्रीति एवं आनन्द विधान करते हैं, जो श्यामवर्ण सुकुमार, नीलकमल सदृश अङ्गकान्तिवाले श्याम अपने गुणों द्वारा गोपियोंके हृदयमें सुप्त कन्दर्पोत्सवका उदय कराते हैं। गोपियोंके अङ्ग प्रत्यंगसे आलिङ्गित वे श्रीकृष्ण वसन्त कालमें मूर्तिमान शृंगारकी भाँति क्रीड़ा कर रहे हैं।।२३।।

मधु ऋतु मधुकर पाँति। मधुर कुसुम मधु माति।।
मधुर वृन्दावन माझ। मधुर मधुर रसराज।।
मधुर नटिनीगण सङ्ग। मधुर मधुर रसरङ्ग।।
सुमधुर यन्त्र रसाल। मधुर मधुर करताल।।
मधुर नटन गति भङ्ग। मधुर नटनी नट रङ्ग।।
मधुर मधुर रस गान। मधुर विद्यापति भाण।।

भजनरहस्यवृत्ति—रसविदग्ध चूड़ामणि धीरललित नायक व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र मूर्तिमान कामदेवके रूपमें प्रकटित होकर व्रजदेवियोंके साथ शृंगाररसका आस्वादन करते हैं। कोई सखी समीप ही कुंज वनमें श्रीकृष्णके गोपबालाओंके साथ रास-विलासमें मग्न होनेकी जानकारी देती है और कहती है, 'देखो सखि! देखो! कृष्णकी ओर देखो, वे व्रजवनिताओंके आलिङ्गनपाशमें बद्ध होकर मनोहर विलासके लिए कैसे लालसान्वित हो रहे हैं।' कोई गोपरमणी अनुरागके साथ श्रीकृष्णका अलिङ्गनकर मधुर-मधुर स्वरसे गान कर रही है। कोई अपने उन्नत एवं कठिन स्तनोंके द्वारा श्रीकृष्णको निपीड़ित कर रही है। स्थूल नितम्ब-शालिनी कोई गोपरमणी श्रीकृष्णके कर्णमें कुछ कहनेके छलसे चुम्बन द्वारा अपना मनोरथ सफल कर प्रेममें प्रफुल्लित हो रही है। श्रीकृष्ण भी गोपाङ्गनाओंका आलिंगन, चुम्बनकर उनकी रतिका वर्द्धन कर रहे हैं। सहास्य कटाक्षपात कर गोपरमणियोंको प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं। श्रीहरि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यके विचारसे शून्य हो वसन्त ऋतुमें गोप-रमणियोंके साथ मनोज्ञ लीलाओंका विस्तार कर रहे हैं। अपने नीलकमलसदृश श्यामल, सुकोमल अङ्गोंद्वारा व्रजसुन्दरियोंको स्व-वाञ्छित रसदान कर, मदन-महोत्सवका विधान कर रहे हैं। स्वच्छन्दरूपसे व्रजरमणियोंका आलिङ्गन, स्पर्शादिकर शृंगाररसको मूर्तिमान रूपमें प्रकटित कर रहे हैं।

आलोच्य श्लोकमें 'इन्दीवर' शब्दके द्वारा शीतलत्व, 'श्रेणी' शब्दके द्वारा नव-नवायमान रसास्वादन, 'श्यामल' शब्दके द्वारा सौन्दर्य तथा 'कोमल' शब्द द्वारा सुकुमारत्व सूचित हुआ है।

विरह हेतु श्रीकृष्ण दर्शनसुख अथवा मिलनमें गोपियोंकी दशाका वर्णन (जगन्नाथवल्लभ नाटक ३.११२)—

यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ लोचनपथं
तदास्माकं चेतो मदनहतकेनाहृतमभुत्।

पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीं
विधास्यामस्तस्मिन्नखिलघटिका रत्नखचिताः।।२४।।

—मधुरिपु श्रीकृष्ण जबसे दैववश मेरे नयनगोचर हुए हैं, तबसे इस दुष्ट मदनने मेरे चित्तको हरण कर लिया है। फिर भी पुनः जिस मुहूर्तमें वे मेरे दृष्टिगोचर होंगे, तब मैं उस समय उन समस्त घड़ियोंको रत्नोंसे सुशोभित कर दूँगी।।२४।।

जे काले वा स्वपने, देखिनु वंशीवदने, सेइकाले आइला दुइ वैरी।
आनन्द आर मदन, हरि निल मोर मन, देखिते ना पाइनु नेत्र भरि।।
पुन यदि कोन क्षण, कराय कृष्ण दरशन, तबे सेइ घटी क्षण पल।
दिया माल्य चन्दन, नाना रत्न आभरण, अलंकृत करिमु सकल।।

भजनरहस्यवृत्ति—श्रीरायरामानन्दने स्वकृत जगन्नाथवल्लभ नाटकमें, श्रीराधाके प्रगाढ़ कृष्णानुरागका वर्णन प्रस्तुत श्लोकमें किया है। श्रीराधा अपनी अंतरंग सखी मदनिकाके निकट अपने हृदयस्थित कृष्णानुरागकी अभिव्यक्ति कर रही हैं। मदनिका सान्त्वना देती हुई कहती है, 'आप क्यों इस प्रकार उदास हो रही हैं? देखो, नव-विकसित केतकी पुष्पके मनोहर सौरभ द्वारा भ्रमर दूरसे ही आकृष्ट होता है, किन्तु जब पुष्पके ऊपर घूमता हुआ उस पुष्प-रजमें रस नहीं पाता है तब वह भ्रमर क्या उस पुष्पका त्याग नहीं करता? उसी प्रकार आप श्रीकृष्णके मुखकमलको देखकर आकृष्ट हुईं, किन्तु उनमें प्रेम नहीं है अथवा प्रेम रहनेपर भी वे आपके प्रेमका गुणांकन नहीं करते हैं तो उनका त्याग ही उचित है। श्रीराधा धैर्यावलम्बनपूर्वक कहने लगीं, 'अच्छा तो अब उन्हें छोड़ दिया।' ऐसा कहकर भयभीत चित्तसे कम्पित हो कम्पायमान स्वरसे कहने लगीं, 'हे सखि! तुम्हारे कहनेके अनुसार मैंने उनका त्याग तो कर दिया, किन्तु उनके रूप, गुणकी स्मृतिको त्यागनेमें असमर्थ हूँ। जितना ही मैं त्यागनेकी चेष्टा करती हूँ, उतनी ही उनकी स्मृति मेरे मानस-पटलपर उदित हो रही है। उनका मृदु-मंद हास्ययुक्त मुखकमल, पके बिम्बफलसदृश आरक्तिम अधर, जिनपर वंशी विराजमान है, उस मनोहर दर्शनके समय मदन एवं आनन्द नामक दो शत्रु आकर मेरे दर्शनमें बाधा उपस्थित करते हैं।

इतना कहकर बाह्यज्ञान शून्य होकर श्रीराधा मूर्च्छित हो गईं। उनकी यह अवस्था श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा उद्रेकके कारण—हृदयमें एक

अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न होनेके कारण हुई। श्रीकृष्णकी निजाङ्ग द्वारा सेवाकी बलवती लालसा उन्हें विह्वल कर देती है।

श्रीराधा पुनः मदनिकासे कहने लगीं, 'हे सखि! अब यदि कृष्ण मुझे दर्शन दें तो, इन दोनों बैरी मदन और आनन्दको मैं चित्तमें नहीं आने दूँगी तथा जी भरकर कृष्णका दर्शन करूँगी, अपने प्रियतमका दर्शन देनेवाले उन क्षणोंको माल्य, चंदन तथा नाना प्रकारके रत्न अलंकारों द्वारा विभूषित करूँगी।'

रात्रि लीला, यथा गोविन्दलीलामृत (२२।१)—

तावुत्कौ लब्धसङ्गौ बहुपरिचरणैर्वृन्दयाराध्यमानौ,
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ विपिन–विहरणैर्गानरासादि लास्यैः
नानालीला–नितान्तौ प्रणय–सहचरीवृन्द–संसेव्यमानौ,
राधाकृष्णौ निशायां सुकुसुमशयने प्राप्तनिद्रौ स्मरामि।।२५।।

—निशाकालमें दोनों परस्पर मिलनेके लिए उत्सुक होकर मिलित हुए हैं। प्रेष्ठ गोपियों द्वारा बहु परिचर्या-सेवा द्वारा आराधित हैं, उन सखियोंके साथ वन-विहार, गान, रासादि नृत्य द्वारा नाना लीला करनेके उपरान्त क्लान्त हो गये हैं। प्रणयि सहचरी वृन्दा द्वारा व्यजन, कर्पूर, ताम्बूल, पाद सम्वाहन आदि सेवा द्वारा सेवित होकर निशाकालमें कुसुमशय्यापर शयन करते हैं, मैं उन राधाकृष्णका स्मरण करता हूँ।।२५।।

वृन्दा परिचर्या पाञा, प्रेष्ठालिगणेरे लञा, राधा कृष्ण रासादिक-लीला।
गीतलास्य कैल कत, सेवा कैल सखी यत, कुसुम शय्याय दूँहे शुइला।
निशाभागे निद्रा गेल, सबे आनन्दित हैल, सखीगण परानन्दे भासे।
ए सुख शयन स्मरि, भज मन राधा हरि, सेइ लीला प्रवेशेर आशे।।

भजनरहस्यवृत्ति—धनिष्ठा अथवा कुन्दलता प्रदत्त कृष्ण-अधरामृत मिश्रित विविध व्यजनादि लेकर सखियाँ नन्दभवनसे जावटग्राम लौटकर आती हैं, इन व्यंजनोंकी सौरभसे स्वामिनीजी तथा अन्य सखियोंके नेत्र एवं घ्राणेन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं। सखियाँ अभिसार स्थलका संकेत भी लाई हैं। रात्रिमें सबके शयनके पश्चात् चन्द्रमाकी कलानुसार वस्त्र आभूषणोंसे श्रीस्वामिनीजीका श्रृंगारकर सखियाँ उन्हें अभिसारके लिए ले जाती हैं। संकेत स्थलपर अपने प्राण प्रियतमसे स्वामिनीजीका मिलन होता है। तत्पश्चात् हास-परिहास, पासा खेलना, रासलीला आदिका वे रसास्वादन करते हैं।

इसके पश्चात् दोनों युवा–युगल सखियों द्वारा प्रस्तुत पुष्पशय्यापर शयन करते हैं। निशाके शेष भागमें दोनों जागते हैं तथा सखियाँ अति आनन्दित होती हैं।

साधनेर सह अष्टकाल लीला धन। चिन्तिते चिन्तिते क्रमे सिद्ध भावापन।।
स्वरूप सिद्धिते व्रजे प्रकटावस्थान। गुणमय गोपीदेहे लीलार वितान।।
कृष्ण कृपा बले गुणमय वपु त्यजि। अप्रकट व्रजे गोपी सालोक्यादि भजि।।
नित्यकाल शुद्ध देहे राधाकृष्ण सेवा। स्थूल लिङ्ग सङ्ग बोध आर पाय केवा।।
हरे कृष्ण नाम गाने नित्य मुक्त भावे। पूर्ण प्रेमानन्द लाभ अनायासे पावे।।
देख भाई साधने सिद्धिते एकई भाव। कभु नाहि छाड़े नाम स्वकीय प्रभाव।।
अतएव नाम गाओ नाम कर सार। आर कोन साधनेर ना कर विचार।।

श्रीराधाकृष्ण युगलकी रात्रि लीलाको रागानुगा भक्त विशेषकर रूपानुगभक्त स्मरण करते हैं तथा हरिनाम करते हुए दैन्य–आर्त्तिके साथ प्रार्थना करते हैं, कि कब इस लीलामें हमें सेवाकी प्राप्ति होगी।

इन लीलाओंका स्मरण साधक रसिक भक्तोंके संगमें करता है। क्रमशः वह सिद्धि लाभ करता है। स्वरूप सिद्धिके पश्चात् योगमाया द्वारा प्रकट लीलामें गोपी गृहमें जन्म मिलता है। वहाँ सिद्ध परिकरोंके आनुगत्यमें लीला सेवामें परिपक्व होता है। गुणमय देह त्यागकर अप्रकट लीलामें गोपी–देह प्राप्तकर नित्य वृन्दावनमें पहुँचता है। वहाँ शुद्ध देहसे नित्यकाल राधाकृष्णकी सेवामें संलग्न हो जाता है। साधन कालमें स्थूल, सूक्ष्म शरीर सेवा प्राप्तिमें बाधक होते हैं। निरन्तर हरे कृष्ण नाम–कीर्त्तनसे साधकका शुद्ध स्वरूप प्रकटित होता है। रागमार्गानुगत साधक भक्तजन अन्तश्चिन्तित देहद्वारा अथवा भावना द्वारा लीला–स्मरण करते हैं। साधनावस्थामें जिन भावोंका चिन्तन साधक करता है, वही सिद्धिमें प्राप्त करता है।

।।इति श्रीभजनरहस्य अष्टमयाम साधनम्।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थ।

श्रीश्रीगुरु-गौरांगौ जयतः

श्रीमद्‌गौड़ीय वैष्णवोंकी

संक्षेपार्चन पद्धति

नाम संकीर्तनमें सर्वसिद्धि होती है, फिर भी भक्तिमय जीवनयात्राके लिए कुछ अर्चन क्रियाओंसे विशेष उपकार होता है।

साधक प्रातःकालमें पवित्र होकर पूर्व दिशाकी ओर मुखकर आसनपर बैठें, पञ्चपात्रका जलस्पर्श करके निम्नलिखित मंत्रसे तीर्थोंको आह्वान करें—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

उक्त जल शिरपर छिड़ककर विष्णुः (तीनबार) कहकर आचमन करें। तदनन्तर गोपीचन्दनके द्वारा द्वादश तिलक करें। द्वादश तिलकका मंत्र, यथा—

ललाटे केशवं ध्यायेत् नारायणं मथोदरे।
वक्षःस्थले माधवंतु गोविन्दं कण्ठकूपके।
विष्णुंच दक्षिणे कुक्षौ, बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु, वामनं वामपार्श्वके।
श्रीधरं वामबाहौ तु, हृषीकेशंच कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभंच, कट्यां दामोदरं न्यसेत।
तत् प्रक्षालनतोयंतु, वासुदेवाय मूर्धनि।।

सर्वप्रथम गुरुपूजा; गुरुध्यान, यथा—

प्रातः श्रीमन्नवद्वीपे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयप्रदं शान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम्।।

चिन्मय नवद्वीपका श्रीमायापुरस्थित योगपीठमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु रत्नमण्डपके ऊपर बैठे हुए हैं। दाहिने श्रीनित्यानन्द प्रभु, वाम दिशामें श्रीगदाधर पण्डित बैठे हुए हैं। सामने श्रीअद्वैताचार्य हाथ जोड़कर स्तव कर रहे हैं एवं श्रीवास पण्डित छत्र धारणकर खड़े हैं। उसके नीचे वेदीपर गुरुजी बैठे हुए हैं—इस प्रकार भावन करके स्वयं श्रीगुरुदेवके निकट बैठकर षोडशोपचारसे श्रीगुरुदेवकी पूजा करें। यथा—

इदमासनं ऐं गुरुदेवाय नमः।
एतत् पाद्यं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदमर्घ्यं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदमाचमनीयं ऐं गुरुदेवाय नमः।
एष मधुपर्कः ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं पुनराचमनीयं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं स्नानीयं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं सोत्तरीयवस्त्रं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदमाभरणं ऐं गुरुदेवाय नमः।
एष गन्धः ऐं गुरुदेवाय नमः।
एष धूपः ऐं गुरुदेवाय नमः।
एष दीपः ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं सचन्दनपुष्पं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं नैवेद्यं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं पानीयजलं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं पुनराचमनीयं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं ताम्बूलं ऐं गुरुदेवाय नमः।
इदं सर्वं ऐं गुरुदेवाय नमः।।

तदनन्तर श्रीगुरुगायत्री यथाशक्ति जप करें, गायत्री यथा—

ऐं गुरुदेवाय विद्महे कृष्णानन्दाय धीमहि तन्नो गुरुः प्रचोदयात्।।

इसके पश्चात् गुरु प्रणाम करें—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अनन्तर वैष्णवोंको प्रणाम करें, यथा—

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।

तदनन्तर पंचतत्त्वसमन्वित श्रीगौरांगकी पूजा करें, श्रीगौरांगका ध्यान, यथा—

श्रीमन्मौक्तिकदामबद्धचिकुरं सुस्मेरचद्राननं।
श्रीखण्डागुरुचारुचित्रवसनं स्रग् दिव्यभूषाञ्चितम्।

नृत्यावेशरसानुमोदमधुरं कन्दर्पवेशोज्ज्वलं।
चैतन्यं कनकद्युतिं निजजनैः संसेव्यमानं भजे।।

श्रीगौरपूजा, यथा—

इदमासनं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
एतत् पाद्यं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदमर्घ्यं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदमाचमनीयं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
एष मधुपर्कः क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं पुनराचमनीयं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं स्नानीयं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं सोत्तरीयवस्त्रं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदमाभरणं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
एष गन्धः क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
एष धूपः क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
एष दीपः क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं सचन्दनपुष्पं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं सचन्दनतुलसीपत्रं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं नैवेद्यं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं पानीयजलं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं पुनराचमनीयं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं ताम्बूलं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं माल्यं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।
इदं सर्वं क्लीं कृष्णचैतन्याय नमः।।

श्रीगौरपूजा करके यथाशक्ति गौरगायत्री जप करें, यथा—

क्लीं कृष्णचैतन्याय विद्महे विश्वम्भराय धीमहि तन्नो गौरः प्रचोदयात्।।

तत्पर गौरसुन्दरको प्रणाम करें, गौरप्रणाम-मंत्र, यथा—

आनन्दलीलामयविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय, चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते।।

तदनन्तर श्रीगुरु एवं श्रीगौरांगके प्रसाद भावना कर श्रीश्रीराधाकृष्णका अर्चन करें। सबसे पहले श्रीवृन्दावन-ध्यान, यथा—

ततो वृन्दावनं ध्यायेत् परमानन्दवद्‌र्धनम्।
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गि–मारूतसेवितम्।।
नानापुष्पलताबद्‌ध–वृक्ष–षण्डैश्च मण्डितम्।
कोटिसूर्य्यसमाभासं विमुक्तं षट्‌तरङ्गकैः।
तन्मध्ये रत्नखचितं स्वर्णसिंहासनं महत्।।

अतःपर रत्नखचित स्वर्ण–सिंहासनपर बैठे हुए श्रीराधाकृष्णका ध्यान करें, यथा—

श्रीकृष्णं श्रीघनश्यामं पूर्णानन्दकलेवरम्।
द्विभुजं सर्व्वदेवेशं राधालिंगितविग्रहम्।।

तदनन्तर श्रीराधाकृष्णकी षोडशोपचार पूजा करें, यथा—

इदमासनं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
एतत् पाद्यं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदमर्घ्यं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदमाचमनीयं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
एष मधुपर्कः श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं पुनराचमनीयं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं स्नानीयं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं सोत्तरीयवस्त्रं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदमाभरणं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
एष गन्धः श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
एष धूपः श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
एष दीपः श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं सचन्दनपुष्पं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं सचन्दनतुलसीपत्रं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं नैवेद्यं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं पानीयजलं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं पुनराचमनीयं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं ताम्बूलं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं माल्यं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।
इदं सर्वं श्रीं क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।।

पूजाके पश्चात् इस युगलगायत्री-मंत्रका यथाशक्ति जप करें, यथा—

क्लीं कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो कृष्णः प्रचोदयात्।।

श्रीं राधिकायै विद्महे प्रेमरूपायै धीमहि तन्नो राधा प्रचोदयात्।।

तदनन्तर श्रीकृष्णका प्रणाम—

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगतपते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तु ते।।

श्रीराधा प्रणाम—

तप्तकाञ्चनगौराङ्गि राधे वृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुते देवि प्रणमामि हरिप्रिये।।

तदनन्तर कामबीज, कामगायत्री और मूलमंत्र यथाशक्ति जप करें, तदनन्तर पद्य पंचक और विज्ञप्ति पंचक आर्त्तिके साथ यथाक्रमसे पाठ करें।

पद्य पंचक, यथा—

संसारसागरान्नाथ पुत्रमित्रगृहाङ्गनात्।
गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ।।१।।
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिहलोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोऽद्यैव चरणेषु समर्पितम्।।२।।
अहमप्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः ।
अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तौ मे परा गतिः।।३।।
तवास्मि राधिकानाथ कर्म्मणा मनसा गिरा।
कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम।।४।।
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ।
प्रसादं कुरु दास्यं भो मयि दुष्टेऽपराधिनि।।५।।

विज्ञप्ति पंचक, यथा—

मत्समो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन।
परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तम।।१।।
युवतीनां यथा यूनि युनाञ्च युवतौ यथा।
मनोऽभिरमते तद्वत् मनो मे रमतां त्वयि।।२।।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो।।३।।

गोविन्दवल्लभे राधे प्रार्थये त्वामहं सदा।
त्वदीयमिति जानातु गोविन्दो मां त्वया सह।।४।।
राधे वृन्दावनाधीशे करुणामृतवाहिनि।
कृपया निजपादाब्यदास्यं मह्यं प्रदीयताम्।।५।।

तदनन्तर श्रीगुरु-वैष्णवोंको निर्माल्य अर्पण करें, यथा—

एतत् महाप्रसाद–निर्म्माल्यं श्रीगुरवे नमः।
एतत् पानीयं जलं—श्रीगुरवे नमः।
एतत् प्रसाद ताम्बूलं—श्रीगुरवे नमः।
एतत् सर्वं सर्वसखीभ्यो नमः।
श्रीपौर्णमास्यै नमः।
सर्व व्रजवासिभ्यो नमः।
सर्व वैष्णवेभ्यो नमः।

पूजाके पहले तुलसी चयनका मंत्र—

तुलस्यमृतजन्मासि, सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थं विचिनोमि, वरदा भव शोभने।।

अथ तुलसी पूजा—

निर्माल्य–गन्धपुष्पादिपानीयजलं इदमर्घ्यं श्रीतुलस्यै नमः।

तुलसी मंत्र, यथा—

निर्मिता त्वं पुरा देवैरर्चिता त्वं सुरासुरैः।
तुलसि हर मेऽविद्यां पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते।।

तुलसी प्रणाम, यथा—

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी,
रोगानामभिवन्दिता निरसनी सिक्ताऽन्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता,
न्यस्ता तच्चरणे सुभक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः।।

तुलसी प्रणाम कर सम्बन्ध ज्ञानके साथ तुलसी मालामें कृष्णनाम निर्बन्ध अर्थात् निर्दिष्ट संख्या कृष्णनाम जप करें। हरिनाम ग्रहण करनेमें देश-काल-शौच-अशौचका कुछ भी (पवित्र-अपवित्रका) विचार नहीं है। हरिनाम परम मंगल एवं नित्य-सत्य वस्तु है। तदनन्तर मंत्रपाठ कर श्रीकृष्णचरणामृत ग्रहणकर मस्तकपर धारण करें। चरणामृत धारण मंत्र, यथा—

अशेषक्लेशनिःशेषकारणं शुद्धभक्तिदम्।
कृष्णपादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्।।

इसके पश्चात् निम्नलिखित मंत्र उच्चारण कर थोड़ासा महाप्रसाद ग्रहण करें—

रुदन्ति पातकाः सर्व्वे निश्वसन्ति मुहुर्मुहुः।
हा हा कृत्वा पलायन्ति जगन्नाथान्नभक्षणात्।।

अनन्तर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करें। अष्टांग प्रणाम, यथा—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।

प्रातःकृत्य समाप्त।

सायंकालमें मूलमंत्र, कामबीज गायत्री द्वादश (बारह) बार जप करें। श्रीभगवानको अनिवेदित असात्त्विक अन्न, पानीय आदि कभी भी भोजन न करें।

पथ्यं पूतमनामयन्तमाहार्यं सात्त्विकं विदुः।
राजसमिन्द्रियप्रेष्ठं तामसमार्त्तिद्रोऽशुचिः ।।

श्रीएकादशी व्रत, हरिजन्मव्रत आदि यथासाध्य पालन करें। असत् संग कभी न करें। असत् संग त्याग ही वैष्णव-सदाचार है।

इति संक्षेपार्चन-पद्धतिः।

श्लोक–सूची

मूल–श्लोकों एवं पयारोंकी सूची

उद्धृत श्लोकों और पयारोंकी सूची

पृष्ठ संख्या